नानाजोशीसूनुना वामनेन विरचितः

श्रीयोगचिन्तामणिः
और
व्यवहार-ज्योतिष

व्याख्याकार

डॉ. राजेश्वरशास्त्री मुसलगाँवकर

पण्डित शेखरशास्त्री मुसलगाँवकर

सम्पादक

डॉ.शुभम् शर्मा

॥ श्रीः ॥

काशी संस्कृत ग्रन्थमाला

३२२

नानाजोशीसूनुना वामनेन विरचितः

श्रीयोगचिन्तामणिः

और

व्यवहार-ज्योतिष

व्याख्याकार

डॉ. राजेश्वरशास्त्री मुसलगाँवकर

प्राध्यापक

ज्योतिर्विज्ञान अध्ययनशाला

विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन

ज्योतिषतन्त्रचूडामणि, गणकाचार्य

पण्डित शेखरशास्त्री मुसलगाँवकर

सम्पादक

डॉ. शुभम् शर्मा

विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन

चौखम्भा संस्कृत संस्थान

वाराणसी

प्रकाशक :

चौखम्भा संस्कृत संस्थान

भारतीय सांस्कृतिक साहित्य के प्रकाशक तथा वितरक
पोस्ट बाक्स नं. ११३९
के. ३७/११६, गोपाल मन्दिर लेन, गोलघर (समीप मैदागिन)
वाराणसी - २२१००१ (भारत)
टेलीफोन : २३३३४४५, टेलीफैक्स : ०५४२-२३३५९३०
E-mail : cssvns@sify.com

ISBN : 978-81-89798-87-1

© चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी

सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन

संस्करण : प्रथम, वि० सं० २०६७ (सन् २०११)
मूल्य : १७५.००

शाखा :

चौखम्भा पब्लिकेशन्स

भारतीय सांस्कृतिक साहित्य के प्रकाशक तथा वितरक
४२६२/३ अंसारी रोड, दरियागंज
नई दिल्ली - ११०००२ (भारत)
टेलीफोन : २३२५९०५०, टेलीफैक्स : ०११-२३२६८६३९
E-mail: cpub@vsnl.net

पुरोवाक्

श्रीयोगचिन्तामणि का ज्योतिषीय महत्त्व

श्री योगचिन्तामणि: फलितज्योतिष में विद्यमान योगों का संकलनग्रन्थ हैं। यह ग्रन्थ श्री नाना जोशी के सुपुत्र ज्योतिर्विद् वामन जोशी के द्वारा रचित है। अनुभूतिप्रदशास्त्र की रचना के लिए जिस विशद अनुभूति की आवश्यकता होती है वह इस ग्रन्थ में दृग्-गोचर है। श्री वामन जोशी अनुभवी, लोकप्रसिद्ध, सिद्ध और संस्कृत वाङ्मय के अनेक विधाओं के दक्ष विद्वान् गणक हैं। ज्योतिषशास्त्र में जितनी संख्या भावजग्रन्थों की है उतनी संख्या योगज ग्रन्थों की नहीं है अत: यह ग्रन्थ योगज ग्रन्थों में जातकालंकार की तरह ख्याति लब्धता की योग्यता को रखता है। इस ग्रन्थ में योगों के नाम और गुणानुरूप उनकी संज्ञा आश्चर्यचकित कर देने वाली है। इस ग्रन्थ को पढ़ने के बाद मेरे मन में एक सुखद अनुभूति की उत्पत्ति हुई जिसमें यह परितोष था कि बहुत दिनों के बाद एक ग्रन्थ पढ़ने को मिला जिसमें जिज्ञासु मन को कुछ नया अनुभव करने हेतु पाथेय है। ग्रन्थकार अत्यन्त सधे सारस्वत पुरुष हैं जिन्होंने विषयवस्तु को बिना किसी उपक्रम के मंगलाचरण के बाद प्रस्तुत किया है। गणेश, ब्रह्म, विष्णु, महेश, श्री सूर्यादिनवग्रह और अपने इष्टदेवता श्रीहरि (विष्णु) को प्रणाम करते उन्होंने समस्त ज्योतिषशास्त्रविदों के प्रसन्नार्थ इस ग्रन्थ का प्रणयन किया है। इस ग्रन्थ को पढ़ने के बाद बुधजनों को वही प्रसन्नता मिलती भी है जिसके लिए ग्रन्थकार ने देवों का स्मरण किया है।

योगज ग्रन्थों की कमी के कारण भविष्य वक्ता ज्योतिषी को विशेष परेशानी होती है। लोक में ख्याति अर्जित करने के लिए फलित ज्योतिष की सूक्ष्म प्रवृत्तियों पर पैनी पकड़ होनी चाहिए और यह पैनापन, श्रुतपारदृश्वा दृष्टि योगज ग्रन्थों के द्वारा ही आती है। अत: योगज ग्रन्थों के प्रति भविष्यद्रष्टा और भविष्यवक्ता ज्योतिषी ज्यादा आदर का भाव रखता है। योगज ग्रन्थों में बहुत विस्तार और व्याख्यान की संभावना नहीं होती है। अत: सभी योगज ग्रन्थ आकार में लघुकलेवर ही होते हैं, पर उनकी उपादेयता और गुणवत्ता चमत्कारसिद्ध होती है। ज्योतिषी को बाध्य करती है कि वह उस ग्रन्थ का अध्ययन और मनन करे। योगज ग्रन्थ की दूसरी बड़ी विशेषता होती है कि वह विषय की परिभाषा और संज्ञा को प्रस्तुत करता है जिसके सन्दर्भ में भावज ग्रन्थों में अधिक स्पष्ट नहीं लिखा होता है। उदाहरण के रूप में भाग्येश यदि केन्द्र में होता है तो भाग्य प्रबल होता है। इस तथ्य का उल्लेख भावज ग्रन्थों में होता है, पर योगज

ग्रन्थ इस योगविशेष को 'चन्द्रचूड' योग की संज्ञा देता है। साथ ही यह प्रतिपादित करता है कि चन्द्रचूड योग में उत्पन्न होने वाला व्यक्ति दानी और गुणी होता है—

चन्द्रचूडो भवेद्योगो धर्मपो यदि केन्द्रगः।
योगेऽस्मिन् दानशीलश्च गुणपूर्णो भवेन्नरः।।

इससे स्पष्ट है कि चन्द्रचूड योग में उत्पन्न व्यक्ति धनी समृद्ध होगा तभी वह दान देने की क्षमता से युक्त होगा। यदि किसी के पास धन हो और वह बद्धमुष्टि हो तो चन्द्रचूड योग नहीं होगा। दान वही देता है जो दान देने के महत्त्व को जानता हो और सामने वाले ग्रहीता का गुण पारखी हो। अतः योगज ग्रन्थ इस दृष्टि से भावज ग्रन्थों से अधिक महत्त्वपूर्ण हो जाते हैं।

योगज ग्रन्थ की तीसरी बड़ी विशेषता होती है कि इसमें योगों के नाम और उनका प्रभाव वर्णित रहता है जिसे श्लोकबद्ध लिखा गया होता है। भविष्यवक्ता इन श्लोकों को याद रखता है और तत्काल इस तथ्य को प्रस्तुत करता है जब वह कुण्डली देखता है। ये तीनों विशेषताएँ योगज ग्रन्थों को महनीय बनाती हैं और ज्योतिषशास्त्र के विद्यार्थीजनों के लिए इन ग्रन्थों को आवश्यक पठनीय के रूप में उपस्थित करती हैं।

योगचिन्तामणि ग्रन्थ में शताधिक सुन्दरयोगों का प्रतिपादन है। ये योग विषय की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्व के हैं। इनमें से कुछ ऐसे भी योग हैं जिनका प्रतिपादन अन्य महत्त्वपूर्ण फलितग्रन्थों में पहले भी हो चुका है। यह ग्रन्थ इसलिए भी महत्त्वपूर्ण है कि इसमें अनुभवी गणक 'नाना जोशी' और उनके पुत्र ग्रन्थकार 'वामन जोशी' के स्व अनुभव भरे पड़े हैं। एक सौ एकसठ श्लोकों में वर्णित 'योगचिन्तामणि' ग्रन्थ में एक श्लोक मंगलाचरण के लिए तथा तीन श्लोक पूर्वजवर्णन में लिखे गये हैं। विषय से सम्बन्धित एक सौ सत्तावन श्लोक इसमें उपनिबद्ध हैं, जिनमें शताधिक महत्त्वपूर्ण योगों की स्थापना है।

वत्स गोत्रीय वापुभट्ट महाराष्ट्र प्रान्त के अहमदनगर के अग्निहोत्री ब्राह्मण थे। उनके पुत्र नाना भट्ट हुए। नाना भट्ट ज्योतिषशास्त्र के अग्रणी विद्वानों में जाने जाते थे। आप ज्योतिषशास्त्र में इतने लोकप्रसिद्ध हुए की आपको लोग नाना ज्योतिषी और नाना जोशी कहने लगे। वस्तुतः भट्ट और जोशी उपाधि प्राचीनकाल में शास्त्रज्ञ ब्राह्मणों को दी जाती थी जो बाद में रूढ़ हो गयी। बापु भट्ट अग्निहोत्र करते थे। यह सर्वोच्च साधना स्थिति जिसके कुल में होगी वहाँ तो विद्वान्, शास्त्रज्ञ और योगी पुरुष पैदा होंगे ही। इस

दृष्टि से रेखी कुल अत्यन्त महत्त्व का है। शक १८१९ में इस ग्रन्थ की रचना हुई, अर्थात् १८९६ ई० सन् में उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक में यह ग्रन्थ पूर्ण हुआ है। इस ग्रन्थ को लिखे एक सौ बारह वर्ष व्यतीत हो चुके हैं।

डॉ. राजेश्वरशास्त्री मुसलगाँवकर ने इस योगज ग्रन्थ की टीका एवं डॉ. शुभम् शर्मा ने प्रकृत ग्रन्थ का सम्पादन करके महनीय शास्त्रोपकार किया है। इस ग्रन्थ में तीन पीढ़ियों के तप का परिणाम आया हुआ है। यह ग्रन्थ अनुसंधेय और ज्योतिर्विदों के लिए सुचिन्त्य एवं पठनीय है। इस ग्रन्थ का नाम योगचिन्तामणि है। इस ग्रन्थ में चिन्तामणि नामक योग भी प्रतिपादित है। चन्द्रमा से चतुर्थस्थान में यदि एकाधिक शुभ ग्रह बैठे हों तो 'चिन्तामणि' नामक योग बनता है। चिन्तामणि योग वाला मनुष्य नृपतुल्य होता है। वह दूसरों को धन, सहयोग, आढ्यता प्रदान करने में सक्षम होता है। यह चिन्तामणि ग्रन्थ ज्योतिर्विदों को विद्या, भविष्य ज्ञान और आढ्यता देने में सक्षम है।

श्रीयोगचिन्तामणि ग्रन्थ की 'किरणावली' नामक संस्कृत भाष्य रचना करके डॉ. शास्त्री ने संस्कृत अध्येताओं का महान् उपकार किया है। इस भाष्य में भाषा और भाव की प्रौढ़ता है। साथ ही परिष्कृत संस्कृत की धारा भी इसमें प्रवाहित है। इसे पढ़ने के बाद सहज ही संस्कृत बोलने, लिखने, समझने की क्षमता उत्पन्न होगी। डॉ. शास्त्री प्रौढ़ संस्कृतज्ञ हैं। इन्हें जयोतिष, मीमांसा, वेदान्त और अन्य दर्शनों का कुलपरम्पराप्राप्त ज्ञान है। इस ज्ञान का दिग्दर्शन इस भाष्य में हुआ है, पर सुबोधता और भारहीनता गुण को यह भाष्य साथ लेकर चलता है। वस्तुत: संस्कृत में भाष्य लिखने की परम्परा से ही शास्त्रीय प्रौढ़ि की रक्षा होती है। एतदर्थ यह महनीय प्रयास स्तुत्य है।

डॉ. राजेश्वर शास्त्री मुसलगाँवकर उज्जयिनी में ज्योतिषविभाग में प्राध्यापक हैं। आपने अपना शास्त्रज्ञ जीवन प्रभुविश्वानाथ की नगरी काशिका से आरम्भ किया और उसे प्रतिष्ठापित किया महाकाल की नगर उज्जयिनी में। प्रतिवर्ष शताधिक छात्र-छात्राएँ अध्ययन तथा शोध के लिए आपके पास आते हैं। अत: डॉ. शास्त्री एवं ग्वालियर के सुप्रसिद्ध ज्योतिष विद्वान् पं. शेखर शास्त्री मुसलगाँवकर ने इस ग्रन्थ के उत्तरार्ध में व्यवहार ज्योतिष को जोड़कर महनीय कार्य किया है। उत्तरार्ध भाग से छात्र-छात्राएँ विशेषलाभ उठाएँ यह आपकी शुभ दृष्टि है। आपका यह सारस्वत श्रम सफल हो इसके लिए स्वस्तिवाक् है।

डॉ. कामेश्वर उपाध्याय

भूतपूर्व उपाचार्य, संस्कृत विद्या एवं
विज्ञान संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

शुभाशंसा

श्री वामन जोशी कृत तथा डॉ. राजेश्वर शास्त्री मुसलगाँवकर द्वारा सम्पादित एवं अनूदित श्रीयोगचिन्तामणि का अवलोकन कर हार्दिक प्रसन्नता हुई। यह एक अत्यन्त उपयोगी रचना है। प्रकृत ग्रन्थ में लगभग १५० योगों का विवेचन बहुत ही सरल ढंग से किया गया है। इतने योगों के विवेचन से ग्रन्थ का नाम योग चिन्तामणि सार्थक होगया है। प्रबुद्ध सम्पादक ने संस्कृत एवं हिन्दी व्याख्या कर सर्वजन ग्राह्य कर दिया है। इससे इस ग्रन्थ की उपयोगिता बढ गई है।

लेखक ने बहुत श्रम से विषयों का संकलन कर उन्हें श्लोकबद्ध किया है। कहीं-कहीं पर कुछ नवीन विषयों का भी उपस्थापन कर ग्रन्थ में नवीनता लाने का सफल प्रयास किया है। उदाहरण हेतु कुछ अंश यहाँ उद्धृत हैं। इस ग्रन्थ में केमद्रुम योग का वर्णन करते हुए कहा गया है—

लाभेशो यदि भाग्यगः खलयुतः शुक्रे च नीचं गते
मार्तण्डश्च विधुन्तुदश्च धनगौ केमद्रुमो दुःखदः।
चेन्मूढौ धनलाभपौ नवमगे भौमे धनेऽगौ च वा
धर्मेशो दिननीचगश्च यदि वा क्षीणेन्दुपापैर्युतः॥

अर्थात् (१) लाभेश पापयुक्त होकर यदि नवम भाव में स्थित हो, शुक्र अपनी नीच राशि में हो तथा सूर्य और राहु द्वितीय भाव में स्थित हों तो दु:ख दायक केमद्रुम योग होता है। (२) धनेश और लाभेश मूढावस्था में हों, भौम नवम भाव में तथा राहु धन भाव में स्थित हों तो केमद्रुम योग होता है। (३) नवमेश नीचराशिगत हो तथा क्षीण चन्द्रमा पापग्रहों से युक्त हो तो केमद्रुम योग होता है। इसके अनन्तर ६० वें श्लोक में भी केमद्रुम योग बताया गया है। जब कि मूल ग्रन्थों में केमद्रुम योग को अत्यन्त साधारण ढंग से बतलाया गया है। केवल चन्द्रमा के दोनों पार्श्व में (चन्द्रमा से द्वितीया और द्वादश भावों में) ग्रहों की अनुपस्थिति से केमद्रुम योग कहा गया है। यथा—

रविवर्ज्यं द्वादशगैरनफा चन्द्राद्द्वितीयगैः सुनफा।
उभयस्थितैर्दुरुधरा केमद्रुमसंज्ञकोऽतोऽन्यः॥ (लघुजातकम्)

वस्तुत: केमद्रुम योग की यही एक विधि ही मूलभूत है। केमद्रुम को सर्वत्र दरिद्रयोग कहा गया है। यही कारण है कि जातकपारिजात आदि कुछ ग्रन्थों में अनेक दरिद्रयोगों को भी केमद्रुम योग या केमद्रुम सदृश दरिद्रयोग कहा गया है। यहाँ भी उसी

सरणि का उपयोग करते हुए केमंद्रुम के प्रतिपादन में कुछ नवीनता लाने का प्रयास किया है। इस प्रकार योगों की दृष्टि से यह ग्रन्थ अत्यन्त उपयोगी हो गया है।

ग्रन्थ के उत्तरार्थ में पण्डित शेखरशास्त्री मुसलगाँवकर ने व्यवहार ज्योतिष नाम से ज्योतिष शास्त्र के प्रारम्भिक विषयों से लेकर महत्वपूर्ण विषयों तक का सरल राष्ट्रभाषा में विवेचन कर नवीन ज्योतिषानुरागियों के लिए ज्योतिष पढने का मार्ग प्रशस्त कर दिया है। पारिभाषिक शब्दों के विवेचन के साथ-साथ फलादेश के अतिरिक्त मुहूर्त, शकुनादि अनेक आवश्यक एवं दैनिक व्यवहारोपयोगि विषयों का संग्रह कर जिज्ञासुओं के लिए ज्योतिष में प्रवेश द्वार के रूप में इस ग्रन्थ को प्रस्तुत किया है।

मैं इस कार्य के लिए डॉ. राजेश्वर शास्त्री मुसलगाँवकर तथा पण्डित शेखरशास्त्री मुसलगाँवकर को हृदय से साधुवाद देता हूँ। साथ ही आशा करता हूँ जिज्ञासु जन इस ग्रन्थ से लाभान्वित होगें तथा लेखक बन्धु भविष्य में भी सारस्वत साधना में प्रवृत्त रहकर यश के भाजन बनेगें।

आचार्य रामचन्द्र पाण्डेय
भूतपूर्व संकायाध्यक्ष संस्कृत धर्म विद्या एवं विज्ञान संकाय
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

विषयानुक्रमणिका

	पृष्ठ संख्या		पृष्ठ संख्या
मंगलाचरण	१	कुलनायकयोग	९
चन्द्रचूडयोग	२	विधुशेखरयोग	१०
पताकायोग	२	जनसार्वभौमयोग	१०
उत्साहयोग	३	सत्कामधेनुयोग	१०
पद्मरागयोग	३	पूर्णचन्द्रयोग	१०
पुण्डरीकयोग	३	मणिक्ययोग	११
मयूरयोग	३	दीप्तयोग	११
मेकर्कजयोग	४	हर्षितयोग	११
कुलभूषणयोग	४	शान्तयोग	११
कुलदीपकयोग	४	स्वस्थयोग	१२
श्रीवत्सयोग	४	चन्द्रोदययोग	१२
पारिजातयोग	५	अवतंसयोग	१२
मुक्तादामयोग	५	छत्रयोग	१२
द्रव्ययोग	५	फलयोग	१२
मृगराजयोग	६	रत्नाञ्जलियोग	१३
दोलाक्षत्रप्रदयोग	६	पुष्करयोग	१३
हंसयोग	६	संग्रहयोग	१३
अमरयोग	७	श्रुतयोग	१३
विद्रुमयोग	७	विवृद्धियोग	१३
कुमुदयोग	७	कर्णयोग	१४
प्रतापयोग	८	कूर्मयोग	१४
शत्रुनाशयोग	८	महाकूर्मयोग	१४
दामोदरयोग	८	गजकेसरीयोग	१५
अधियोग	८	धीरयोग	१६
चिन्तामणियोग	९	मुक्ताञ्जलियोग	१७
लक्ष्मीकान्तयोग	९	शयनीयोग	१७
खलकयोग	९	कलशयोग	१७

	पृष्ठ संख्या		पृष्ठ संख्या
पीयूषयोग	१७	यानाख्ययोग	३३
श्रेष्ठाधियोग	१७	वाहनसंज्ञयोग	३३
पर्वतयोग	१७	गृहाप्तियोग	३३
द्रव्यदायकभाग्ययोग	१८	जारजातयोग	३४
परस्त्रीपराङ्मुखयोग	१९	सत्कलत्रलाभयोग	३५
परस्त्रीभोगयोग	१९	सत्पुत्रलाभयोग	३५
बहुविधललनोपभोगयोग	१९	सन्तानयोग	३५
विधवोपभोगयोग	२०	ज्ञानपूर्णपुत्रयोग	३६
चाण्डालीसक्तयोग	२०	पुत्रयोग	३६
दुष्कर्मयोग	२१	बहुपुत्रयोग	३६
मद्यपीयोग	२१	कन्याप्रजोद्भवकरयोग	३७
गुरो:दाराभिलाषीयोग	२२	सन्तानाभावयोग	३७
पापकर्मयोग ब्रह्महत्यायोग	२२	स्त्रीपुरुषजन्मज्ञानलक्षण	३८
सुवर्णस्तेयीयोग	२२	षण्ढयोग	३८
केमद्रुमयोग	२३	दीर्घायुर्योगं	४०
नेत्रकर्णरोगकारकयोग	२४	पूर्णायुर्योग	४०
स्त्रीविनाशयोग	२४	चिरजीवीयोग	४१
निर्धनतायोग	२४	दीर्घायुर्योग	४१
प्रकारान्तरेण दारिद्र्ययोग	२५	शतायुर्योग	४२
निर्धनयोग	२६	मध्यमायुर्योग	४२
द्रारिद्र्ययोग	२६	अल्पायुर्योग	४३
विपत्तिकालयोग	२६	शीघ्रमरणयोग	४५
सुखवित्तयोग	२७	मृत्युयोग	४६
सुखकारकयोग	२७	अनिष्टयोग	४८
श्रीयोग	२७	मृत्युयोग	४८
राजयोग	२८	अनिष्टयोग	४९
भाग्योदयकालयोग	३१	सुयोग	५१
वैदेहकयोग	३२	कुयोग	५१
पशुवाणिज्ययोग	३२	विद्यायोग	५२

	पृष्ठ संख्या
सत्कर्मयोग	५३
अध्वरकरयोग	५४
प्रव्रज्यायोग	५५
संन्यासयोग	५५
कैवल्ययोग	५५
अन्यप्रवज्यायोग	५६
सत्यलोकप्राप्तियोग	५६
वैकुण्ठलोकप्राप्तियोग	५६
कैलासलोकप्राप्तियोग	५७
स्त्रीजातक	५७
भर्तृसौख्यदायोग	५७
सौभाग्ययोग	५८
वैधव्ययोग	५८
विषकन्यायोग	५९
विषकन्यायोग	६०
वैधव्ययोग	६१
अन्यानप्यनिष्टयोग	६१
पत्नीमोक्षयोग	६२
पूर्वजवर्णन	६२
व्यवहार ज्योतिष	**६४**
वेदाङ्ग का अर्थ तथा महत्त्व	६५
ज्योतिष के साथ शास्त्र का प्रयोग	६७
ग्रहपिण्डों का जीवन पर प्रभाव	६७
ज्योति:शास्त्र का महत्त्व	७२
पञ्चाङ्ग के घटक अङ्ग	७२
मानवजीवन में ज्योतिषशास्त्र की उपयोगिता	७८
ज्योतिषशास्त्र की तीन शाखाएँ	७८
कालगणना के ९ मान	७९
युगों का मान	७९
चार प्रकार के दिवस	८०
तीनप्रकार के वर्ष	८०
साठ संवत्सर	८०
अयन	८१
ऋतु और उनका काल	८१
बारह मास	८१
बारह राशियाँ	८२
अधिकमास और क्षयमास	८२
संक्रान्ति	८२
पक्षविचार	८३
तिथियाँ	८३
तिथियों की संज्ञा	८३
शुभाशुभ तिथि	८४
नक्षत्र	८४
शुभ नक्षत्र	८४
नक्षत्रों के प्रकार (गुण धर्म)	८५
पुष्य नक्षत्र की विशेषता	८६
सूर्य नक्षत्र	८६
नक्षत्रों की संज्ञा, उनके स्वामी और स्वरूप	८६
नक्षत्रों के तारों का फल	८७
योग विचार	८७
करण	८८
नक्षत्र से चन्द्र या राशि जानी जाती है	८८
किस राशि में कितने नक्षत्र होते हैं	८८
नक्षत्रों के गुणधर्म	८९
चन्द्रबल या शुभाशुभ चन्द्र	९०

	पृष्ठ संख्या
अमृतसिद्धि योग	९१
अनिष्ट अमृतसिद्धि योग	९१
मृत्युयोग	९१
दग्धयोग	९३
यमघण्टयोग	९३
धनिष्ठापञ्चक	९३
गजच्छायायोग	९३
अर्धोदय-महोदययोग	९३
राशियों का शरीर के अवयवों से सम्बन्ध	९५
राशियों की दिशाएँ	९५
राशियों के अनुसार जातकों के विशेष गुण स्वभाव	९५
ग्रहों की जाति और गुण धर्म	९८
ग्रहों के लिङ्ग	९८
शुभाशुभ ग्रह	९८
ग्रहों की सम और विषम राशियाँ	९९
ग्रहों का एक राशि में रहने का समय	९९
ग्रहों का उच्च-नीच स्थान	१००
ग्रहों की दृष्टियाँ	१०१
ग्रहों की अवस्थाएँ	१०१
शरीरावयवों पर ग्रहों के परिणाम	१०१
गुरु-शुक्र ग्रहों का अस्तोदय काल	१०३
अनिष्ट मङ्गल	१०४
भावों के कारक ग्रह	१०५
जन्मकुण्डली का परिचय	१०५
चन्द्र कुण्डली का गोचर राशिफल बोधक चक्र	११४

	पृष्ठ संख्या
लग्न कुण्डली की केन्द्रादि संज्ञाएँ	१०७
फलादेश के कतिपय स्थूल नियम	१०८
द्वादश भावों से निम्नलिखित बातें जानी जा सकती हैं	१११
द्वादश स्थानों की अन्य संज्ञाएँ	११३
गोचर विचार	११४
प्रत्येक लग्न के शुभ-अशुभ ग्रह निम्नानुसार हैं	११६
ग्रहों के मित्र-शत्रु और सम ग्रह	११७
मूल त्रिकोण	११७
राशि के अनुसार ग्रह-बल	११८
ग्रहों का भाग्योदय काल	१२०
मेषादि लग्नों में शुभाशुभ ग्रह	१२०
ग्रहयोगफलादेश	१२२
द्विग्रह योग	१२६
त्रिग्रहयोग	१२७
ग्रहों का भावस्थ बलाबल	१२८
राजयोग	१२९
निर्धन योग (केमद्रुम योग)	१२९
बन्धन योग	१३०
वैराग्य योग	१३०
नीचकर्म योग	१३०
व्यभिचार योग	१३०
अनफा, सुनफा और दुरुधर योग	१३१
सुनफा योग	१३१
दुरुधर योग	१३१
नाभस योग	१३१
स्वप्न-विचार	१३२

	पृष्ठ संख्या
भावेश और भावेशों का स्थानगत फल	१३३
भावेशों के सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण तथ्य	१३४
भावेशों के स्थानगत फल	१३७
लग्नेश का स्थानगत फल	१३७
धनेश का स्थानगत फल	१३९
तृतीयेश का स्थानगत फल	१४०
चतुर्थेश का स्थानगत फल	१४१
पंचमेश का स्थानगत फल	१४३
षष्ठेश का स्थानगत फल	१४४
सप्तमेश का स्थानगत फल	१४५
अष्टमेश का स्थानगत फल	१४६
नवमेश (भाग्येश) का स्थानगत फल	१४८
दशमेश का स्थानागत फल	१४९
लाभेश का स्थानगत फल	१५०
व्ययेश का स्थानगत फल	१५१
ग्रह योग	१५२
नवम पञ्चम अथवा त्रिकोण योग	१५२
केन्द्रयोग	१५२
प्रतियोग	१५२
शुभकर्तरी और पापकर्तरी योग	१५३
षडष्टक, द्विर्द्वादशक, नवमपञ्चम आदि जानने का चित्र	१५३
जन्मपत्रिका का पञ्चमस्थान	१५५
ग्रहों की दृष्टियाँ और पञ्चमस्थान	१५८
पञ्चमस्थान और लाभस्थान से होने वाले ग्रहों के प्रतियोग	१५९
दाम्पत्य प्रारब्धयोग के विषय में कुछ महत्त्वपूर्ण तथ्य	१६१
योग्य पति, पत्नी का वरण	१६२
मनोवृत्ति का विचार	१६३
प्रकृतिविचार	१६४
सन्ततिहीन होने कारण	१६५
आर्तवदोष	१६५
वीर्यदोष	१६५
स्त्रीजातक	१६६
विषकन्यायोग	१६७
ग्रहों के स्थानगत फल	१६८
रवि का स्थानगत फल	१६९
चन्द्र का स्थानगत फल	१७०
मङ्गलग्रह का स्थानगत फल	१७२
बुध का स्थानगत फल	१७५
गुरु का स्थानगत फल	१७७
शुक्र का स्थानगत फल	१७९
शनि का स्थानगत फल	१८२
ग्रहों के द्वारा रोग से बचने का उपाय	१८५
लाल किताब के अनुसार ग्रहों के योग से होने वाले रोग	१८६
शनि की साढेसाती	१८६
नक्षत्र के अनुसार शनि का वास्तविक विचार	१८६
शनिस्तोत्रम्	१८७
दशरथ उवाच	१८७
वेदोक्त सबीज नवग्रह के मन्त्र	१८९
पुराणोक्त नवग्रहस्तोत्र	१९०

नवग्रहों के दान एवं जपसंख्या	१९५	शुभ-शकुन	१९८
गुरु-शुक्र के अस्तकाल में वर्ज्य कार्य	१९५	अशुभ-शकुन	१९८
मुहूर्त विचार	१९५	जातकर्म और नामकरण	१९९
तिथिनक्षत्र सम्बन्धदोष	१९६	अन्नप्राशन का मुहूर्त	१९९
मासानुसार शून्यराशि	१९७	उपनयन	१९९
विषमतिथि अनुसार दग्धलग्न	१९७	उपनयन के लिये गुरुबल	२००
तिथि अनुसार वर्ज्यलग्न	१९७	दिशाशूल	२००
घबाडमुहूर्त	१९७	यात्रा के लिए शुभ नक्षत्र	२०१
यात्रा हेतु शुभाशुभ लग्न	१९७	वास्तुशान्ति के मुहूर्त	२०१
यात्रा हेतु लग्न में शुभाशुभग्रह	१९८	क्रय विक्रय के लिये शुभ दिन	२०१
योग, अधियोग और योगाधियोग	१९८	साडेतीन मुहूर्त	२०१
		सिद्धहोरामुहूर्त	२०१

नानाजोशीसूनुना वामनेन विरचितः

श्रीयोगचिन्तामणिः

और

व्यवहार ज्योतिष

नत्वा विघ्नान्तकारं शिवतनयपदं स्वामिपादारविन्दं
विष्णुं शम्भुं विरिञ्चिं पितृगुरुचरणं भास्करादींश्च खेटान् ।
कुर्वेऽहं वामनः श्रीहरिचरणनतो योगचिन्तामणिं यं
ज्योतिर्विद्धर्षदं तं सकलबुधजनाः स्वीकुरुध्वं सदैव ।।१।।

पुज्यो गणेश इति शक्तिरपीह केचित् प्राहु परे च तपनं शशिभालमन्ये । तैस्तैर्विभासि खलु रूपगुणैस्त्वमेव तस्मात्त्वमेवशरणं कमलायताक्ष ! ।।१।। रमते भारती यत्र ब्रह्मत्त्वं राजते मुखे । यत्कृपा सफला नूनं वन्देऽहं तं गजाननम्[1] ।।२।। नमामि देवं करुणाकरं तं विनायकं विघ्नगणं हरन्तम् । गौरीसुतं गौररुचिं गजास्यं वृन्दारकैर्वर्णितचारुलास्यम् ।।३।। अथ ग्रन्थादौ ग्रन्थमध्ये ग्रन्थान्ते च मङ्गलमाचरणीयमवश्यमिति शिष्टाचारः । तत्र महाराष्ट्रराज्यान्तर्गताहमदनगरनिवासीबापूभट्टपुत्रनानाजोशीपुत्रो त्रिस्कन्ध ज्योतिःशास्त्रसरोजनिचयभास्करो ग्रन्थकृद् योगचिन्तामणिनामकं होरास्कन्धान्तर्गतनानायोगसंग्रहरूपं ज्योतिषग्रन्थं चिकीर्षुरशेषविघ्नध्वंसकामो निर्विघ्नग्रन्थसमाप्तिप्रचयगमनार्थं शिष्टाचारानुमितश्रुतिबोधितकर्तव्यताक-कर्माभिमतनमस्काररूपं मङ्गलं निर्दिशति नत्वेति । विघ्नान्तकारं दुःखनाशकं शिवतनयपदं गणपतिचरणं स्वामि-पादारविन्दं श्रीअक्कलकोटवासिस्वामिपदकमलं च विष्णुं शम्भुं विरिञ्चिं ब्रह्माणं च पितृगुरुचरणं पिता एव गुरुः तस्य चरणं च भास्करादीन् सूर्यादीन् खेटान् ग्रहान् नत्वा नमस्कृत्य श्रीहरिचरणनतः श्रीहरिपदे नम्रीभूतः अहं वामनः यं ज्योतिर्विद्धर्षदं ज्योतिःशास्त्रविदानन्दकरं योगचिन्तामणिं योगस्य चिन्ता शुभाशुभरूपो विचारस्तस्य मणिरिव योगचिन्तामणिः । यथा मणिहीरकादिः निखिलकान्तीना-माधारस्तथायमपि ग्रन्थो योगानामाधार

१. महामहोपाध्यायपण्डितगजाननशास्त्रिचरणाः मदीयगुरुचरणाः

इत्यन्वर्थनामानं लक्षणया योगचिन्तामणिं योगचिन्तामणिनामानं ज्योतिषग्रन्थं कुर्वे करोमि। हे सकलबुधजनाः तं ग्रन्थं स्वीकुरुध्वं तस्य स्वीकारं कुरुत। स्रग्धरावृत्तमेतत्। तल्लक्षणम्-म्रभ्नैर्यानां त्रयेण त्रिमुनियतियुता स्रग्धरा कीर्तितेयम्।।१।।

विघ्ननाशक श्रीगणपति, श्रीअक्कलकोट निवासी प्रभुसमर्थ, विष्णु, शंकर, और ब्रह्मदेव, मेरे पिता श्रीगुरुदेव और सूर्यादि नवग्रह-इन सभी के चरणकमलों को मै नमन करता हूँ। मैंने (श्रीहरिदास वामन ने समस्त ज्योतिषियों को आनन्ददायक 'योग-चिन्तामणि' नामक ग्रन्थ की रचना की है। सभी ज्योतिर्विद् उसे स्वीकार करें ।।१।।

अथ चन्द्रचूडाख्यं योगं सफलमनुष्टुब्वृत्तेनाह–

चन्द्रचूडो भवेद्योगो धर्मपो यदि केन्द्रगः।
योगेऽस्मिन् दानशीलश्च गुणपूर्णो भवेन्नरः।।२।।

चन्द्रचूड इति। यदि धर्मपः नवमस्थानपतिः केन्द्रगः प्रथम-चतुर्थ-सप्तम-दशमस्थानानां एकस्मिन् स्थाने स्थितः स्यात् तदा चन्द्रचूडनामा योगो भवति। अस्मिन् योगे मनुष्यः गुणपूर्णः दानशीलश्च दाता च भवति। अनुष्टुब्वृत्तमेतत्। तल्लक्षणम्-श्लोके षष्ठं गुरुज्ञेयं सर्वत्र लघु पञ्चमम्। द्विचतुः पादयोर्ह्रस्वं सप्तमं दीर्घमन्ययोः।।२।।

नवमस्थान का स्वामी प्रथम, चतुर्थ, सप्तम या दशमस्थान में होने पर **'चन्द्रचूड'** नामक योग होता है। इस योग के होने पर जातक गुणवान् और दाता होता है ।।२।।

अथ पताकाख्यं योगं सफलमनुष्टुब्वृत्तेनाह–

पताकाख्यस्तदा योगो ग्रहाः पञ्चमकेन्द्रगाः।
धनवान् पुत्रयुक्तश्च योगेऽस्मिन् धर्मवान्नरः।।३।।

पताकाख्य इति। यदा ग्रहाः पञ्चमकेन्द्रगाः पञ्चमे केन्द्रस्थानेषु च स्थिताः भवन्ति तदा पताकाख्यः पताकानामा योगो भवति। अस्मिन् योगे नरः मनुजः धनवान् पुत्रवान् धर्मवाञ्श्च भवेत्। अनुष्टुब्वृत्तमिदम्।।३।।

सभी ग्रह पञ्चमस्थान और केन्द्र में स्थित होने पर **पताका** नामक योग होता है। इस योग में जातक सम्पत्ति और सन्तति का उपभोग करने वाला और धर्म के प्रति आस्था रखने वाला होता है ।।३।।

अथ उत्साहपद्मरागाख्यं योगद्वयं सफलमुपजातिवृत्तेनाह–

उत्साहयोगे यदि रात्रिनाथः स्वोच्चे नरः सर्वसुखान्वितः स्यात् ।
गुरुर्यदा शुक्रयुतश्च केन्द्रे सुखी मनुष्यः खलु पद्मरागे ।।४।।

उत्साहेति । यदि रात्रिनाथः चन्द्रः तुहिनकिरणो वा स्वोच्चे वृषभराशिं गतः स्यात् तदा उत्साहयोगे सर्वसुखान्वितः नरः स्यात् । यदा शुक्रयुतः गुरुः केन्द्रे स्यात् तदा पद्मरागे पद्मरागाख्ययोगे मनुष्यः सुखी भवति । उपजातिवृत्तमिदम् । तल्लक्षणम्– अनन्तरापदितलक्ष्मशोभौ पादौ भवेतां विविधैर्विकल्पैः यासामिमौ श्रव्ययतिप्रपञ्चौ स्मृताः स्मृतीशैरुपजातयस्ताः ।।४।।

जन्मकालीन उच्च के चन्द्र से प्राप्त **उत्साह** नामक योग के कारण जातक सभी सुखों से सम्पन्न होता है। शुक्र सहित गुरु के केन्द्र में होने पर **पद्मराग** नामक योग होता है, इस योग में जातक सुखी रहता है ।।४।।

अथ पुण्डरीकमयूराख्यं योगद्वयं सफलमुपजातिवृत्तेनाह–

शनिश्चतुर्थे च यदा ज्ञदृष्टो ददाति सौख्यं बहु पुण्डरीकः ।
केन्द्रायगो वित्तपतिर्मयूरो वित्तेऽथवा चेद् धनदः सुयोगः ।।५।।

शनिरिति । यदा ज्ञदृष्टः बुधेन दृष्टः शनिः चतुर्थे च स्यात् तदा पुण्डरीकः योगः बहुसौख्यं ददाति । केन्द्रायगः केन्द्रे च आये एकादशस्थाने अथवा वित्ते द्वितीयस्थाने वित्तपतिः धनेशः द्वितीयस्थानस्वामी चेत् तदा धनदः मयूरः मयूराख्यः सुयोगः भवति । वृत्तमिदमुपजातिः ।।५।।

बुध द्वारा दृष्ट शनि (यदि) चतुर्थस्थान में होने पर सुखकारक **पुण्डरीक** नामक योग होता है और केन्द्र में, एकादशस्थान में अथवा द्वितीयस्थान में द्वितीयस्थान का अधिपति स्थित होने पर द्रव्यसुख देने वाला **मयूर** नामक सुयोग होता है।

अथ मेकर्कजाख्ययोगं सफलमनुष्टुब्वृत्तेनाह–

भास्कराद्विक्रमे बुद्धौ लाभे वा खेचरा यदा ।
मेकर्कजाख्ययोगः स्याद्राजमानफलप्रदः ।।६।।

भास्करादिति । यदा भास्करात् विक्रमे तृतीयस्थाने बुद्धौ पञ्चमस्थाने लाभे एकादशस्थाने वा खेचराः ग्रहाः भवन्ति तदा राजमानफलप्रदः मेकर्कजाख्ययोगः भवति । अनुष्टुब्वृत्तमेतत् ।।६।।

सूर्य से तिसरे, पाँचवे अथवा एकादशस्थान पर ग्रहों के होने पर **मेकर्कज** नामक योग होता है और वह राजा के द्वारा सम्मानित की तरह फल देता है ।।६।।

अथ कुलभूषणाख्ययोगं सफलमनुष्टुब्वृत्तेनाह–

लग्ने मीनाश्रिते चन्द्रे पूर्णे च सुहृदीक्षिते ।
कुलभूषणयोगः स्यादत्र शास्त्रमतिर्नरः ।।७।।

लग्न इति । मीनाश्रिते मीनराशिमाश्रिते लग्ने सुहृदीक्षिते बुधसूर्याभ्यामवलोकिते पूर्णे चन्द्रे सति तदा कुलभूषणाख्ययोगः स्यात् । अत्र अस्मिन् योगे नरः मनुजः शास्त्री भवति । अनुष्टुब्वृत्तमेतत् । ।।७।।

मीन राशि के लग्न में बुध और सूर्य द्वारा दृष्ट पूर्णचन्द्र जन्मकाल में होने पर **कुलभूषण** नामक योग होता है और इस योग में जातक शास्त्रज्ञ होता है ।।७।।

अथ कुलदीपकाख्यं योगं सफलमनुष्टुब्वृत्तेनाह–

कुलदीपकयोगः स्याद् भ्रातृपो यदि कोणगः ।
परोपकारयुक्तः स्याद् योगेऽस्मिन् मनुजस्तदा ।।८।।

कुलदीपकेति । यदि भ्रातृपः तृतीयस्थानपतिः कोणगः नवपञ्चमस्थानगतः स्यात् तदा कुलदीपकनामा योगः भवति । अस्मिन् योगे मनुजः नरः परोपकारयुक्तः भवति । अनुष्टुब्वृत्तमिदम् ।।८।।

यदि तृतीयस्थान का स्वामी नवम या पञ्चमस्थान में हो तो **कुलदीपक** नामक योग होता है और इस योग के होने पर जातक परोपकारी होता है ।।८।।

अथ श्रीवत्सपारिजाताख्ययोगद्वयं सफलमुपजातिवृत्तेनाह–

केन्द्रे च कोणे गगनाधिपश्चेत् श्रीवत्सयोगे धनवान् मनुष्यः ।
चतुष्टये विक्रमगेहनाथे स्यात्पारिजाते नृपपूजितश्च ।।९।।

केन्द्र इति । गगनाधिपः दशमस्थानस्वामी केन्द्रे च कोणे स्यात् चेत् तदा श्रीवत्साख्ययोगे मनुष्यः धनवान् भवति । च विक्रमगेहनाथे तृतीयस्थानपतौ चतुष्टये केन्द्रे सति तदा पारिजाते पारिजाताह्वये योगे नृपपूजितः राजपूजितः नृपसम्मतो वा राजवल्लभः स्यात् । उपजातिवृत्तमेतत् ।।९।।

केन्द्र अथवा कोण में अर्थात् नवम या पञ्चमस्थान में दशमस्थान का स्वामी होने पर **श्रीवत्स** नामक योग होता है और इस योग में जातक श्रीमान् होता है और (यदि

तृतीयस्थान का स्वामी केन्द्र में होने पर **'पारिजात'** नामक योग होता है और इस योग में जातक नृपपूज्य होता है ।।९।।

अथ मुक्तादाख्यं योगं सफलमनुष्टुब्वृत्तेनाह–

केन्द्रे वा लाभगेहे वा कोणे वाम्बुपतिर्यदा ।
मुक्तादामाख्ययोगः स्याद् बहुभोगधनप्रदः ।।१०।।

केन्द्रइति । यदा अम्बुपतिः चतुर्थस्थानस्वामी केन्द्रे वा लाभगेहे एकादशे वा कोणे नवपञ्चमस्थाने वा भवति तदा बहुभोगधनप्रदः मुक्तादामाख्ययोगः भवति । अनुष्टुब्वृत्तमिदम् ।।१०।।

चतुर्थस्थान का स्वामी केन्द्र, कोण अथवा एकादशस्थान में होने पर **'मुक्तादाम'** नामक योग होता है और इस योग में जातक को नाना प्रकार के भोग और धन प्राप्ति होती है ।।१०।।

अथ वित्तयोगाख्यं योगं सफलमनुष्टुब्वृत्तेनाह–

कोणकेन्द्रकुटुम्बायनिकेतनगतो यदा ।
मङ्गलो रात्रिनाथेन युक्तः स्याद्वित्तयोगदः ।।११।।

कोणकेन्द्रेति । यदा रात्रिनाथेन चन्द्रेण युक्तः मङ्गलः कोणकेन्द्रकुटुम्बाय-निकेतनगतः कोणं नवपञ्चमस्थानं केन्द्रं कुटुम्बं द्वितीयस्थानमायमेकादशस्थानं च एतानि निकेतनानि गृहाणि गतः स्यात् तदा वित्तयोगप्रदः भवति । अनुष्टुब्वृत्त-मेतत् ।।११।।

मङ्गल युक्त चन्द्र नवम, पञ्चम, प्रथम, चतुर्थ, सप्तम, दशम, एकादश अथवा द्वितीयस्थान में होने पर **द्रव्ययोग** प्राप्त होता है। अर्थात् तृतीय, षष्ठ, अष्टम और द्वादश और स्थान को छोड़कर मङ्गल युक्त चन्द्र के होने पर **द्रव्ययोग** प्राप्त होता है ।।११।।

अथ मृगराजाख्यं योगं सफलमुपेन्द्रवज्रावृत्तेनाह–

कौर्प्यमेषहरिकर्कटयातौ चापराशिझषराशिगतौ वा ।
भास्करात्मजवसुन्धरात्मजौ स्यात्तदा सुखकरो मृगराजः ।।१२।।

कौर्प्येति । यदा भास्करात्मजवसुन्धरात्मजौ भास्करात्मजः सूर्यसुतः शनिः वसुन्धरात्मजः मङ्गलश्च कौर्प्यमेषहरिकर्कटयातौ वृश्चिक-मेष-सिंह-कर्कटराशीन्

गतौ । वा अथवा चापराशिः धनुः मीनराशिः एतौ गतौ स्यातां तदा सुखकरः मृगराजाख्ययोगः भवति । उपेन्द्रवज्रावृत्तमिदम् । तल्लक्षणम्-उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गौ ।।१२।।

शनि और मङ्गल ये दोनों ग्रह वृश्चिक, मेष, सिंह, कर्क, धनु अथवा मीनराशि में होने पर **मृगराज** नामक योग होता है और वह जातक को सुखकारक होता है। ॥१२॥

अथ दोलाक्षत्रप्रदाख्यं योगं सफलमनुष्टुब्वृत्तेनाह–

यदाम्बरचराः सन्ति मीनमेषवृषाश्रिताः ।
दोलाक्षत्रप्रदो योगस्तदा सुखकरो भवेत् ।।१३।।

यदिति । यदा अम्बरचराः ग्रहाः मीनमेषवृषभराशीन् गताः सन्ति तदा सुखकरः दोलाक्षत्रप्रदाख्यः योगः भवति । अनुष्टुब्वृत्तमिदम् ।।१३।।

मीन, मेष और वृषभराशि में ग्रहों के होने पर **दोलाक्षत्रप्रद** नामक योग होता है और वह सुखप्रद होता है ॥१३॥

अथ हंसाख्यं योगं सफलमुपेन्द्रवज्रावृत्तेनाह–

कोणं च केन्द्रं न खलाः प्रयाता लग्नेशजीवश्च चतुष्टयेतः ।
द्रव्यप्रदं सौख्यकरं तदैव हंसाख्ययोगं मुनयो वदन्ति ।।१४।।

कोणमिति । यदा कोणं च केन्द्रं च खलाः पापग्रहाः न प्रयाताः गताः । च लग्नेशजीवः लग्नपतिः गुरुः चतुष्टयेतः चतुष्टयं केन्द्रमितः गतः भवति तदा मुनयः द्रव्यप्रदं सौख्यकरं हंसाख्ययोगं वदन्ति । उपेन्द्रवजावृत्तमेतत् ।।१४।।

कोण और केन्द्र पाप ग्रहों से रहित हों और लग्न का स्वामी गुरु केन्द्र में हो तो द्रव्य और सौख्य को देने वाला **हंस** नामक योग होता है ॥१४॥

अथामराख्यं योगं सफलमनुष्टुब्वृत्तेनाह–

अमराह्वययोगः स्यात् केन्द्रकोणगते गुरौ ।
चतुर्थे पापखेटे च योगेऽस्मिन् श्रीयुतो नरः ।।१५।।

अमराह्वयेति । केन्द्रस्थानां कोणस्थानं नवपञ्चमस्थानं च गते गुरौ चतु पापखेटे पापग्रहे च सति अमराह्वययोगः स्यात् । अस्मिन् योगे नरः मनुज श्रीयुतः भवति ।अनुष्टुब्वृत्तमेतत् ।।१५।।

केन्द्र में अथवा कोण में गुरु तथा चतुर्थस्थान में पापग्रह के रहने पर **अमर** नामक योग होता है, इस योग में जातक श्रीमान् होता है ॥१५॥

अथ विद्रुमाख्यं योगं सफलमनुष्टुब्वृत्तेनाह–

नक्षत्रेशेन संयुक्ते भार्गवेणेक्षिते गुरौ ।
विद्रुमाख्यो भवेद् योगः श्रीमानत्र भवेन्नरः ॥१६॥

नक्षत्रेशेनेति । नक्षत्रेशेन चन्द्रेण संयुक्ते भार्गवेण शुक्रेण ईक्षिते दृष्टे गुरौ सति विद्रुमाख्यः योगः भवेत् । अत्र अस्मिन् योगे नरः मनुजः श्रीमान् भवेत् । अनुष्टुब्वृत्तमिदम् ॥१६॥

चन्द्र युक्त गुरु पर शुक्र की दृष्टि होने **'विद्रुम'** नामक योग होता है । इस योग में जातक श्रीमान् होता है ॥१६॥

अथ कुमुदाख्यं योगं सफलमनुष्टुब्वृत्तेनाह–

शुभाङ्गपेन शुक्रेण चेन्दुः पूर्णो निरीक्षितः ।
करोति कुमुदं योगं धनकीर्तिसुखप्रदम् ॥१७॥

शुभाङ्गपेनेति । शुभाङ्गपेन शुभलग्नस्वामिना शुक्रेण च निरीक्षितः दृष्टः पूर्णः इन्दुः चन्द्रः धनकीर्तिसुखप्रदं कुमुदाख्ययोगं करोति । अनुष्टुब्वृत्त-मिदम् ॥१७॥

शुभ लग्नेश की तथा शुक्र की दृष्टि पूर्णचन्द्र पर होने पर **कुमुद** नामक योग होता है । यह योग जातक को धन और कीर्ति प्रदान करता है ॥१७॥

अथ प्रतापाख्यं योगं सफलं वसन्ततिलकावृत्तेनाह–

सूर्याद् द्वितीय उशनोज्ञसुरा अनस्ता योगं प्रतापमिनसौरिकुजैरदृष्टाः ।
कुर्वन्ति पापखचरैरयुताश्च सर्वैः सौख्यान्वितो नृपतिरत्र समुद्रपालः ॥१८॥

सूर्यादिति । सूर्याद् द्वितीये द्वितीयस्थाने अनस्ताः अस्तं न प्रयाताः इनसौरिकुजैः सूर्यशनिमङ्गलैः अदृष्टाः न विलोकिताः सर्वे पापखचरैः पापग्रहैः अयुताः न युक्ताः च उशनोज्ञसुराः शुक्रबुधगुरवः प्रतापयोगं कुर्वन्ति । अत्रास्मिन् योगे समुद्रपालः सौख्यान्वितः नृपतिः भवति । वसन्ततिलकावृत्तमेतत् । तल्लक्षणम् उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः ॥१८॥

सूर्य से दूसरे स्थान में शुक्र, बुध और गुरु स्थित हों और उन पर रवि, शनि

और मङ्गल ग्रहों की दृष्टि न हो और वे किसी भी पापग्रह से युक्त न हों तो, '**प्रताप**' नामक योंग होता है। इस योग में जातक समुद्रवलयाङ्कित पृथ्वी का राजा होता है ॥१८॥

अथ शत्रुनाशदामोदराख्यं योगद्वयं सफलमनुष्टुब्वृत्तेनाह–

शत्रुनाशाख्ययोगः स्याल्लग्नपः षष्ठगो यदा ।
अथ दामोदरो विद्याप्रदयोगोऽबुगे गुरौ ॥१९॥

शत्रुनाशाख्येति । यदा लग्नपः लग्नस्वामी षष्ठगः षष्ठगृहं गतः तदा शत्रुनाशाख्यः योगः स्यात् । अथ अम्बुगे चतुर्थस्थानं गते गुरौ सति विद्याप्रदयोगः दामोदराख्यः भवति । अनुष्टुब्वृत्तमिदम् ॥१९॥

लग्नेश षष्ठ स्थान में होने पर '**शत्रुनाश**' नामक योग होता है, और चतुर्थस्थान में गुरु के होने पर '**दामोदर**' नामक योग होता है और यह योग विद्यासुख देता है ॥१९॥

अथाधियोगाख्यं योगं सफलमनुष्टुब्वृत्तेनाह–

मृत्युकामारिगाश्चन्द्राच्छुभाः क्रूरैरवीक्षिताः ।
अधियोगं तदा प्राहुर्नृपजन्मप्रदं बुधाः ॥२०॥

मृत्युकामेति । चन्द्रात् मृत्युकामारिगाः अष्टमसप्तमषष्ठस्थानगताः क्रूरैः पापैः अवीक्षिताः नालोकिताः शुभाःशुभग्रहाः यदा भवन्ति तदा नृपजन्मप्रदमधियोगं बुधाः पण्डिताः प्राहुः । अनुष्टुब्वृत्तमेतत् ॥२०॥

पण्डितों के विचार में– चन्द्र से अष्टम, सप्तम और षष्ठस्थान में शुभ ग्रहों के होने पर और यदि वे पापग्रहों से दृष्ट न हों तो राजजन्म देने वाला '**अधियोग**' होता है ॥२०॥

अथ चिन्तामण्याख्यं योगं सफलमुपेन्द्रवज्रावृत्तेनाह–

चिन्तामणिं द्रव्यकरं च योगं कुर्वन्ति चन्द्राद्धिबुके सुखेटाः ।
ग्रहत्रयं तुङ्गगृहप्रयातं चेद्वीर्ययुक्तं नृपवन् मनुष्यः ॥२१॥

चिन्तामणिमिति । चन्द्रात् हिबुके चतुर्थस्थाने गृहस्थाने वा, सुखेटाः शुभग्रहा द्रव्यकरं चिन्तामणिं योगं कुर्वन्ति । तुङ्गगृहप्रयातं उच्चस्थानगतं वीर्ययुक्तं बलयुक्तं ग्रहत्रयं त्रिग्रहाः चेत् तदा मनुष्यः नृपवत् नृपतुल्यः भवति उपेन्द्रवज्रावृत्तमिदम् ॥२१॥

चन्द्र से चतुर्थस्थान में शुभग्रहों के होने पर द्रव्य सुख देने वाला **'चिन्तामणि'** नामक योग होता है और जन्मकाल में उच्च के तीन बलवान् ग्रहों के होने पर मनुष्य राजा जैसा होता है ॥२१॥

अथ लक्ष्मीकान्ताख्यं योगं सफलमनुष्टुब्वृत्तेनाह–

लग्नचन्द्रौ यदि स्यातां निजवर्गोत्तमागतौ ।
लक्ष्मीकान्ताह्वयो योगो लक्ष्मीसौख्यप्रदो भवेत् ।।२२।।

लग्नचन्द्राविति । यदि लग्नचन्द्रौ निजवर्गोत्तमागतौ स्ववर्गोत्तमस्थानमागतौ स्यातां तदा लक्ष्मीसौख्यप्रदः लक्ष्मीकान्ताह्वयः योगः भवेत् । अनुष्टुब्वृत्तमेतत् ।।२२।।

लग्न और चन्द्र यदि अपने-अपने वर्गोत्तम में स्थित हों तो **'लक्ष्मीकान्त'** नामक योग होता है और वह द्रव्यसुख देता है ॥२२॥

अथ खलककुलनायकाख्यं योगद्वयं सफलं स्वागतावृत्तेनाह–

मेषकर्कवृषराशिग इन्दौ श्रीप्रदश्च खलको गुरुदृष्टे ।
जीववीक्षितसिते बलयुक्ते सौख्यदश्च कुलनायकयोगः ।।२३।।

मेषकर्केति– मेषकर्कवृषराशिगे गुरुदृष्टे इन्दौ चन्द्रे सति श्रीप्रदः द्रव्यप्रदः खलकाख्ययोगः भवति । च जीववीक्षितसिते जीवेन गुरुणा वीक्षिते दृष्टे सिते शुक्रे बलयुक्ते सति कुलनायकयोगः सौख्यदः भवति । स्वागतावृत्तमिदम् । तल्लक्षणम्-स्वागतेति रनभाद् गुरुयुग्मम् ।।२३।।

मेष, कर्क और वृषभराशि में गुरुदृष्ट चन्द्र के आने पर **'खलक'** नामक योग होता है। वह द्रव्यसुख देता है। गुरु दृष्ट शुक्र यदि बलवान् हो तो **'कुलनायक'** योग सुखप्रद होता है ॥२३॥

अथ विधुशेखरजनसार्वभौमाख्यं योगद्वयं सफलं वसन्ततिलकावृत्तेनाह–

सौम्येक्षितो रविसुतो विधुशेखराख्यं योगं करोति मनुजोऽत्र सुकर्मकर्ता ।
लग्नं विना शशधरो यदि केन्द्रगामी श्रीपुत्रसौख्यफलकृज्जनसार्वभौमः ।।२४।।

सौम्येक्षित इति । सौम्येक्षितः बुधेन ईक्षितः दृष्टः रविसुतः दिनकरतनयः, शनिः विधुशेखराख्यं योगं करोति । अत्र अस्मिन् योगे मनुजः सुकर्मकर्ता भवति । यदि शशधरः शशी चन्द्रः लग्नं विना केन्द्रगामी स्यात् तदा श्रीपुत्रसौख्यफलकृत् जनसार्वभौमनामा योगो भवति । वसन्ततिलकावृत्तमेतत् ।।२४।।

बुध की दृष्टि यदि शनि पर हो तो **विधुशेखर** नामक योग होता है और इस योग में मनुष्य सत्कर्म करने वाला होता है। लग्न को छोडकर चन्द्र यदि केन्द्र में हो तो जातक **जनसार्वभौम** नामक योग प्राप्त कर सन्तति तथा सम्पत्ति को प्राप्त करता है ॥२४॥

अथ सत्कामधेन्वाख्यं योगं सफलमुपजातिवृत्तेनाह–

विलोकितं लग्नगृहं सितेन सत्कामधेनुं प्रकरोति योगम् ।
जातो भवेदत्र सुरूपयुक्तः सत्कर्मकर्ता च रिपुप्रहर्ता ।।२५।।

विलोकितमिति– सितेन शुक्रेण विलोकितं दृष्टं लग्नगृहं सत्कामधेनुं योगं करोति। अत्र जातः मनुजः सुरूपयुक्तः सत्कर्मकर्ता च रिपुप्रहर्ता रिपुघ्नः स्यात्। वृत्तमिदमुपजातिः ।।२५।।

शुक्र की दृष्टि यदि लग्न पर हो तो **'सत्कामधेनु'** नामक योग होता है। इस योग में जातक सुरूपवान्, सत्कर्मकर्ता और शत्रु को पराजित करने वाला होता है ॥२५॥

अथ पूर्णचन्द्राख्यं योगं सफलमनुष्टुब्वृत्तेनाह–

स्वोच्चस्थः सिंहिकापुत्रः कोणे वा कण्टके लये ।
पूर्णचन्द्राह्वये योगे तदा श्रीमान् भवेन्नरः ।।२६।।

स्वोच्चस्थ इति। यदा स्वोच्चस्थः मिथुनराशिस्थः सिंहिकापुत्रः राहुः कोणे नवपञ्चमस्थाने कण्टके केन्द्रे लये अष्टमे वा स्यात् तदा पूर्णचन्द्राह्वये योगे नरः श्रीमान् भवेत् ॥२६॥

उच्चस्थ अर्थात् मिथुन राशि का राहु यदि नवम, पञ्चम, केन्द्र या अष्टम में हो तो **पूर्णचन्द्र** नामक योग होता है, यह योग जातक को द्रव्यसुख देता है ॥२६॥

अथ माणिक्याख्यं योगं सफलमुपजातिवृत्तेनाह–

बलान्वितैः सर्वखगैः प्रदृष्टं माणिक्ययोगं कुरुते विलग्नम् ।
जातो भवेदत्र धनान्वितश्च जीवेच्चिरं सर्वभयप्रमुक्तः ।।२७।।

बलान्वितैरिति। बलान्वितैः बलिभिः सर्वखगैः प्रदृष्टं विलग्नं माणिक्याख्यं योगं कुरुते। अत्र जातः नरः धनान्वितः चिरं जीवेत् च सर्वभयप्रमुक्तः स्यात्। उपजातिवृत्तमेतत् ॥२७॥

सभी ग्रहों की दृष्टि यदि लग्न पर हो तो, **'मणिक्य'** नामक योग होता है, इस योग में जातक धनवान्, निर्भय और दीर्घायु होता है ॥२७॥

अथ दीप्ताख्यं योगं सफलमनुष्टेब्वृत्तेनाह–

केन्द्रस्थास्तुङ्गगाः खेटा दीप्तयोगस्तदा भवेत् ।
शत्रुजेताऽत्र जातः स्याद् धनवान् नृपवन्नरः ॥२८॥

केन्द्रस्था इति । यदा केन्द्रस्थाः तुङ्गगाः उच्चस्थानगताः खेटाः ग्रहाः स्युः तदा दीप्ताख्यः योगः भवेत् । अत्र जातः नरः शत्रुजेता अरिघ्नः नृपवत् नृपतुल्यः धनवान् स्यात् । अनुष्टुब्वृत्तमिदम् ॥२८॥

उच्च के ग्रह केन्द्र में होने पर **'दीप्त'** नामक योग होता है । इस योग में जन्म लिया जातक शत्रुजेता होता है और नृपसदृश श्रीमान् होता है ॥२८॥

अथ हर्षितशान्ताख्यं योगद्वयं सफलं स्वागतावृत्तेनाह–

मित्रगेहगतखेटगणाश्चेत् द्रव्यदो भवति हर्षितयोगः ।
स्युर्ग्रहाः शुभदवर्गयुताश्चेत् शान्तिदो भवति शान्तसुयोगः ॥२९॥

मित्रगेहगतेति । यदा खेटगणाः ग्रहगणाः मित्रगेहगताः भवन्ति चेत् तदा हर्षिताख्यः योगः द्रव्यदः भवति । यदा शुभवर्गयुताः ग्रहाः स्युः तदा शान्ताख्यः सुयोगः शान्तिदः भवति । स्वागतावृत्तमेतत् ॥२९॥

मित्र राशि में ग्रह होने पर **'हर्षित'** नामक योग द्रव्यसुख देता है और यदि ग्रह शुभग्रहों के वर्ग में होते हैं, तो **'शान्त'** नामक योग शान्तिसुख देता है ॥२९॥

अथ स्वस्थचन्द्रोदयाख्यं योगद्वयं सफलं शार्दूलविक्रीडितेनाह–

स्वागारागतखेचरा यदि तदा स्वस्थाख्ययोगो भवेत्
योगेऽस्मिंश्च कुटुम्बवान्धनयुतः सेनापतिर्मानवः ।
सद्वर्गस्वगृहोच्चमित्रगृहगः सद्दृष्टपूर्णाब्धिजः
शान्तः स्याद्गुणवांस्तदा च मनुजो योगे तु चन्द्रोदये ॥३०॥

स्वागारागतेति । यदि स्वागारागतखेचराः स्वेषां अगाराणि गृहाणि आगताः प्राप्ताः खेचराः ग्रहाः भवन्ति तदा स्वस्थाख्यः योगः भवेत् । अस्मिन् योगे कुटुम्बवान् धनयुतः सेनापतिः च मानवः भवति । यदा सदृष्टपूर्णाब्धिजः सद्भिः शुभग्रहैः दृष्टश्चासौ पूर्णाब्धिजश्च पूर्णचन्द्रश्च सद्वर्गस्वगृहोच्चमित्रगृहगः सद्वर्गे वा स्वगृहे किंवा उच्चेऽथवा मित्रगृहे स्थितः अस्ति तदा चन्द्रोदये चन्द्रोदयनामनि

योगे मनुजः गुणवान् शान्तः च स्यात् । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तमेतत् । तल्लक्षणम्-सूर्याश्वैर्मसजस्तताः सगुरवः शार्दूलविक्रीडितम् ।।३०।।

ग्रह स्वगृही होने पर **'स्वस्थ'** नाम का योग होता है, यह योग जातक को कुटुम्बी, द्रव्यवान् और सेनापति बनाता है। शुभग्रह के वर्ग में अथवा स्वगृही या उच्चस्थान में या मित्रगृह में शुभग्रह द्वारा दृष्ट पूर्णचन्द्र होने पर **'चन्द्रोदय'** नामक योग होता है। इस योग में जातक गुणवान् और शान्त स्वभाव का होता है ।।३०।।

अथावतंसाख्यं योगं सफलमनुष्टुब्वृत्तेनाह–

जूककन्यागते जीवे वृषे मेषे च वा सिते।
सदृष्टे ज्ञेऽलिगे योगोऽवतंसश्चतुरोऽत्र ना ।।३१।।

जूकेति। जूककन्यागते जूकः तुलाख्यः राशिः कन्या प्रसिद्धा एतौ राशी गते जीवे बृहस्पतौ गुरौ मेषे वृषे वा सिते भृगुसुते शुक्रे च अलिगे वृश्चिकप्राप्ते सदृष्टे शुभग्रहदृष्टे ज्ञे शीतरश्मिजे बुधे च सति अवतंसः योगः भवति। अत्रास्मिन् ना नरः चतुरः भवति। अनुष्टुब्वृत्तमेतत् ।।३१।।

तुला और कन्याराशि का गुरु, वृषभ और मेषराशि का शुक्र और शुभग्रह के द्वारा दृष्ट बुध वृश्चिक राशि में हो तो, **अवतंस** नामक योग होता है। इस योग में जातक चतुर होता है ।।३१।।

अथ छत्रफलाख्यं योगद्वयं सफलं मालिन्याऽऽह–

मदनतनुकुटुम्बद्वादशप्राप्तखेटाः बहुविधसुखयुक्तं कुर्वते छत्रयोगम्।
उदयभवधनेशाः केन्द्रकोणागताश्चेत् भवति च फलयोगः सौख्यदो मानवानाम् ।।३२।।

मदनेति। मदनतनुकुटुम्बद्वादशप्राप्तखेटाः सप्तमलग्नद्वितीयद्वादशस्थानस्थिताः खेटाः ग्रहाः बहुविधसुखयुक्तं छत्रयोगं कुर्वते। च उदयभवधनेशाः उदयं लग्नं भवं एकादशस्थानं धनं द्वितीयस्थानं एतेषाम् ईशाः स्वामिनः केन्द्रकोणे आगताः प्राप्ता भवन्ति चेत् तदा मानवानां सौख्यदः फलयोगः भवति। वृत्तमेतन्मालिनी। तल्लक्षणम्-वसुमुनिविरतिश्चेन्मालिनी नौ मयौ यः ।।३२।।

सप्तम, प्रथम, द्वितीय और द्वादश स्थान में ग्रहों के होने पर नानाप्रकार के सुखों को देने वाला **छत्र** नामक योग होता है और लग्न, एकादश और द्वितीयस्थानों के स्वामी यदि केन्द्र तथा कोणों में अर्थात् नवम और पञ्चमस्थानों में होने पर जातकों के लिए सुखकारक **फल** नामक योग होता है ।।३२।।

अथ रत्नाञ्जलिपुष्कराख्यं योगद्वयं सफलमनुष्टुब्वृत्तेनाह–

धर्मपो धर्मगो जातः श्रीमान् रत्नाञ्जलौ तदा ।
लाभपो यदि लाभस्थः सुशीलः पुष्करे नरः ।।३३।।

धर्मपइति– यदा धर्मपः नवमस्थानस्वामी धर्मगः नवमस्थानगतः स्यात् तदा रत्नाञ्जलौ जातः मनुजः श्रीमान् भवेत् । यदि लाभपः एकादशस्थानस्वामी लाभस्थः एकादशस्थानस्थितः स्यात् तदा पुष्करे पुष्कराह्वये योगे नरः मनुजः सुशीलः भवति । अनुष्टुब्वृत्तमिदम् ।।३३।।

नवमस्थान का स्वामी नवमस्थान में होने पर **रत्नाञ्जलि** नामक योग में जातक धनवान् तथा एकादश स्थान का स्वामी एकादशस्थान में होने पर **'पुष्कर'** नामक योग होता है और इस योग में जातक सुशील होता है ।।३३।।

अथ संग्रहश्रुताख्यं योगद्वयं सफलमुपजातिवृत्तेनाह–

व्ययाधिनाथो व्ययगेहगश्चेत् नानार्थदः संग्रहयोग उक्तः ।
कुर्वन्ति खेटा जलबुद्धियाताः श्रुताख्ययोगं मनुजोऽत्र शास्त्री ।।३४।।

व्ययाधिनाथइति । व्ययाधिनाथः द्वादशस्थानस्वामी व्ययगेहगः चेत् द्वादशस्थः स्यात् चेत् तदा नानाविधार्थदः संग्रहाख्यः योगः भवति । जलबुद्धियाताः चतुर्थपञ्चमस्थानप्राप्ताः खेटाः ग्रहाः श्रुताख्ययोगं कुर्वन्ति । अत्रास्मिन् योगे मनुजः शास्त्री स्यात् । उपजाति-वृत्तमेतत् ।।३४।।

द्वादशस्थान का स्वामी द्वादशस्थान में होने पर नाना प्रकार के सुखों को देने वाला **'संग्रह'** नामक योग होता है । चतुर्थ तथा पञ्चमस्थानों में ग्रह होने पर **श्रुत** नामक योग होता है । इस योग में जातक शास्त्रज्ञ होता है ।।३४।।

अथ विवृद्धिकर्णाख्यं योगद्वयं सफलमिन्द्रवज्रावृत्तेनाह–

खेटा यदा व्योमगता धनस्य विवृद्धियोगः क्षयवृद्धिकर्ता ।
धर्मास्पदागारगता ग्रहाश्चेत् कर्णाख्ययोगः सुखवित्तदः स्यात् ।।३५।।

खेटा इति । यदा खेटाः ग्रहाः व्योमगताः दशमस्थानगताः भवन्ति तदा विवृद्धियोगः धनस्य क्षयवृद्धिकर्ता स्यात् । धर्मास्पदागारगताः धर्मं नवमास्पदं दशमं एतयोः अगारे गृहे गताः ग्रहाः चेत् तदा सुखवित्तदः कर्णाख्ययोगः भवति । वृत्तमेतदिन्द्रवज्रा । तल्लक्षणम्– स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः ।।३५।।

दशमस्थान में ग्रहों के होने पर द्रव्य की क्षयवृद्धि करने वाला **विवृद्धि** नामक

योग होता है और नवम तथा दशमस्थान में ग्रहों के होने पर **कर्ण** नामक योग सुख-द्रव्य को देने वाला होता है ॥३५॥

अथ कूर्मयोगाख्यं योगं सफलमनुष्टुब्वृत्तेनाह–

लग्नव्ययगताः खेटा कूर्मयोगस्तदा भवेत् ।
वयोमध्येऽत्र धीरः स्यान्निजकर्मणि मानवः ।।३६।।

लग्नव्ययेति । यदा लग्नव्ययगताः लग्नद्वादशस्थानगताः खेटाः ग्रहाः भवन्ति तदा कूर्मयोगः भवति । अत्र अस्मिन् योगे मानवः वयो मध्ये वयसः मध्ये मध्यावस्थायां निजकर्मणि धीरः भवति । अनुष्टुब्वृत्तमिदम् ।।३६।।

लग्न और द्वादश स्थान में ग्रहों के होने पर **कूर्मयोग** नामक योग में जातक अपनी आयु की मध्यमावस्था में (अपने) निज कर्मों में स्थिर रहता है ॥३६॥

अथ महाकूर्माख्यं योगं सफलमनुष्टुब्वृत्तेनाह–

जामित्रे च रिपौ खेटा महाकूर्मो भवेत् तदा ।
योगेऽस्मिन् भोगवाञ्जातो नानास्त्रकुशलो नरः ।।३७।।

ज्यामित्र इति । यदा जामित्रे जामित्रमस्तभवनम् अस्तभवनं सप्तमस्थानम् । यतः सर्व एव ग्रहा उदयराशेः सप्तमराशावस्तं यान्ति तदेवास्तभवनं जामित्रम्, तस्मिन्, सप्तमे रिपौ च षष्ठस्थाने च खेटाः ग्रहाः भवन्ति तदा महाकूर्मयोगः भवति । अस्मिन् योगे जातः नरः भोगवान् नानास्त्रकुशलः स्यात् । अनुष्टुब्वृत्तमिदम् ।।३७।।

सप्तम और षष्ठ स्थान में ग्रहों के होने पर **महाकूर्म** नामक योग होता है । इस योग में जातक नाना प्रकार की शस्त्रकला में निपुण और भोगी होता है ॥३७॥

अथ नृपतुल्याख्यं योगमिन्द्रवज्रावृत्तेनाह–

यो नीचराशिं विहगः प्रयातस्तद्राशिनाथोच्चगृहं भवेद्यत् ।
तद्गेहनाथो यदि केन्द्रवर्ती वसुन्धरायां नृपवन्मनुष्यः ।।३८।।

य इति । यः नीचराशिं विहगः ग्रहः प्रयातः गतः तद्राशिनाथोच्चगृहं तस्य नीचग्रहस्य राशिनाथस्य यद् उच्चगृहं स्यात् तद्गेहनाथः तस्य उच्चगृहस्य राशेः नाथः स्वामी यदि केन्द्रवर्ती केन्द्रयातः भवेत् तदा वसुन्धरायां पृथिव्यां नृपवन्नृपतुल्यः मनुष्यः भवति । इन्द्रवज्रावृत्तमिदम् ।।३८।।

जन्मकालीन कुण्डली में नीचराशि गत जो ग्रह होगा, उस नीचग्रह की राशि के स्वामी का जो उच्च स्थान होगा, उस स्थान की राशि का स्वामी यदि केन्द्र में होगा तो जातक पृथ्वी पर नृपतुल्य होता है ॥३८॥

अथ गजकेसरीयोगमुपजातिवृत्तेनाह–

धने धनेशो भवगो भवेशः केन्द्रेऽथवा तौ बहुवित्तदौ स्तः ।
मृगाङ्कजीवौ यदि कण्टकस्थौ द्रव्यप्रदः स्याद् गजकेसरी च ।।३९।।

धन इति । धने द्वितीये धनेशः द्वितीयस्थानस्वामी भवगः एकादशस्थानगतः भवेशः एकादशस्थानस्वामी अथवा तौ द्वितीयैकादशस्थानस्वामिनौ केन्द्रे भवेतां तदा बहुवित्तदौ स्तः यदि कण्टकस्थौ केन्द्रस्थौ मृगाङ्कजीवौ चन्द्रबृहस्पती भवेतां तदा द्रव्यप्रदःगजेकेसरिनामा योगो भवति । उपजातिवृत्तमेतत् ।।३९।।

द्वितीयस्थान का स्वामी द्वितीयस्थान में और एकादशस्थान का स्वामी एकादशस्थान में अथवा वे दोनों ही ग्रह केन्द्र में होने पर द्रव्यप्राप्ति होती है और चन्द्र तथा गुरु केन्द्र में स्थित हो तो **गजकेसरी** नामक द्रव्यदायक योग होता है ॥३९॥

अथ कुलदीपकयोगं सफलमिन्द्रवंशयाऽऽह–

सिंहाङ्गवर्ती यदि भूमिनन्दनो नक्षत्रनाथश्च सुतालयं गतः ।
रिःफाख्यगेहागतसिंहिकासुतो भवेदवन्यां कुलदीपको नरः ।।४०।।

सिंहाङ्गेति । यदि सिहाङ्गवर्ती सिंहाख्ये अङ्गे लग्ने वर्ततेऽसौ लग्ने सिंहराशिंगत भूमिनन्दनः मङ्गलः च सुतालयं सुतभं त्रिकोणम् । सुतभं पञ्चमस्थानं त्रिकोणसंज्ञम् । पञ्चमगेहं वा गतः नक्षत्रनाथः चन्द्रः रिःफाख्यगेहागतसिंहिकासुतः द्वादशस्थानगतः राहुः च भवन्ति तदा अवन्यां पृथिव्यां कुलदीपकः नरः भवति । इन्द्रवंशावृत्तमिदम् । तल्लक्षणम्–ताविन्द्रवंशा जरसंहितौमता ।।४०।।

जन्म लग्न में सिंह राशि का मङ्गल और पञ्चमस्थान में चन्द्र तथा द्वादशस्थान में राहु के होने पर जातक कुल की कीर्ति को बढाने वाला होता है ॥४०॥

अथ भूपसमाख्यं योगमुपजातिवृत्तेनाह–

चन्द्रे तृतीये सुतगे गुरौ च रवौ च धर्मे धनवान्मनुष्यः ।
गरुश्च शुक्रश्च विधुश्च विच्च केन्द्रे तदा भूपसमो नरः स्यात् ।।४१।।

चन्द्रइति । चन्द्रे तृतीये गुरौ त्रिदशगुरौ सुतगे पञ्चमगृहगते ते रवौ अर्के

धर्मे नवमस्थाने च सति तदा मनुष्यः धनवान् भवति । गुरुः च शुक्रः च विधुः चन्द्रः च वित् बुधः च एते ग्रहाः यदा केन्द्रे भवन्ति तदा भूपसमः नृपतुल्यः नरः स्यात् । उपजातिवृत्तमिदम् ।।४१।।

तृतीयस्थान में चन्द्र, पञ्चमस्थान में गुरु और नवमस्थान में सूर्य के होने पर जातक श्रीमन्त होता है। गुरु, शुक्र, चन्द्र, और बुध ग्रह केन्द्र में होने पर जातक नृपसदृश होता है ।।४१।।

अथ श्रीसौख्ययोगं सफलमनुष्टुब्वृत्तेनाह–

गुरौ च विक्रमस्थाने लाभगेहगते विधौ ।
निजागारे भवेच्छ्रेष्ठः श्रीसौख्यसहितो नरः ।।४२।।

गुराविति । विक्रमस्थाने तृतीयगृहे गुरौ विबुधगुरौ लाभगेहगते उपान्त्यगृहगे एकादशगृहगते वा विधौ चन्द्रे सति च श्रीसौख्यसहितः नरः निजगेहे श्रेष्ठः भवेत् । अनुष्टुब्वृत्तमिदम् ।।४२।।

तृतीयस्थान में गुरु तथा एकादशस्थान में चन्द्र के होने पर जातक अपने परिवार में श्रेष्ठ होकर द्रव्य का उपभोग करता है ।।४२।।

अथ धीरयोगं सफलमनुष्टुब्वृत्तेनाह–

सदृष्टः कर्मगः सौरो धीरयोगस्तदा भवेत् ।
योगेऽस्मिन् श्रीयुतो जातो पत्तने दण्डनायकः ।।४३।।

सदृष्ट इति । यदा सदृष्टः कर्मगः दशमगृहगतः सौरःशनिः भवेत् तदा धीरयोगः भवेत् । अस्मिन् योगे श्रीयुतः जातः मनुजः पत्तने नगरे दण्डनायकः भवति । अनुष्टुब्वृत्तमेतत् ।।४३।।

शुभग्रह के द्वारा दृष्ट शनि यदि दशमस्थान में हो तो **धीरयोग** होता है । इस योग में जातक अपने ग्राम में धनवान् और अपराधियों को दण्ड देने वाला होता है ।।४३।।

अथ मुक्ताञ्जलिशयनीकलशपीयूषाख्यं योगचतुष्टयं स्रग्धरयाऽऽह–

जातो मुक्ताञ्जलौ चेन्नवमगृहगतो लाभनाथोऽस्ति शास्त्री
नित्यं कल्याणकृत्स्यात्सुतगतखचराश्चेच्छयन्याख्ययोगः ।
चेदस्तेंऽगे च पापा नभसि च कलशो धान्यवृद्धिप्रदः स्यात्
पीयूषः शौर्यदः स्याद्यदि भवगखलाः केन्द्रयाताः शुभाश्च ।।४४।।

जात इति। नवमगृहगतः लाभनाथः एकादशस्वामी चेत् तदा मुक्ताञ्जलौ योगे जातः नरः शास्त्री अस्ति भवति। अथ सुतगतखचराः पञ्चमस्थानप्राप्ताः खचराः ग्रहाः सन्ति चेत् तदा शयन्याख्ययोगः नित्यं कल्याणकृत् स्यात्। अस्ते सप्तमस्थाने अङ्गे लग्ने नभसि दशमस्थाने च पापाः पापग्रहाः सन्ति चेत् तदा धान्यवृद्धिप्रदः कलशः योगः भवति। अथ भवगखलाः एकादशगृहयाताः खलाः पापाः पापग्रहाः च केन्द्रयाताः शुभाः यदि सन्ति तदा शौर्यदः पीयूषयोगः भवति। स्रग्धरावृत्तमेतत्। पापग्रहाः।।४४।।

एकादशस्थान का स्वामी यदि नवमस्थान में हो तो, **मुक्ताञ्जलि** नामक योग में मनुष्य शास्त्री होता है और पञ्चमस्थान में ग्रहों के आने पर **शयनी** नामक योग नित्य सुखदायक होता है। तथा पापग्रह यदि सप्तम, प्रथम, और दशमस्थान में हों तो **कलश** नामक योग धान्य का संग्रह कराता है। एकादशस्थान में पापग्रह और केन्द्र में शुभग्रहों के आने पर **पीयूष** नामक योग मनुष्य को शूर-वीर बनाता है।।४४।।

अथ श्रेष्ठाधिपर्वताख्यं योगद्वयं सफलं स्रग्धरयाऽऽह–

जामित्रं षष्ठगेहं शुभगगनचरा मृत्युगेहं च याताः
श्रेष्ठाधिं चोग्रखेटास्तदितरगृहगाः कुर्वते दुःखयुक्तम्।
चेत्खाङ्गास्तालयेताः शुभवियतिचराः पर्वताख्योऽस्ति योगो
योगेऽस्मिन्नुद्भवः स्याद्बहुलबलवतां भूपतीनां जगत्याम्।।४५।।

ज्यामित्रमिति। जामित्रं सप्तमं षष्ठगेहं रिपुसदनं मृत्युगेहं अष्टमं च याताः गताः शुभगगनचराः शुभग्रहाः च तदितरगृहगाः सप्तमषष्ठाष्टमानि त्यक्त्वा इतरगृहगाः उग्रखेटाः पापग्रहाः च दुःखयुक्तं श्रेष्ठाधियोगं कुर्वते। अथ शुभवियतिचराः शुभग्रहाः खाङ्गास्तालयेताः खं दशममङ्गं लग्नमस्तं सप्तमम् एतेषामालयानि इताः गताः सन्ति चेत् तदा पर्वताख्यः योगः भवति। अस्मिन् योगे पृथिव्यां बहुलबलवतां भूपतीनमुद्भवः स्यात्। स्रग्धरावृत्तमिदम्।।४५।।

सप्तम, षष्ठ और अष्टमस्थान में शुभग्रहों के होने पर यदि अन्य स्थानों पर अर्थात् केन्द्र तथा कोण में पापग्रह हों तो वे दुःख युक्त **श्रेष्ठाधि** नामक योग को बनाते हैं। दशमस्थान में, लग्न में और सप्तमस्थान में शुभग्रहों के होने पर **पर्वत** नाम का योग होता है। इस योग में अति बलवान् राजाओं का जन्म होता है।।४५।।

अथ भाग्ययोगं सफलं शार्दूलविक्रीडितेनाह–

कुण्डल्यां शुभमित्रखेटदृगितौ भाग्येशलग्नाधिपौ
चेद्द्रव्यप्रदभाग्ययोग उदितः स्वोच्चस्वभागागतौ ।
वीर्यं सप्तममन्दिरस्य कथितं खेटस्य भावौजसः
युक्तं चेच्छुभखेचरैश्च मदनं ना जायते वीर्यवान् ।।४६।।

कुण्डल्यामिति । कुण्डल्यां शुभमित्रखेटदृगितौ शुभग्रहमित्रग्रहदृष्टौ स्वोच्चस्वभागगतौ स्वोच्चं स्वभागं निजांशं वा आगतौ प्राप्तौ भाग्येशलग्नाधिपौ नवमलग्नस्वामिनौ चेत् द्रव्यप्रदभाग्ययोगः उदितः कथितः । खेटस्य ग्रहस्य भावौजसः भावबलात् सप्तममन्दिरस्य वीर्यं बलं कथितं च शुभखेचरैः शुभग्रहैः युक्तं मदनं सप्तमस्थानं चेत् तदा ना मनुष्यः वीर्यवान् जायते । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तमेतत् ।।४६।।

जन्मलग्न में शुभग्रहों तथा मित्रग्रहों द्वारा दृष्ट अपने उच्चांशों या अपने नवांशों में नवम अथवा प्रथमस्थानों के स्वामी होने पर **द्रव्यदायकभाग्य** योग होता है। सप्तमस्थान का बल तत्रस्थ ग्रहों के भावबल से जानना चाहिए। सप्तमस्थान में शुभ ग्रह होने पर जातक वीर्यवान् होता है ।।४६।।

अथ पराङ्गनोपभोगयोगं भुजङ्गप्रयातेनाह–

यदा सप्तमेशः स्थितो लाभगेहे विदा संयुतं कामिनीमन्दिरं च ।
द्युनं वेक्षितं वा युतं ग्लौशनिभ्यां तदा मानवः स्यात् परस्त्रीषु सक्तः ।।४७।।

यदेति । यदा लाभगेहे एकादशगृहे स्थितः सप्तमेशः अस्ति कामिनींमन्दिरं सप्तमगृहं विदा बुधेन शशिपुत्रेण वा, संयुतं च भवति वा अथवा ग्लौशनिभ्यां चन्द्रशनिभ्यां युक्तं दृष्टं वा द्युनं सप्तमगृहं भवति तदा मानवः परस्त्रीषु सक्तः भवति । वृत्तमेतत् भुजङ्गप्रयातम् । तल्लक्षणम् भुजङ्गप्रयातं चतुर्भिर्यकारैः ।।४७।।

सप्तमस्थान का स्वामी एकादशस्थान में होने पर तथा सप्तमस्थान बुध से युक्त होने पर या सप्तमस्थान पर शनि और चन्द्र की दृष्टि होने पर या उसी स्थान में (सप्तमस्थान में) शनि और चन्द्र के होने पर मनुष्य परस्त्री का उपभोग करता है ।।४७।।

अथ परस्त्रीपराङ्मुखयोगमनुष्टुब्वृत्तेन श्लोकद्वयेनाह–

अङ्गारकेण संदृष्टं लग्नगेहं भवेद्यदि ।
दृष्टं च गुरुणा कामं परस्त्रीषु पराङ्मुखः ।।४८।।

अङ्गारकेणेति । यदि अङ्गारकेण महीसुतेन मङ्गलेन वा संदृष्टं लग्नगेहं भवेत् च गुरुणा दृष्टं कामं सप्तमस्थानं भवेत् तदा नरः परस्त्रीषु पराङ्मुखः भवति । अनुष्टुब्वृत्तमिदम् ।।४८।।

मङ्गल की दृष्टि लग्न पर हो और गुरु की दृष्टि यदि सप्तमभाव पर हो तो, मनुष्य परस्त्री से पराङ्मुख होता है ।।४८।।

भृगुज्ञरविचन्द्रैर्वा युक्तं दृष्टं धनं यदा ।
नरः कामाधिकश्चापि परस्त्रीषु पराङ्मुखः ।।४९।।

भृगुज्ञेति । भृगुज्ञरविचन्द्रैः शुक्रबुधरविचन्द्रैः युक्तं दृष्टं वा द्युनं सप्तमस्थानं भवति सदा कामाधिकोऽपि नरः मनुजः परस्त्रीषु पराङ्मुखः भवति । अनुष्टुब्वृत्तमिदम् ।।४९।।

शुक्र, बुध, रवि और चन्द्र से दृष्ट या इनसे युक्त यदि सप्तम स्थान हो तो मनुष्य अत्यधिक क़ामी होने पर भी परस्त्री से पराङ्मुख (दूर) रहता है ।।४९।।

अथ परस्त्रीभोगाख्यं योगमनुष्टुब्वृत्तेनाह–

रात्रिनाथेन सन्दृष्टो लग्नपः स्मरगो यदा ।
लग्नगे द्युननाथे च परस्त्रीषु रतो नरः ।।५०।।

रात्रिनाथेनेति । यदा रात्रिनाथेन शशिना चन्द्रेण वा सन्दृष्टः लग्नपः लग्नस्वामी स्मरगः सप्तमस्थानगतः भवति च द्युननाथे सप्तमस्थानस्वामिनि लग्नगे सति नरः मनुजः परस्त्रीषु रतः भवति । अनुष्टुब्वृत्तमिदम् ।।५०।।

चन्द्र से अवलोकित लग्न का स्वामी सप्तम स्थान में हो तथा सप्तमस्थान का अधिपति लग्न में हो तो मनुष्य परस्त्री के उपभोग में रत रहता है ।

अथ बहुविधललनोपभोगयोगं मालिन्याऽऽह–

सबलमदप उच्चस्वांशगो वा यदा स्यात् मदनगृहमदृष्टं खेचरेन्द्रैश्च पापैः ।
भवति सुरतलीलासु प्रवीणश्च जातः बहुविधरमणीनां भोगकर्ता तथैव ।।५१।।

सबलमदप इति । सबलमदपः बलयुक्तसप्तमस्थानस्वामी उच्चस्वांशगः

उच्चं गतः वा स्वांशं गतः यदा भवति च पापैः खेचरेन्द्रैः ग्रहैः अदृष्टं विलोकितं मदनगृहं सप्तमगृहं भवति तदा सुरतलीलासु कामभोगविलासे प्रवीणः निपुणः जातः मनुजः भवति। तथैव बहुविधरमणीनां नानाविधसुन्दरस्त्रीण भोगकर्ता भवति। वृत्तमेतन्नमालिनी ।।५१।।

बलवान् सप्तमस्थान का स्वामी उच्चस्थान में या अपने अंशों में हो और पापग्र की दृष्टि सप्तमस्थान पर यदि न हो तो मनुष्य नाना प्रकार के कामोपभोगों के सम्ब में रतिक्रीडाओं में प्रवीण होता है और वह विविध प्रकार की सुन्दर स्त्रीजनों का उपभो करता है ।।५१।।

अथ विधवोपभोगयोगं वसन्ततिलकेनाह–

नीचांशराशिगविधौ कुजशुक्रयुक्ते भौमांशराहुविधुयुक्तशनिर्यदा वा।
नीचांशराशियुतसौरिकुजेन्दवो वा शूद्रां स्त्रियं च विधवां मनुजो भुनक्ति ।।५२।।

नीचांशेति। कुजशुक्रयुक्ते मङ्गलभार्गवयुक्ते नीचांशराशिगविधौ अंश राशिश्च अंशराशी नीचौ च तौ अंशराशी च नीचांशराशी तौ गते विधौ चन्द्रे स वा अथवा भौमांशराहुविधुयुक्तशनिः यदा भवेत् वा किंवा नीचांशराशियु सौरिकुजेन्दवः नीचौ च तौ अंशराशी च ताभ्यां युताः सौरिकुजेन्द शनिमङ्गलचन्द्राः यदा भवन्ति तदा मनुजः एतेषु योगत्रयेषु शूद्रां च विधवां स्त्रि भुनक्ति। वसन्ततिलकावृत्तमेतत् ।।५२।।

मङ्गल और शुक्र से युक्त चन्द्र यदि नीचराशि अथवा नीच अंश में हो, या श यदि मङ्गल के अंश राहु और चन्द्र से युक्त हो, अथवा शनि, मङ्गल और चन्द्र ये ती ग्रह यदि नीचांश में या नीच राशि में हों तो, उक्त तीनों योगों में जातक नीचजाति अथवा विधवा स्त्री का उपभोग करता है ।।५२।।

अथ चाण्डालीसक्तयोगमनुष्टुब्वृत्तेनाह–

मन्दांशं च गते राहौ भृगुः शनिगृहे यदा।
नीचराश्यंशगे चन्द्रे चाण्डालीसक्तमानवः ।।५३।।

मन्दांशमिति। मन्दांशं शनेः अंशं गते राहौ सिंहिकासुते सति च शनिगृहे भृगुः शुक्रः भवेत् नीचराश्यंशगे नीचराशिनीचांशगते चन्द्रे चन्द्रम सति च तदा चाण्डालीसक्तः मानवः भवति। अनुष्टुब्वृत्तमिदम् ।।५३।।

राहु शनि के अंश में रहने पर यदि शनि की राशियों में अर्थात् मकर और कुंभ राशि में शुक्र हो और नीचराशि का अथवा नीचांश का चन्द्र भी हो तो मनुष्य नीच जाति की स्त्री का उपभोग करता है ॥५३॥

अथ दुष्कर्मयोगमिन्द्रवज्रयाऽऽह–

नीचांशयुक्तो यदि देवमन्त्री पापांशयुक्तो नवपो नभोगः ।
दुष्कर्मकर्ता मनुजः पृथिव्यां नानाविधाः पापकृतीः करोति ॥५४॥

नीचांशेति । यदि नीचांशयुक्तः मकरांशगतः देवमन्त्री गुरुः च नभोगः दशमस्थानगतः नवपः नवमस्वामी पापांशयुक्तः पापग्रहांशयुक्तः भवेत् तदा मनुजः नरः पृथिव्यां नानाविधाः पापकृतीः करोति । वृत्तमिदमिन्द्रवज्रा ॥५४॥

मकर के अंशों से युक्त गुरु के होने पर पापग्रह के अंशों से युक्त नवमस्थान का स्वामी दशमस्थान में आने पर मनुष्य संसार में दुष्कर्मों को करके अनेक पाप करता है ॥५४॥

अथ मद्यपीयोगं शार्दूलविक्रीडितेनाह–

नीचांशेन युतो यदा सुरगुरुर्मेषूरणागारगो
मेदिन्यात्मजसिंहिकासुतयुतो दुष्कर्मकर्ता नरः ।
नीचः कर्मपतिः कुजेन च युतो रिःफेऽष्टमे वा रिपौ
दृष्टौ वा सहितोऽगुना च शनिना जातस्तदा मद्यपी ॥५५॥

नीचांशेनेति । यदा मेदिन्यात्मजसिंहिकासुतयुतः मङ्गलराहुयुतः नीचांशेन मकरांशेन युतः मेषूरणागारगः दशमस्थानगतः सुरगुरुः सुरा देवास्तेषां गुरुः भवति तदा नरः दुष्कर्मकर्ता भवति । यदा च कुजेन मङ्गलेन युतः अगुना राहुणा शनिना सूर्यपुत्रेण च युक्तः वा दृष्टः रिःफे द्वादशस्थाने अष्टमे मरणाख्ये स्थाने रिपौ षष्ठस्थाने वा नीचः कर्मपतिः दशमस्थानस्वामी भवेत् तदा जातः मनुजः मद्यपी सुरापानसक्तः भवति । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तमेतत् ॥५५॥

मङ्गल और राहु से युक्त मकरांश का गुरु यदि दशमस्थान में हो तो मनुष्य दुष्कर्म करता है, मङ्गल से युक्त शनि और राहु से दृष्ट या दो ग्रहों से युक्त नीच का दशमस्थान का स्वामी द्वादश, अष्टम, या षष्ठ स्थान में हो तो मनुष्य मद्यपेयी होता है ॥५५॥

अथ गुरोःदाराभिलाषीयोगं स्वमातुःद्रोहयोगञ्च शार्दूलविक्रीडितेनाह–

ज्ञानेशोऽगुयुतो यदा सहजगे नीचे च ताताधिपे
चन्द्रे मङ्गलमन्दभागसहिते दाराभिलाषी गुरोः ।
मात्रीशेन्दुयुतेऽष्टमेशदृगिते राहौ च नीचं गते
जातः पापयुतः सदैव कुरुते द्रोहं स्वमातुस्तदा ।।५६।।

ज्ञानेश इति । यदा ज्ञानेशः पञ्चमाधीशः अगुयुतः अगुः न विद्यन्ते गाव रश्मयो यस्य सः, तेन युतः, राहुयुतः भवेत् नीचे ताताधिपे दशमाधीशे सहज तृतीयगृहगते च सति मङ्गलमन्दभागसहिते मङ्गलशन्यंशयुक्ते चन्द्रे सति जात मनुजः गुरोः दाराभिलाषी गुरुपत्नीभोगेच्छुः भवति मात्रीशेन्दुयुते मात्रीशः चतुर्थस्वा इन्दुः चन्द्रः द्वाभ्यां युते अष्टमेशदृगिते अष्टमाधीशदृष्टे नीचं गते राहौ अगौ स तदा पापयुतः जातः सदैव स्वमातुः द्रोहं द्वेषं कुरुते । शार्दूलविक्रीडि वृत्तमेतत् ।।५६।।

पञ्चमस्थान का स्वामी राहु से युक्त हो और नीच का दशमस्थान का स्वामी तृती स्थान में आने पर तथा मङ्गल अथवा शनि इनके अंशों से युक्त चन्द्र यदि हो तो मनु अपने गुरु की स्त्री का उपभोग करने की इच्छा करता है। चतुर्थस्थान का स्वामी, च से युक्त तथा अष्टमस्थान के स्वामी से दृष्ट राहु यदि नीचस्थान में हो तो मनुष्य पापयु होकर अपनी माँ का सदा द्वेष करता है ।।५६।।

अथ पापकर्मयोगं ब्रह्महत्यायोगञ्च इन्द्रवज्रयाऽऽह–

नीचे गुरौ राहुसमन्विते च पुण्यालये मङ्गलसौरिदृष्टे ।
जातो भवेदत्र च विप्रहन्ता पापानि कुर्वंश्च भयङ्कराणि ।।५७।।

नीच इति। पुण्यालये नवमस्थाने मङ्गलसौरिदृष्टे मङ्गलशनिभ्यां द राहुसमन्विते स्वर्भानुयुक्ते नीचे गुरौ सति अत्र अस्मिन्योगे भयङ्कराणि पापा कुर्वन् जातः मनुजः विप्रहन्ता ब्रह्मघ्नश्च भवति । वृत्तमिदमिन्द्रवज्रा ।।५७।

नवमस्थान में शनि और मङ्गल ग्रहों से दृष्ट तथा राहु से युक्त नीचगुरु के आ पर मनुष्य भयंकर पापकर्म करता है और ब्रह्महत्या भी करता है ।।५७।।

अथ सुवर्णस्तेयीयोगमनुष्टुब्वृत्तेनाह–

सिंहे केतुश्च भौमेन दृष्टः पापांशविद्युतः ।
अपकीर्तियुतो जातः स्वर्णस्तेयी तदा भवेत् ।।५८।।

सिंह इति । यदा भौमेन मङ्गलेन दृष्टः पापांशविद्युतः पापग्रहांशबुधयुक्तः केतुः सिंहे सिंहाख्यराशौ भवति तदा जातः मनुजः अपकीर्तियुतः स्वर्णस्तेयी च भवेत् ।अनुष्टुब्वृत्तमिदम् ।।५८।।

मङ्गल से दृष्ट, पापग्रह के अंशों तथा बुध से युक्त केतु यदि सिंहराशि में हो तो मनुष्य स्वर्ण की चोरी कर दुष्कीर्ति को प्राप्त करता है ।।५८।।

अथ केमद्रुमाख्यं योगं शार्दूलविक्रीडितेनाह–

लाभेशो यदि भाग्यगः खलयुतः शुक्रे च नीचं गते
मार्तण्डश्च विधुन्तुदश्च धनगौ केमद्रुमो दुःखदः ।
चेन्मूढौ धनलाभपौ नवमगे भौमे धनेऽगौ च वा
धर्मेशो दिननीचगश्च यदि वा क्षीणेन्दुपापैर्युतः ।।५९।।

लाभेश इति । यदि भाग्यगः नवमस्थानगतः खलयुतः पापयुत; लाभेशः एकादशस्वामी भवेत् च शुक्रे नीचं गते सति मार्तण्डः सूर्यः विधुन्तुदः राहुश्च एतौ द्वौ धनगौ द्वितीयस्थानगतौ भवेतां च वा अपरः योगः धनलाभपौ द्वितीयैकादशस्वामिनौ मूढौ अस्तं प्राप्तौ चेन्नवमगे भौमे अङ्गारके सति च अगौ राहौ द्वितीयस्थाने सति किंवा अपरः योगः क्षीणेन्दुपापैः युतः दिननीचगः अस्तं प्राप्तः नीचराशिं गतश्च धर्मेशः नवमाधीशः यदि भवति तदा दुःखदः केमद्रुमः योगः भवति । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तमेतत् ।।५९।।

एकादशस्थान का स्वामी पापग्रहों से युक्त नवमस्थान में होने पर शुक्र नीचराशि का तथा सूर्य और राहु द्वितीयस्थान में यदि हो तो दुःखदायक **केमद्रुम** योग होता है । अथवा द्वितीय और एकादशस्थान के स्वामी अस्तंगत होने पर नवमस्थान में मङ्गल और द्वितीयस्थान में राहु के आने पर अथवा क्षीण चन्द्र, पापग्रहों से युक्त, अस्तंगत तथा नीचराशि में गया हुआ नवमस्थान का स्वामी हो तो दुःखदायक **केमद्रुम** योग होता है ।।५९।।

अथ प्रकारान्तरेण केमद्रुमाख्यं योगमिन्द्रवज्रयाह–

अस्तं गतौ शुक्रबृहस्पती च मन्देन युक्तो धनगेहनाथः ।
कुर्वन्ति धर्मे रविराहुभौमाः केमद्रुमं दुःखयुतं च सर्वे ।।६०।।

अस्तमिति । शुक्रबृहस्पती अस्तं गतौ च मन्देन शनैश्चरेण युक्तः धनगेहनाथः द्वितीयस्थानस्वामी च रविराहुभौमाः धर्मे नवमस्थाने एते सर्वे ग्रहाः दुःखयुतं केमद्रुमं योगं कुर्वन्ति । वृत्तमिदमिन्द्रवज्रा ।।६०।।

शुक्र तथा गुरु के अस्तंगत होने पर शनि से युक्त द्वितीयस्थान का स्वामी तथा नवमस्थान में सूर्य, राहु और मङ्गल के आने पर ये सभी ग्रह दुःख दायक **केमद्रुम** नामक योग का निर्माण करते हैं ॥६०॥

अथ नेत्रकर्णरोगकारकयोगं पृथ्वीवृत्तेनाह–

धनव्ययगतो यदा भृगुसुतोऽथ वा मङ्गलः करोति बहुदुःखदं श्रुतिरुजं मनुष्यस्य सः ।
सितेन सहितो भवेच्छशधरस्तु पापेन च यदार्थगृहमागतो भवति नेत्रहीनो नरः ॥६१॥

धनव्ययगत इति । यदा धनव्ययगतः द्वितीयद्वादशस्थानगतः भृगुसुतः शुक्रः अथवा मङ्गल कुजः, भवेत् तदा सः खेटः ग्रहः मनुष्यस्य बहुदुःखदं श्रुतिरुजं कर्णरोगं करोति । सितेन शुक्रेण पापेन पापग्रहेण च सहितः शशधरः चन्द्रः अर्थगृहं द्वितीयगृहं यदा आगतः तदा नरः नेत्रहीनः भवति । पृथ्वीवृत्तमेतत् ॥६१॥

शुक्र अथवा मङ्गल द्वितीय या द्वादशस्थान में होने पर जातक को कर्णरोग से अत्यन्त पीड़ा होती है। शुक्र तथा पापग्रह से युक्त चन्द्र द्वितीय स्थान में होने पर जातक की नेत्रदृष्टि नष्ट होती है ॥६१॥

अथ स्त्रीविनाशयोगं भुजङ्गप्रयातेनाह–

यदा सिंहिकायाः सुतः सप्तमस्थो भवेत् पापयुग्मेक्षितो जन्मकाले ।
कलत्रस्य लाभो मनुष्यस्य न स्यात् तदा स्त्रीविनाशः कदाचिद्विवाहः ॥६२॥

यदेति । यदा सिंहिकायाः सुतः राहुः पापयुग्मेक्षितः पापग्रहद्वयेन दृष्टः सप्तमस्थः मदगः भवेत् तदा मनुष्यस्य कलत्रस्य भार्यायाः लाभः न स्यात् यदि कदाचित् विवाहः स्यात् तदा स्त्रीविनाशः स्यात् । भुजङ्गप्रयातं वृत्तमिदम् ॥६२॥

दो पापग्रहों से युक्त राहु सप्तमस्थान में आने पर मनुष्य को स्त्रीलाभ नहीं होता यदि कदाचित् हो जाने पर (विवाह होने पर) उसकी स्त्री का नाश होता है ॥६२॥

अथ निर्धनतायोगमुपजातिवृत्तेनाह–

वीर्येण हीनाः शुभखेचरेन्द्राः शत्रुं तृतीयं च भवं प्रयाताः ।
चतुष्टयं पापखगाश्च याता जातस्तदा निर्धनतामुपैति ॥६३॥

वीर्येणेति । यदा वीर्येण हीनाः बलहीनाः शुभखेचरेन्द्राः शुभग्रहाः श षष्ठस्थानं तृतीयं दुश्चिक्यं भवमेकादशं उपान्त्यं च प्रयाताः प्राप्ताः पापखग

पापग्रहाः चतुष्टयं केन्द्रस्थानानि याताः गताः तदा जातः मनुजः निर्धनतामुपैति गच्छति। वृत्तमेतदुपजातिः ।।६३।।

बलहीन शुभग्रह षष्ठ, तृतीय और एकादशस्थान में होने पर पापग्रह केन्द्र में यदि हो तो मनुष्य दरिद्र अर्थात् निर्धन होता है ।।६३।।

अथ प्रकारान्तरेण दारिद्र्ययोगं सफलं शालिन्याऽऽह–

देहाधीशः कर्मगेहाधिपश्च मन्दः सूर्यो मातृगेहाधिनाथः ।
रिःफं मृत्युं कुर्वतेऽरिं च याताः जातं नित्यं निर्धनं दुःखयुक्तम् ।।६४।।

देहाधीश इति। देहाधीशः लग्नपतिः कल्पपतिर्वा कर्मगेहाधिनाथः दशमस्थानस्वामी मन्दः शनिः, सूर्यः मातृगेहाधिनाथः चतुर्थस्थानस्वामी च एते सर्वे ग्रहाः रिःफं द्वादशं मृत्युमष्टममरिं षष्ठस्थानं च याताः सन्तः जातं निर्धनं दुःखयुक्तं नित्यं कुर्वन्ति। शालिनीवृत्तमेतत्। तल्लक्षणम्-मात् तौ गौ चेच्छालिनी वेदलोकैः ।।६४।।

लग्न का स्वामी, दशमस्थान का स्वामी, शनि, सूर्य और चतुर्थस्थान का स्वामी ये सभी द्वादश, अष्टम और षष्ठस्थान में रहते हैं तो वे मनुष्य को सदा दुःखी और दरिद्री बनाते हैं ।।६४।।

अथ प्रकारान्तरेण दारिद्र्ययोगद्वयं स्रग्धरावृत्तेनाह–

कोशाधीशस्त्रिके चेत् सुरगुरुसहितो द्रव्यहीनो मनुष्यः
शत्रौ लग्नास्तपौ चेत्तनयसदनगा वीर्यवन्तश्च पापाः ।
कुर्वाते जीवशुक्रौ यदि दिनगमनं जन्मकाले तथा च
अस्मिन्योगे मनुष्योऽखिलसुखरहितो निर्धनो दुःखयुक्तः ।।६५।।

कोशाधीश इति। कोशाधीशः द्वितीयस्थानपतिः सुरुगुरुसहितः सुरा देवास्तेषां गुरुः, तेन सहितः। त्रिके षष्ठाष्टमद्वादशस्थानगतः चेत् तदा मनुष्यः द्रव्यहीनः भवति। लग्नास्तपौ लग्नसप्तमस्वामिनौ शत्रौ षष्ठे स्यातां वीर्यवन्तः बलवन्तः पापाः पापग्रहाः तनयसदनगाः पञ्चमस्थानगताः सन्ति चेत् तथा च यदि जन्मकाले जीवशुक्रौ इज्यसितौ दिनगमनं कुर्वाते यदि अस्तं सूर्यमण्डलेऽस्तं गतस्येत्यर्थः, प्राप्तौ तदा अस्मिन्योगे अखिलसुखरहितः निर्धनः दुःखयुक्तः मनुष्यः भवति। स्रग्धरावृत्तमेतत् ।।६५।।

द्वितीयस्थान का स्वामी यदि गुरु के साथ षष्ठ, अष्टम या द्वादशस्थान में हो तो मनुष्य निर्धन होता है अथवा लग्न और सप्तमस्थान के स्वामी षष्ठस्थान में होने पर, बलवान् पापग्रह पञ्चमस्थान में यदि हों, अथवा जन्मकाल में गुरु और शुक्र ग्रहों का अस्त हुआ हो, तो इन योगों में मनुष्य समस्त सुखों से रहित होकर निर्धन तथा दुःखी होता है ॥६५॥

अथ निर्धनयोगं द्रुतविलबिम्बतेनाह–

तनुपतिर्यदि पापविलोकितो बलयुतोऽस्तलयालयगो भवेत् ।
रिपुनिकेतनपो यदि वीर्यवान् व्रजति निर्धनतां मनुजस्तदा ।।६६।।

तनुपतिरिति । बलयुतः अस्तलयालयम् अस्तं च लयं च अस्तलये सप्तमाष्टमे तयोः आलयं गृहं गतः तनुपतिः लग्नस्वामी यदि भवेत् । यदि रिपुनिकेतनपः षष्ठगृहस्वामी वीर्यवान् बलवान् भवेत् तदा मनुजः पुरुषः निर्धनतां व्रजति गच्छति । द्रुतविलम्बितं वृत्तमिदम् ।।६६।।

पाप ग्रह से दृष्ट तथा बलवान् लग्न का स्वामी यदि षष्ठ या अष्टमस्थान में स्थित हो और षष्ठस्थान का स्वामी यदि बलवान् हो तो मनुष्य निर्धन होता है ॥६६॥

अथ दारिद्र्ययोगं शालिन्याह–

देहाधीशो मृत्युगेहे यदा स्यात् मूढो व्यापारस्य नाथोऽरियातः ।
द्रव्येशश्चेद् द्वादशस्थानवर्ती आपत्कालं मानवः क्षिप्रमेति ।।६७।।

देहाधीश इति । यदा देहाधीशः लग्नस्वामी मृत्युगेहे अष्टमगृहे स्यात् मूढः अस्तंगतः व्यापारस्य नाथः दशमस्थानस्वामी अरियातः षष्ठगृहगतः द्वादशस्थानवर्ती द्रव्येशः द्वितीयस्थानपतिः चेत् तदा मानवः मनुज आपत्कालं क्षिप्रं सत्वरमेति गच्छति । शालिनीवृत्तमेतत् ।।६७।।

लग्न का स्वामी अष्टमस्थान में स्थित होने पर, अस्तंगत दशमस्थान का अधिपति षष्ठस्थान में तथा दूसरे स्थान का स्वामी द्वादशस्थान में होने पर मनुष्य को निर्धनावस्था शीघ्र प्राप्त होती है ॥६७॥

अथ विपत्तिकालयोगमिन्द्रिवज्रयाऽऽह–

षष्ठङ्गता लाभगताश्च सौम्या अस्तङ्गतः स्याच्च कुटुम्बनाथः ।
मूढौ यदा भार्गववाक्पती च व्ययेऽगनाथश्च विपत्तिकालः ।।६८।।

षष्ठङ्गता इति । षष्ठङ्गताः रिपुसदनगताः लाभगताः एकादशस्थानगताश्च सौम्याः शुभग्रहाः कुटुम्बनाथः द्वितीयस्थानपतिः अस्तङ्गतः स्यात् च यदा भार्गववाक्पती शुक्रगुरू मूढौ अस्तं प्राप्तौ स्यातां च अङ्गनाथः लग्नस्वामी व्यये द्वादशे भवति तदा विपत्तिकालः स्यात् । वृत्तमिदमिन्द्रवज्रा ।।६८।।

षष्ठ और एकादशस्थान में शुभग्रह होने पर तथा द्वितीयस्थान का स्वामी, शुक्र गुरु अस्तङ्गत होने पर और लग्न का अधिपति यदि द्वादशस्थान में हो तो मनुष्य को दरिद्रता प्राप्त होती है ।।६८।।

अथ सुखवित्तयोगमिन्द्रवज्रयाऽऽह–

सूर्याद्द्वितीयं शुभखेटयुक्तं लग्नालयं स्याच्च निजांशयुक्तम् ।
केन्द्रं भवेत् सद्विहगान्वितं च जातस्तदा स्याद्धनवान् सुखी च ।।६९।।

सूर्यादिति । यदा शुभखेटयुक्तं सूर्याद् द्वितीयं गृहं भवेच्च निजांशयुक्तं स्वनवांशयुक्तं लग्नालयं स्यात् सद्विहगान्वितं शुभग्रहयुक्तं केन्द्रं च भवेत् तदा जातः मनुजः सुखवित्तयुक्तः भवति । वृत्तमिदमिन्द्रवज्रा ।।६९।।

सूर्य से दूसरे स्थान में शुभग्रह और लग्न अपने नवांश में होने पर तथा केन्द्र में शुभग्रह के होने पर मनुष्य सुखी और श्रीमन्त होता है ।।६९।।

अथ सुखकारकयोगमुपजातिवृत्तेनाह–

लग्नाधिनाथो धनभावसंस्थो धनालयेशो द्विजराजयुक्तः ।
द्वितीयगेहं भृगुणा च दृष्टं तदा नरः स्याद्धनवान् सुखी च ।।७०।।

लग्नाधिनाथ इति । धनभावसंस्थः द्वितीयस्थानगतः लग्नाधिनाथः भवेच्च धनालयेशः द्वितीयस्थानस्वामी द्विजराजयुक्तः चन्द्रयुक्तः स्याच्च भृगुणा दृष्टं शुक्रेण दृष्टं द्वितीयगेहं भवेत्तदा नरः मनुजः धनवान् सुखी च स्यात् । वृत्तमिदमुपजातिः ।।७०।।

लग्न का स्वामी द्वितीयस्थान में स्थित होने पर और द्वितीयस्थान पर शुक्र की दृष्टि होने पर मनुष्य सुखी तथा श्रीमंत होता है ।।७०।।

अथ श्रीयोगाख्यं योगं शिखरिणीवृत्तेनाह–

यदा तुङ्गं प्राप्तो भवसदनपश्चार्थनिलयं
युतं वा दृष्टं वा भवति गुरुणा शुक्रसहितम् ।

यदा वा लाभेशो भृगुजसहितोऽङ्गं गुरुयुतं
तदा श्रीयोगः स्वं स्वगृहपतिदृष्टं च भवति ।।७१।।

यदेति । भवसदनपः एकादशगृहपतिः तुङ्गं प्राप्तः उच्चगतः च गुरुणा दृष्टं वा युतं वा शुक्रसहितमर्थनिलयं द्वितीयगृहं यदा भवति वा यदा भृगुजसहितः शुक्रयुक्तः लाभेशः एकादशस्वामी भवेत् गुरुयुतमङ्गं लग्नं च स्वगृहपतिदृष्टं स्वं द्वितीयगृहं च स्यात् तदा श्रीयोगः भवति । शिखरिणीवृत्तमेतत् । तल्लक्षणम्- रसैः रुद्रैश्छिन्ना यमनसभलागः शिखरिणी ।।७१।।

एकादशस्थान का स्वामी उच्च का होने पर या गुरु के द्वारा दृष्ट अथवा युक्त और शुक्र से भी युक्त दूसरा स्थान होने पर **द्रव्ययोग** होता है अथवा एकादशस्थान का स्वामी शुक्र से युक्त होने पर तथा लग्न गुरु से युक्त होने पर या द्वितीयस्थान पर द्वितीयथान के ही स्वामी की दृष्टि यदि हो तो **द्रव्ययोग** होता है ।।७१।।

अथ राजयोगं वसन्ततिलकेनाह–

तुङ्गे रवौ कुजयुते भवगेऽङ्गगे वा सौरौ द्युने धनगते च निशाधिनाथे ।
अम्बागृहे सुरगुरौ भृगुनन्दने वा राहौ तृतीयभवने च नरो नृपः स्यात् ।।७२।।

तुङ्ग इति । कुजयुते मङ्गलयुक्ते भवगे एकादशगृहगते अङ्गे लग्नगते वा तुङ्गे उच्चे रवौ सूर्ये सति द्युने सप्तमस्थाने सौरौ शनौ च निशाधिनाथे चन्द्रमसि धनगते द्वितीयस्थानगते च अम्बागृहे चतुर्थगृहे सुरगुरौ बृहस्पतौ वा भृगुनन्दने शुक्रे च तृतीयभवने राहौ सिंहिकासुते सति नरः नृपः स्यात् । वृत्तमेतत् वसन्ततिलका ।।७२।।

मङ्गल से युक्त एकादश अथवा प्रथमस्थान में उच्च का सूर्य होने पर, सप्तमस्थान में शनि और द्वितीयस्थान में चन्द्र तथा चतुर्थ स्थान में गुरु अथवा शुक्र और तृतीय स्थान में राहु के होने पर मनुष्य राजा होता है ।।७२।।

अथ राजयोगं प्रकारान्तरेण वसन्ततिलकेनाह–

उच्चे तनौ सुरगुरौ दशमेऽजगेने लाभं गतेषु भृगुचन्द्रजचन्द्रमःसु ।
वेन्दौ वृषोदयगते रिपुगे शनौ ना जीवेऽर्थगे भवगतेषु परेषु भूपः ।।७३।।

उच्च इति । उच्चे सुरगुरौ विबुधगुरौ तनौ लग्ने सति अजगेने अजं मेषराशिं गतः अजगः स चासौ इनश्च सूर्यश्च अजगेनः तस्मिन् अजगेने मेषराशिगतसूर्ये दशमे सति भृगुचन्द्रजचन्द्रमःसु शुक्रबुधचन्द्रेषु लाभमेकादशं गतेषु सत्सु वा

अथवा अपरः योगः वृषोदयगते वृषाख्यं च तत् उदयं लग्नं च वृषोदयगते लग्ने वृषभराशिं गते इन्दौ चन्द्रे सति रिपुगे षष्ठस्थानगते शनौ च जीवे गुरौ अर्थगे द्वितीयगृहगते परेषु इतरग्रहेषु भवगतेषु एकादशगृहगतेषु सत्सु ना नरः भूपः भवति। वृत्तमेतद्वसन्ततिलकम्॥७३॥

लग्न में उच्च का अर्थात् कर्कराशि का गुरु और मेषराशि का सूर्य दशमस्थान में, तथा शुक्र, बुध और चन्द्र एकादशस्थान में होने पर मनुष्य राजा होता है अथवा लग्न में वृषभ का चन्द्र, षष्ठस्थान में शनि और द्वितीयस्थान में गुरु तथा अन्य ग्रह एकादशस्थान में होने पर मनुष्य राजा होता है॥७३॥

अथ राजयोगं प्रकारान्तरेण वसन्ततिलकेनाह-

कन्योदये विधुसुते दशमे सिते च जामित्रमन्दिरगतौ यदि चन्द्रजीवौ।
भौमेनपुत्रसहिते तनयालये च प्राप्नोति राजपदवीं मनुजो जगत्याम्॥७४॥

कन्योदय इति। कन्योदये कन्यालग्ने विधुसुते शीतरश्मिजे बुधे वा, च दशमे सिते शुक्रे च जामित्रमन्दिरगतौ सप्तमस्थानगतौ चन्द्रजीवौ चन्द्रबृहस्पती यदि स्यातां भौमेनपुत्रसहिते भौमः मङ्गलश्च इनपुत्रः अर्कपुत्रो वा, शनिश्च ताभ्यां सहिते तनयालये पञ्चमस्थाने सति च मनुजः नरः जगत्यां पृथिव्यां राजपदवीं प्राप्नोति। वृत्तमेतद्वसन्ततिलकम्॥७४॥

लग्न में कन्याराशि का बुध, दशमस्थान में शुक्र और सप्तमस्थान में चन्द्र तथा गुरु और पञ्चमस्थान में मङ्गल एवं शनि ग्रहों के होने पर मनुष्य को राजपद प्राप्त होता है॥७४॥

अथ राजयोगं प्रकारान्तरेण वसन्ततिलकवृत्तेनाह-

नक्रोदये रविसुते सहजे च चन्द्रे भौमे रिपौ व्ययगते च गुरौ शुभे ज्ञे।
किं वाजलग्नग इने हयगे गुरौ च कामे घटेतशनिचन्द्रयुते नृपो ना॥७५॥

नक्रोदय इति। नक्रोदये मकरलग्ने रविसुते शनौ चन्द्रे सहजे तृतीये दुश्चिक्यगृहे सति च भौमे मङ्गले रिपौ षष्ठस्थाने च गुरौ व्ययगते द्वादशगते च ज्ञे बुधे शुभे नवमस्थाने सति ना नरः नृपः भवति किंवा अपरः योगः अजलग्ने मेषलग्नगते इने सूर्ये च गुरौ हयगे धनुर्धरराशिगते सति घटेतशनिचन्द्रयुते घटं तुलारराशिं इतौ गतौ घटेतौ च तौ शनिचन्द्रौ च घटेतशनिचन्द्रौ ताभ्यां युते कामे सप्तमस्थाने सति ना नरः नृपः भवति। वृत्तमेतद्वसन्ततिलकम्॥७५॥

लग्न में मकरराशि का शनि, तृतीयस्थान में चन्द्र और षष्ठस्थान में मङ्गल, द्वादशस्थान में गुरु और नवमस्थान में बुध होने पर मनुष्य राजा होता है अथवा लग्न में मेषराशि का सूर्य, धनराशि में गुरु के होने पर तथा तुलाराशि का शनि व चन्द्र से युक्त सप्तमस्थान होने पर मनुष्य राजा होता है ॥७५॥

अथ राजयोगं वसन्ततिलकेनाह–

स्वोच्चाश्रितेषु बुधगीष्पतिचन्द्रमस्सु मत्स्यालये शिखिनि भूमिपतेः पदाप्तिः ।
चापे गुरौ च घटराशिगते शनौ वा जूके कवौ च यदि सिंहगसैंहिकेयः ॥७६॥

स्वोच्चेति । बुधगीष्पतिचन्द्रमस्सु बुधगुरुचन्द्रेषु स्वोच्चाश्रितेषु स्वेषां उच्चस्थानेषु सत्सु च मत्स्यालये मीनराशिंगते शिखिनि केतौ सति भूमिपतेः पदाप्तिः स्यात् किंवा अपरः योगः चापे धनुर्धरराशिगते गुरौ च घटराशिगते कुम्भराशिगते शनौ सति च कवौ शुक्रे जूके तुलाराशिगते च यदि सिंहगसैंहिकेयः सिंहराशिगतः स्वर्भानुः भवति तदा भूमिपतेः पदाप्तिः भवति । वृत्तमेतद्वसन्ततिलकम् ॥७६॥

बुध, चन्द्र और गुरु अपने-अपने उच्चस्थानों में होने पर यदि केतु मीनराशि में हो तो मनुष्य को राजपद प्राप्त होता है अथवा धनुराशि में गुरु, कुम्भ में शनि, तुला में शुक्र और सिंहराशि में राहु हो तो मनुष्य को राजपद प्राप्त होता है ॥७६॥

अथ राजयोगमनुष्टुब्वृत्तेनाह–

कोदण्डे सूर्यपुत्रे च नक्रगे भूमिनन्दने ।
कन्यामिथुनकुम्भेते राहौ जातो भवेन्नृपः ॥७७॥

कोदण्ड इति । सूर्यपुत्रे शनौ कोदण्डे धनुर्धरराशिगते च भूमिनन्दनेऽङ्गारके नक्रगे मकरराशिगते च कन्यामिथुनकुम्भाख्यान् राशीन् इते गते राहौ सति जातः मनुजः नृपः भवेत् । अनुष्टुब्वृत्तमिदम ॥७७॥

धनुराशि में शनि, मकरराशि में मङ्गल और कन्या, मिथुन अथवा कुम्भराशि में राहु ग्रह आने पर जातक को राजपद की प्राप्ति होती है ॥७७॥

अथ राजयोगमनुष्टुब्वृत्तेनाह–

कुजसूर्यौ स्वराशिस्थौ केतुश्चापे च कुर्वते ।
महीपतिपदप्राप्तिं सर्वसौख्यप्रदायिनीम् ॥७८॥

कुजेति । स्वराशिस्थौ कुजसूर्यौ मङ्गलसूर्यौ च चापे धनुर्धरराशौ केतुः

सर्वसौख्यप्रदायिनीं महीपतिपदप्राप्तिं कुर्वते । अनुष्टुब्वृत्तमिदम् ।।७८।।

मेष और वृश्चिकराशि में मङ्गल, सिंहराशि में सूर्य तथा धनुराशि में केतु के होने पर सर्वविध सुख और राजपद की प्राप्ति होती है ।।७८।।

अथ राजयोगं स्रग्धरावृत्तेनाह–

चन्द्रेज्यौ तुङ्गयातौ सुतगृहगभृगुर्विक्रमे मङ्गलश्च
मन्देदूच्चौ च लग्नं निजपतिदृगितं पञ्चमस्थः कविर्वा ।
किंवा धर्मे च शुक्रो दशमगतकुजः स्वोच्चगौ विच्छनी च
ताते जीवेरिगोऽगुर्धनवृषगकविर्वा तदा राजयोगः ।।७९।।

चन्द्रेज्याविति । तुङ्गयातौ उच्चराशिगतौ चन्द्रेज्यौ चन्द्रगरू च सुतगृहगभृगुः पञ्चमस्थानगतशुक्रः विक्रमे तृतीयस्थाने मङ्गलः यदा भवति तदा राजयोगः भवति । वा मन्देन्दू शनिचन्द्रौ उच्चौ उच्चराशिगतौ च लग्नं निजपतिदृगितं स्वस्वामिदृष्टं भवति च पञ्चमस्थः कविः शुक्रः यदा भवति तदा राजयोगः भवति । किंवा अपरः योगः धर्मे नवमस्थाने शुक्रः दशभगतकुजः दशमस्थानस्थितमङ्गलः च विच्छनी बुधशनी स्वोच्चगौ यदा स्यातां तदा राजयोगः भवति । किंवा अपरः योगः ताते दशमे मेषूरणस्थे जीवे गुरौ च अरिगः षष्ठस्थानगतः अगुः राहुः धनवृषगकविः वृषं वृषभराशिं गतः वृषगः धने द्वितीयस्थाने वृषगः धनवृषगः स चासौ कविश्च दैत्यगुरुश्च यदा भवति तदा राजयोगः भवति । स्रग्धरावृत्तमेतत् ।।७९।।

चन्द्र और गुरु उच्चस्थान में शुक्र पञ्चमस्थान में और मङ्गल तृतीयस्थान में होने पर राजयोग होता है अथवा शनि और चन्द्र उच्चस्थान में, लग्न पर लग्न के ही स्वामी की दृष्टि होने पर और पञ्चमस्थान में शुक्र के होने पर राजयोग होता है अथवा नवमस्थान में शुक्र और दशमस्थान में मङ्गल तथा बुध, शनि के उच्चस्थान में होने पर राजयोग होता है ।।७९।।

अथ भाग्योदयकालयोगमिन्द्रवज्रयाऽऽह–

शुक्रेण युक्तश्च बुधेन युक्तो भाग्याधिनाथो यदि भाग्यगेहे ।
लग्नं च वाचस्पतिचन्द्रयुक्तं तदा भवेद्भाग्यसुयोगकालः ।।८०।।

शुक्रेणेति । शुक्रेण भृगुसुतेन च बुधेन तुहिनकिरणपुत्रेण युक्तः भाग्याधिनाथः नवमस्थानस्वामी भाग्यगेहे नवमगृहे यदि भवति वाचस्पतिचन्द्रयुक्तं बृहस्पतिचन्द्रयुक्तं

लग्नं च यदा भवति तदा भाग्यसुयोगकालः भवति । वृत्तमिदमिन्द्रवज्रा ।।८०।।

शुक्र और बुध से युक्त यदि नवमस्थान का स्वामी नवमस्थान में ही हो और गुरु तथा चन्द्र से युक्त यदि लग्न हो तो भाग्य का उत्तमयोग का काल प्राप्त होता है ।।८०।।

अथ भाग्ययोगमनुष्टुब्वृत्तेनाह–

पञ्चमं शुक्रसंयुक्तं धनं विधुयुतं यदा ।
युक्तं च गुरुणा भाग्यं भाग्ययोगस्तदा भवेत् ।।८१।।

पञ्चममिति ।शुक्रसंयुक्तं भृगुसंयुक्तं पञ्चमं च विधुयुतं चन्द्रयुक्तं धनं द्वितीयस्थानं यदा भवति गुरुणा विबुधगुरुणा युक्तं भाग्यं नवमस्थानं यदा च भवति तदा भाग्ययोगः भवेत् । अनुष्टुब्वृत्तमिदम् ।।८१।।

पञ्चमस्थान में शुक्र, द्वितीयस्थान में चन्द्र और नवमस्थान में गुरु के रहने पर **भाग्ययोग** होता है ।।८१।।

अथ वैदेहकयोगमनुष्टुब्वृत्तेनाह–

सुराचार्येण संयुक्तं कामस्थानं यदा भवेत् ।
स्वांशगश्चन्द्रपुत्रश्च नरो वैदेहकस्तदा ।।८२।।

सुराचार्येणेति– यदा सुराचार्येण गुरुणा संयुक्तं कामस्थानं सप्तमस्थानं भवति च चन्द्रपुत्रः शीतरश्मिजः बुधः स्वांशगः च भवति तदा नरः मनुजः वैदेहकः वणिक् भवेत् । अनुष्टुब्वृत्तमिदम् ।।८२।।

गुरु युक्त सप्तमस्थान होने पर बुध यदि अपने नवांश में स्थित हो तो मनुष्य व्यापारी होता है ।।८२।।

अथ पशुवाणिज्ययोगमनुष्टुब्वृत्तेनाह–

कामपस्तुङ्गयातश्चेन्मन्दभागं गते बुधे ।
वाणिज्यं द्रव्यलाभाय पशूनां कुरुते नरः ।।८३।।

कामप इति । कामपः सप्तमस्थानस्वामी तुङ्गयातः उच्चस्थानगतः चेत् बुधे तुहिनकिरणपुत्रे च मन्दभागं शनेः नवांशं गते सति तदा नरः मनुष्यः द्रव्यलाभाय पशूनां वाणिज्यं व्यापारं कुरुते । अनुष्टुब्वृत्तमिदम् ।।८३।।

सप्तमस्थान का स्वामी उच्च का हो और बुध यदि शनि के नवांश में स्थित हो तो मनुष्य द्रव्यलाभ के लिये पशुओं का व्यापार करता है ।।८३।।

अथ यानाख्ययोगमुपजातिवृत्तेनाह–

निशाधिनाथे जलगेहयाते सुरेण युक्ते हिबुकाधिपे च ।
विलोकिते वा सहिते सितेन यानाख्ययोगं मुनयो वदन्ति ।।८४।।

निशाधिनाथ इति । जलगेहयाते चतुर्थस्थानगते निशाधिनाथे चन्द्रे सति च सुरेण गुरुणा युक्ते च सितेन शुक्रेण सहिते वा विलोकिते हिबुकाधिपे च चतुर्थस्थानपतौ सति मुनयः तदा यानाख्ययोगं वदन्ति । उपजातिवृत्तमेतत् ।।८४।।

चन्द्र चतुर्थस्थान में हो, चतुर्थ स्थान का स्वामी गुरु से युक्त और शुक्र से दृष्ट हो, अथवा युक्त हो तो '**यानाख्य**' नामक योग होता है, ऐसा मुनियों का कहना है ।।८४।।

अथ वाहनसंज्ञयोगमिन्द्रवज्रयाऽऽह–

उच्चाम्बुनाथे भृगुजज्ञयुक्ते जीवेक्षितेऽङ्गे बहुयानलाभः ।
कुर्वन्ति शुक्रेज्यविदिन्दवो वा पातालगा वाहनसंज्ञयोगम् ।।८५।।

उच्चम्बुनाथ इति । भृगुजज्ञयुक्ते शुक्रबुधयुक्ते उच्चाम्बुनाथे उच्चश्चासौ अम्बुनाथश्च चतुर्थस्वामी च उच्चाम्बुनाथः तस्मिन् उच्चाम्बुनाथे उच्चचतुर्थस्थानस्वामिनि सति अङ्गे लग्ने जीवेक्षिते गुरुदृष्टे सति तदा बहुयानलाभः भवति वा शुक्रेज्यविदिन्दवः शुक्रश्च ईज्यः गुरुश्च वित् तुहिनकिरणपुत्रश्च बुधश्च वा इन्दुः चन्द्रश्च एते ग्रहाः पातालगाः चतुर्थस्थानगताः वाहनसंज्ञयोगं कुर्वन्ति । वृत्तमिदमिन्द्रवज्रा ।।८५।।

शुक्र और बुध से युक्त चतुर्थ स्थान का स्वामी उच्च का होने पर यदि लग्न पर गुरु की दृष्टि हो तो बहुविध वाहनयोग होता है । अथवा शुक्र, गुरु, बुध और चन्द्र चतुर्थस्थान में हो तो वाहनयोग होता है ।।८५।।

अथ गृहाप्तियोगं स्रग्धरावृत्तेनाह–

दृष्टे वेज्येन युक्ते तनुपतिसहिते तुङ्गगे वाहनेशे
सद्युक्तः शुक्रदृष्टो यदि च गृहपतिर्गीष्पतौ तुर्यगे वा ।
उच्चे भौमेम्बुयाते यदि हिबुकपतिर्युक्त ईज्येन वा स्यात् ।
उच्चे सदृष्टभौमे जलगजलपतिश्चेद् गृहाप्तिश्च किंवा ।।८६।।

दृष्ट इति । तनुपतिसहिते लग्नस्वामियुक्ते तुङ्गगे उच्चगृहगे ईज्येन गुरुणा युक्ते वा दृष्टे वाहनेशे चतुर्थस्थानपतौ सति वा अपरः योगः सद्युक्तः शुभग्रहसहितः

शुक्रदृष्टः यदि गृहपतिः चतुर्थस्थानस्वामी च गीष्पतौ त्रिदशगुरौ तुर्यगे चतुर्थस्थानगते सति किंवा अपरः योगः उच्चे भौमे अङ्गारके अम्बुयाते चतुर्थगते सति च ईज्येन गुरुणा युक्तः हिबुकपतिः चतुर्थस्थानस्वामी यदि स्यात् किंवा अपरः योगः सदृष्टभौमे शुभग्रहदृष्टे मङ्गले उच्चे सति जलगजलपतिः चतुर्थस्थानगतः चतुर्थस्वामी चेत् तदा गृहाप्तिः गृहाणां लाभः भवति। स्रग्धरावृत्तमेतत्।।८६।।

चतुर्थस्थान का स्वामी उच्च का हो, गुरु से युक्त हो या दृष्ट हो, लग्न स्वामी से युक्त या चतुर्थस्थान का स्वामी शुभग्रहों से युक्त हो और उस पर शुक्र की दृष्टि, गुरु चतुर्थस्थान में हो, या चतुर्थस्थान मङ्गल हो, चतुर्थस्थान का स्वामी गुरु से युक्त हो या शुभग्रहों से दृष्ट मङ्गल उच्च का हो और चतुर्थस्थान का स्वामी चतुर्थ में ही हो तो मनुष्य को गृह प्राप्ती होती है ।।८६।।

अथ जारजातयोगं स्रग्धरावृत्तेनाह-

पुत्रे स्वर्भानुयुक्ते विधुबुधसहितं लग्नगेहं यदा स्यात्।
धर्मच्छिद्राधिनाथौ खलविहगयुतौ क्वापि गेहस्थितौ वा।।
नीचे वा बुद्धिनाथे रविजकुजयुते ग्लौगुरुभ्यामदृष्टे
चेद्भौमेन्द्वन्वितौ वाम्बुगरिपुलयपौ मानवा जारजाताः।।८७।।

पुत्र इति। स्वर्भानुयुक्ते राहुयुक्ते पुत्रे पञ्चमस्थाने सति विधुबुधसहितं चन्द्रबुधसहितं चन्द्रबुधयुक्तं लग्नगेहं यदा स्यात् वा अपरःयोगः खलविहगयुतौ पापग्रहयुक्तौ क्वापि गेहस्थितौ धर्मच्छिद्राधिनाथौ नवमाष्टमनाथौ यदा स्यातां वा अपरः योगः रविजकुजयुते शनिमङ्गलयुक्ते ग्लौगुरुभ्यां चन्द्रगुरुभ्यामदृष्टे नीचे बुद्धिनाथे पञ्चमस्थानपतौ सति वा अपरः योगः अम्बुगरिपुलयपौ रिपुलयपौ षष्ठाष्टमनाथौ अम्बुगौ चतुर्थगतौ च तौ रिपुलयपौ च भौमेनद्वन्वितौ भौमः मङ्गलश्च इन्दुः चन्द्रः च ताभ्यामन्वितौ युक्तौ चेत् तदा मानवाः जारजाताः भवन्ति। स्रग्धरावृत्तमेतत्।।८७।।

राहु से युक्त पञ्चमस्थान हो, और लग्न यदि चन्द्र तथा बुध से युक्त हो अथवा पापग्रहों से युक्त नवमस्थान तथा अष्टमस्थान के स्वामी पत्रिका के किसी भी स्थान में स्थित होने पर अथवा मङ्गल तथा शनि से युक्त चन्द्र होने पर गुरु से अदृष्ट पञ्चमस्थान का स्वामी नीचराशि में स्थित होने पर अथवा षष्ठ या अष्टमस्थान के स्वामी चतुर्थस्थान में स्थित होने पर और वे चन्द्र और मङ्गल से युक्त यदि हों तो मनुष्यों की उत्पत्ति जार से होती है ।।८७।।

अथ सत्कलत्रलाभयोगं स्रग्धरावृत्तेनाह–

लग्नस्थानप्रयाते मदनगृहपतौ जीवशुभ्रांशुदृष्टे
जामित्रागारपे वा शुभखगदृगिते केन्द्रकोणालयेते ।
केन्द्रे वा कामनाथे भृगुसुतसहिते पूर्णचन्द्रेण दृष्टे
कामे वा जीवदृष्टे तनुसदनपतौ सत्कलत्रस्य लाभः ।।८८।।

लग्नस्थानेति । जीवशुभ्रांशुदृष्टे गुरुचन्द्रदृष्टे मदनगृहपतौ सप्तमस्थानपतौ लग्नस्थानप्रयाते सति वा अपरः योगः शुभखगदृगिते शुभखगानां ग्रहाणां दृशं दृष्टिमिते गते सति जामित्रागारपे सप्तमगृहस्वामिनि केन्द्रकोणालयेते केन्द्रकोणयोः आलयं गृहम् इते गते सति वा अपरः योगः भृगुसुतसहिते शुक्रयुक्ते पूर्णचन्द्रेण दृष्टे कामनाथे सप्तमस्थानपतौ केन्द्रे सति वा अपरः योगः तनुसदनपतौ लग्नगृहनाथे जीवदृष्टे गुरुणा दृष्टे कामे सप्तमगृहे सति सत्कलत्रस्य लाभः भवति । स्रग्धरावृत्तमेतत् ।।८८।।

सप्तमस्थान के स्वामी पर गुरु तथा चन्द्र की दृष्टि हो तथा वह लग्न में होने पर या शुभग्रहों से दृष्ट सप्तमस्थान का स्वामी केन्द्र में या कोण में स्थित होने पर या पूर्णचन्द्र से दृष्ट शुक्र से संयुक्त सप्तमस्थान का स्वामी केन्द्र में स्थित होने पर या गुरु से दृष्ट लग्न का स्वामी सप्तमस्थान में आने पर मनुष्य को सुशील भार्या प्राप्त होती है ॥८८॥

अथ सत्पुत्रलाभयोगमनुष्टुब्वृत्तेनाह–

सुतेशे गुरुसंयुक्ते लग्ननाथे च तुङ्गगे ।
गुणकीर्त्यान्वितं पुत्रं मनुष्यो लभते तदा ।।८९।।

सुतेश इति । गुरुसंयुक्ते विबुधगुरुसंयुक्ते सुतेशे पञ्चमेशे च तुङ्गगे उच्चराशिगते लग्नाथे सति तदा मनुष्यः गुणकीर्त्यान्वितं पुत्रं लभते विन्देत् । अनुष्टुब्वृत्तमिदम् ।।८९।।

गुरु युक्त पञ्चमस्थान का अधिपति हो और लग्न का स्वामी उच्च का हो तो मनुष्य को गुणवान् तथा कीर्तिमान् पुत्र प्राप्त होता है ।

अथ सन्तानयोगं भुजङ्गप्रयातेनाह–

सुरेणेक्षितः केन्द्रकोणप्रयातः सुतागारनाथस्तदा सन्ततिः स्यात् ।
सुतेशः सुतस्थो यदा तुङ्गराशौ भवेज्जीवदृष्टश्च सन्तानयोगः ।।९०।।

सुरेणेति । यदा सुरेण गुरुणा इक्षितः दृष्टः सुतागारनाथः पञ्चमस्थानस्वामी केन्द्रकोणप्रयातः भवति तदा सन्ततिः स्यात् यदा तुङ्गराशौ सुतेशः पञ्चमाधिपतिः जीवदृष्टः गुरुदृष्टः च सुतस्थः पञ्चमगृहगतः भवेत् तदा सन्तानयोगः भवति। भुजङ्गप्रयातं वृत्तमिदम् ।।९०।।

गुरु से दृष्ट पञ्चमस्थान का स्वामी केन्द्र में, कोण अर्थात् नवम या पञ्चमस्थान में स्थित होने पर मनुष्य को सन्तति प्राप्त होती है अथवा पञ्चमस्थान का स्वामी पञ्चमस्थान में उच्च का हो तथा उस पर गुरु की दृष्टि भी हो तो सन्तान योग होता है ।।९०।।

अथ ज्ञानपूर्णपुत्रयोगमनुष्टुब्वृत्तेनाह–

अत्युच्चे पञ्चमाधीशे केन्द्रकोणगृहस्थिते ।
लग्नाधीशेन संयुक्ते ज्ञानपूर्णः सुतो भवेत् ।।९१।।

अत्युच्च इति । केन्द्रकोणगृहस्थिते अत्युच्चे पञ्चमाधीशे लग्नाधीशेन संयुक्ते सति ज्ञानपूर्णः सुतः पुत्रः भवेत् । अनुष्टुब्वृत्तमिदम् ।।९१।।

केन्द्र या कोण में स्थित पञ्चम स्थान का स्वामी उच्च का होने पर और वह लग्न स्वामी से यदि युक्त हो तो पुत्र पूर्ण ज्ञानी होता है ।।९१।।

अथ पुत्रयोगमुपेन्द्रवज्रयाऽऽह–

हृद्रोगयातः सुतमन्दिरस्थो ददाति सौरः खलु पञ्चपुत्रान् ।
स्वराशितः पुत्रनिकेतनस्थ एकः सुतः स्याद् रविनन्दनश्चेत् ।।९२।।

हृद्रोगयात इति । हृद्रोगयातः कुम्भराशिगतः सुतमन्दिरस्थः पञ्चमगृहस्थितः सौरः सूर्यपुत्रः शनिः पञ्चपुत्रान् खलु ददाति, स्वराशितः कुम्भात् मकरात् वा पुत्रनिकेतनस्थः पञ्चमगृहस्थितः रविनन्दनः शनिः चेत् तदा एकः सुतः स्यात् । उपेन्द्रवज्रावृत्तमेतत् ।।९२।।

पञ्चमस्थान में कुम्भराशि का शनि होने पर पाँच पुत्र होते हैं और कुम्भ या मकरराशि से पञ्चमस्थान में शनि होने पर एक पुत्र होता है ।।९२।।

अथ बहुपुत्रयोगमुपेन्द्रवज्रावृत्तेनाह–

ददाति पुत्रत्रयमात्मजस्थस्तुङ्गानुयायी वसुधासुतश्च ।
गुरुर्यदा पञ्चमगेहवर्ती स्वराशिगः पञ्चसुतान् स दत्ते ।।९३।।

ददातीति। वसुधासुतः मङ्गलः तुङ्गानुयायी मकरराशिगतः आत्मजस्थः पञ्चमस्थानस्थितः पुत्रत्रयं ददाति यदा स्वराशिगः पञ्चमगेहवर्ती गुरुः त्रिदशगुरुः भवति तदा सः पञ्चसुतान् दत्ते। उपेन्द्रवज्रावृत्तमेतत्॥९३॥

मकरराशि का मङ्गल पञ्चमस्थान में आने पर वह तीन पुत्र देता है और गुरु पञ्चमस्थान में धन या मीनराशि का आने पर वह पाँच पुत्र देता है॥९३॥

अथ कन्याप्रजोद्भवकरयोगं वसन्ततिलकेनाह–

नक्रंगतो रविसुतो यदि पञ्चमस्थो तिस्रो ददाति दुहितृर्मनुजाय नित्यम्।
शुक्रक्षपापतिविदां यदि कश्चिदेकः कन्याप्रजोद्भवकरः सुतगेहवर्ती॥९४॥

नक्रंगत इति। यदि पञ्चमस्थः रविसुतः शनिः नक्रंगतः मकरराशिंगतः स्यात् तदा सः मनुजाय तिसृदुहितृः तिस्रः कन्याः दत्ते शुक्रक्षपापतिविदां शुक्रचन्द्रबुधानां यदि कश्चित् एकः ग्रहः सुतगेहवर्ती पञ्चमगृहगतः सन् कन्याप्रजोद्भवकरः भवति। वसन्ततिलकमिदं वृत्तम्॥९४॥

मकरराशि का शनि पञ्चमस्थान में आने पर वह मनुष्य को दो तीन कन्या देता है। शुक्र, चन्द्र या बुध में से कोई भी ग्रह पञ्चमस्थान में आने पर कन्या सन्तति प्राप्त होती है॥९४॥

अथ सन्तानाभावयोगम्प्रहर्षणीयवृत्तेनाह–

वागीशात्त्रिकभवनेषु पञ्चमेशो रन्ध्रस्थः सुतगृहपोऽङ्गपो व्ययस्थः।
धर्मेशो रिपुसदनं यदा च यातः सन्तानं नहि लभते तदा मनुष्यः॥९५॥

वागीशादिति। वागीशात् त्रिदशगुरोः सकाशात् पञ्चमेशः त्रिकभवनेषु षष्ठाष्टमद्वादशेषु यदा स्यात् सुतगृहपः पञ्चमस्थानस्वामी रन्ध्रस्थः अष्टमगृहगतः च अङ्गपः लग्नस्वामी व्ययस्थः द्वादशस्थः च रिपुसदनं षष्ठगृहं यातः धर्मेशः नवमगृहपतिः यदा भवति तदा मनुष्यः मनुजः सन्तानं नहि लभते। प्रहर्षणीयं वृत्तमेतत् तल्लक्षणम्- म्नौ ज्रौ गस्त्रिकदशकैः प्रहर्षणीयम्॥९५॥

गुरु से पञ्चमस्थान का स्वामी षष्ठ, अष्टम या द्वादशस्थान में होने पर पञ्चमस्थान का स्वामी अष्टमस्थान में तथा लग्न का अधिपति द्वादशस्थान में और नवमस्थान का स्वामी षष्ठस्थान में होने पर मनुष्य को सन्तति प्राप्त नहीं होती॥९५॥

अथ सन्तानाभावयोगम्प्रहर्षणीयवृत्तेनाह–

मन्दार्कौ द्युनगृहगौ तथा नभस्थः शीतांशुः सुरगुरुणा यदा न दृष्टः ।
वारिस्था रविरविजौ च षष्ठनाथश्चन्द्रेऽस्ते बुधदृगिते न सन्ततिः स्यात् ।।९६।।

मन्देति । मन्दार्कौ शनिसूर्यौ द्युनगृहगौ नवमगृहगतौ तथा नभस्थः दशमस्थः शीतांशुः शीता अंशवः किरणा यस्य सः, चन्द्रः यदा सुरगुरुणा त्रिदशगुरुणा दृष्टः न भवति तदा सन्ततिः न स्यात् वा अपरः योगः रविरविजौ रविशनी षष्ठनाथश्च अरिस्थाः षष्ठस्थाः बुधदृगिते बुधस्य दृशं दृष्टिं इते गते चन्द्रे चन्द्रमसि अस्ते सप्तमस्थाने सति तदा सन्ततिः न स्यात् । प्रहर्षणी वृत्तमेतत् ।।९६।।

शनि और सूर्य सप्तमस्थान में होने पर गुरु से अदृष्ट चन्द्र यदि दशमस्थान में हो तो सन्तति नहीं होती । अथवा शनि, सूर्य व षष्ठस्थान का स्वामी ये सभी ग्रह षष्ठस्थान में होने पर और बुध द्वारा दृष्ट चन्द्र यदि सप्तमस्थान में हो तो सन्तति नहीं होती है ।।९६।।

अथ स्त्रीपुरुषजन्मज्ञानलक्षणं मालिनीवृत्तेनाह–

तनुगुरुरविचन्द्रा न्रंशगा वीर्यवन्तो विषमसदनयाताः कुर्वते जन्म पुंसः ।
यदि समभवनेताः स्त्र्यंशगास्तेऽपि सर्वे दुहितृजननमुक्तं पण्डितैःशास्त्रविद्भिः ।।९७।।

तन्वीति । न्रंशगाः पुरुषांशगताः वीर्यवन्तः विषमसदनयाताः विषमराशिगताः तनुगुरुरविचन्द्राः पुंसः पुरुषस्य जन्म कुर्वते समभवनेताः समराशिगताः स्त्री अंशगाः नवांशगताः सर्वे ते अपि ग्रहाः लग्नगुर्वादयः यदि भवन्ति तदा शास्त्रविद्भिः पण्डितैः दुहितृजननं कन्याजन्म उक्तं कथितम् । मालिनीवृत्तमेतत् ।।९७।।

बलवान् तथा पुरुष नवांश को प्राप्त विषमराशि का लग्न और गुरु, सूर्य और चन्द्र पुरुषजन्म को बताते हैं । समराशि और स्त्री नवांश को प्राप्त उक्त ग्रह स्त्रीजन्म को बताते हैं ।।९७।।

अथ षण्ढयोगं वसन्ततिलकेनाह–

ओजर्क्षगो दिनकरः समगश्च चन्द्रस्त्वन्योन्यदृष्टिसहितौ यदि जन्मकाले ।
किंवेनजः समगतो विषमे बुधश्च चेत्पश्यतः खलु मिथोऽत्र तु षण्ढयोगः ।।९८।।

ओजर्क्षग इति । ओजर्क्षगः विषमराशिगः दिनकरः सूर्यश्च समगः समराशिगः चन्द्रः शीतरश्मिः यदि अन्योन्यदृष्टिसहितौ जन्मकाले स्यातां किंवा समगतो

इनजः शनिः विषमे बुधः तुहिनकिरणपुत्रः च मिथः अन्योन्यं पश्यतः चेत् अत्र अस्मिन् योगद्वये षण्ढयोगः खलु भवति । वसन्ततिलकं वृत्तमिदम् ।।९८।।

जन्मकाल में विषमराशि का सूर्य और समराशि का चन्द्र होने पर यदि वे एक दूसरे को देखते हों अथवा समराशि का शनि और विषमराशि का बुध होने पर यदि वे एक दूसरे को देखते हों तो उक्त दोनों ही योगों में मनुष्य निश्चित नपुंसक होता है ॥९८॥

अथ षण्ढयोगं वसन्ततिलकेनाह–

समगत इन ओजेऽसृङ्मिथः पश्यतश्चेत्
समगतकुजदृष्टौ वौजगाङ्गौषधीशौ ।
यदि च पुरुषभागे लग्नशुक्रेन्दवो वा
भवति जगति जातो वीर्यहीनश्च षण्ढः ।।९९।।

समगत इति । समगतः समराशिगतः इनः सूर्यः ओजे विषमराशौ असृक् मङ्गलः च मिथः पश्यतः चेत् वा अपरः योगः समगतकुजदृष्टौ समराशिगतमङ्गलेन दृष्टौ ओजगाङ्गौषधीशौ अङ्गं लग्नं च ओषधीशः चन्द्रः च अङ्गौषधीशौ ओजगौ विषमराशिगतौ च तौ अङ्गौषधीशौ लग्नचन्द्रौ च यदि स्यातां वा अपरः योगः पुरुषभागे पुरुषनवांशे लग्नशुक्रेन्दवः लग्नशुक्रचन्द्राः यदि सन्ति तदा जगति जातः मनुजः वीर्यहीनः षण्ढः च भवति । मालिनीवृत्तमेतत् ।।९९।।

यदि मङ्गल विषमराशि में तथा सूर्य समराशि में स्थित हों और वे परस्पर देख रहे हों अथवा लग्न व चन्द्र विषमराशि में हों और समराशि में स्थित मङ्गल यदि उन्हें देख रहा हो अथवा लग्न, शुक्र तथा चन्द्र यदि पुरुष नवमांश में हों तो मनुष्य वीर्यहीन और नपुंसक होता है ॥९९॥

अथान्यषण्ढयोगमनुष्टुब्वृत्तेनाह–

यदा समगतश्चन्द्रो विषमे च बुधः स्थितः ।
अङ्गारकेण दृष्टौ चेत् क्लीबयोगस्तदा भवेत् ।।१००।।

यदेति । समगतः समराशिगतः चन्द्रः तुहिनकिरणः विषमे स्थितः बुधः शशाङ्कसूनुः च अङ्गारकेण मङ्गलेन दृष्टौ चेत्तदा क्लीबयोगः षण्ढयोगः भवेत् । अनुष्टुब्वृत्तमिदम् ।।१००।।

चन्द्र समाराशि में और बुध विषमराशि में हो और उनमें से किसी एक पर भी मङ्गल की दृष्टि हो तो नपुंसकयोग होता है ॥१००॥

अथ दीर्घायुर्योगं स्रग्धरयाऽऽह–

लग्नाद्बुद्धिं गतो वा मनसिजगृहगो वा तपोगेहगो वा-
सद्द्रेष्काणांशयुक्तो यदि च सुरगुरुः पूर्णतुङ्गांशयातः ।
अङ्गाधीशेन युक्तो यदि च भृगुसुतः केन्द्रकोणप्रयातः
दीर्घायुर्जातदेही सुखधनसहितः पुण्यकर्ता तदा स्यात् ।।१०१।।

लग्नादिति । लग्नात् बुद्धिंगतः पञ्चमगृहगतः वा मनसिजगृहगः सप्तमस्थानगतः वा तपोगेहगाः नवमस्थानगतः सद्द्रेष्काणांशयुक्तः शुभग्रहद्रेष्काणनवांशयुक्तः पूर्णतुङ्गांशयातः पूर्णोच्चराश्यंगतः च सुरगुरुः त्रिदशगुरुः यदि स्यात् च अङ्गाधीशेन लग्नस्वामिना युक्तः केन्द्रकोणप्रयातः भृगुसुतः शुक्रः यदि स्यात्तदा सुखधनसहितः पुण्यकर्ता जातदेही दीर्घायुः भवति । स्रग्धरावृत्तमेतत् ।।१०१।।

लग्न से पञ्चम, सप्तम या नवमस्थान में शुभ द्रेष्काण हो, और नवांश से युक्त पूर्णराशि के उच्चांश में गुरु स्थित होने पर तथा लग्न स्वामी से युक्त शुक्र यदि केन्द्र में या कोण में हो तो मनुष्य श्रीमान्, सुखी, पुण्यवान् और दीर्घायु को प्राप्त करता है ।।१०१।।

अथ पूर्णायुर्योगम्मन्दाक्रान्तयाऽऽह–

केन्द्रस्थानागतशुभखगैरीक्षिते वीर्ययुक्ते
लग्नाधीशे धनगुणयुतं पूर्णमायुर्नरस्य ।
कर्केन्द्वीज्यौ तनुगृहगतौ केन्द्रगौ चेज्ज्ञशुक्रो
षष्ठे-लाभे सहजसदने चेतरे पूर्णमायुः ।।१०२।।

केन्द्रस्थानेति । केन्द्रस्थानागतशुभखगैः केन्द्रप्राप्तशुभग्रहैः ईक्षिते दृष्टे वीर्ययुक्ते लग्नाधीशे सति नरस्य धनगुणयुतं पूर्णमायुः भवति तनुगृहगतौ लग्नगौ कर्केन्द्वीज्यौ इन्दुः चन्द्रः च ईज्यः गुरुश्च इन्द्वीज्यौ कर्किणि कर्काख्यराशौ चेत् च केन्द्रगौ ज्ञशुकौ बुधशुक्रौ स्यातां चेत् च इतरे ग्रहाः षष्ठे लाभे एकादशे च सहजसदने तृतीयभवने सन्ति चेत् पूर्णमायुः भवति । मन्दाकान्तावृत्तमेतत् । तल्लक्षणम्-मन्दाक्रान्ताम्बुधिरसनगैर्मो भनौ तौ गयुग्मम् ।।१०२।।

केन्द्र स्थानगत तथा शुभग्रहों से दृष्ट लग्नस्वामी यदि बलवान् हो तो द्रव्य और गुणों से युक्त होकर मनुष्य पूर्णआयु प्राप्त करता है । लग्न में कर्कराशि का गुरु तथा चन्द्र होने पर और केन्द्र में शुक्र, बुध तथा अन्य ग्रह षष्ठ, एकादश और तृतीयस्थान में होने पर मनुष्य पूर्ण आयु प्राप्त करता है ।।१०२।।

अथ चिरजीवीयोगं शार्दूलविक्रीडितेनाह–

स्वोच्चस्थानगतो यदा सुरगुरुर्मूलत्रिकोणे शुभा
लग्नागारपतिश्च वीर्यसहितः स्याद्दीर्घमायुस्तदा ।
बुद्धिस्थानगतेषु धर्मसदनप्राप्तेषु सौम्येषु च
लग्नस्थानगते कुलीरगगुरौ जातश्चिरं जीवति ।।१०३।।

स्वोच्चेति । यदा स्वोच्चस्थानगतः सुरगुरुः त्रिदशगुरुः च मूलत्रिकोणे शुभाः भवन्ति सिंहो वृषः क्रियः कन्या धनुस्तौलिर्घटः क्रमात् एते सूर्यादीनां ग्रहाणां मूलत्रिकोणस्थानानि भवन्ति वीर्यसहितः लग्नगारपतिः लग्नगगृहस्वामी च भवति तदा दीर्घमायुः भवति, बुद्धिस्थानगतेषु पञ्चमगृहगतेषु च धर्मसदनप्राप्तेषु नवमगृहगतेषु सोम्येषु शुभग्रहेषु सत्सु कुलीरगगुरौ कर्कराशिगतगुरौ लग्नस्थानगते सति जातः मनुजः चिरं जीवति । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तमेतत् ।।१०३।।

उच्चस्थान में गुरु तथा मूलत्रिकोण में स्थित शुभग्रह होने पर यदि लग्नाधिपति बलवान् हो तो मनुष्य दीर्घकाल तक जीवित रहता है अथवा नवम एवं पञ्चमस्थान में शुभग्रह स्थित होने पर यदि कर्क का गुरु लग्न में हो तो मनुष्य दीर्घायु प्राप्त करता है ।।१०३।।

अथ दीर्घायुर्योगम्मालिनीवृत्तेनाह–

व्ययनवमग इन्दौ केन्द्रयाते च शुक्रे
तनुनवमगृहेतश्चेच्छनिर्दीर्घमायुः ।
निधनसदनयाता लग्नविध्वोर्न खेटाः
बलयुतगुरुशुक्रौ दीर्घमायुस्तदा नुः ।।१०४।।

व्ययेति । व्ययनवमगे द्वादशनवमगृहगते इन्दौ चन्द्रे च शुक्रे भृगुजे केन्द्रयाते सति तनुनवमगृहगः लग्ननवमगृहगतः शनिः अर्कपुत्रः चेत् दीर्घमायुः भवति, लग्नविध्वोः लग्नचन्द्रयोः निधनसदनयाताः अष्टमगृहगताः खेटाः ग्रहाः न भवन्ति बलयुतगुरुशुक्रौ यदा स्यातां तदा नुः नरस्य दीर्घमायुः भवति । मालिनीवृत्तमेतत् ।।१०४।।

नवम और द्वादशस्थान में चन्द्र तथा केन्द्र में शुक्र और लग्न या नवमस्थान में शनि के होने पर मनुष्य को दीर्घ आयु प्राप्त होती है । लग्न से या चन्द्र से अष्टम स्थान

में कोई भी ग्रह न होने पर यदि गुरु और शुक्र बलवान् हों तो मनुष्य को दीर्घ आयु मिलती है ॥१०४॥

अथ शतायुर्योगं वसन्ततिलकेनाह–

मीनोदये भृगुसुते धिषणे च केन्द्रे
चेच्छिद्रमन्दिरगतः शुभदृष्टचन्द्रः ।
केन्द्रस्थदैत्युगुरुचित्रशिखण्डिजौ वा
लाभे यदा शशधरश्च नरः शतायुः ॥१०५॥

मीनोदय इति । मीनोदये मीनलग्ने भृषसुते शुक्रे केन्द्रे धिषणे गुरौ सति च शुभदृष्टचन्द्रः छिद्रमन्दिरगतः अष्टमगृहगतः चेत् नरः मनुष्यःशतायुः भवति वा अपरः योगः यदा केन्द्रस्थदैत्यगुरुचित्रशिखण्डिजौ केन्द्रगतौ शुक्रगुरू स्यातां च लाभे एकादशे यदा शशधरः चन्द्रः च भवति तदा नरः मनुजः शतायुः भवति । वसन्तातिलकंवृत्तमिदम् ॥१०५॥

लग्न में मीनराशि का शुक्र एवं केन्द्र में गुरु स्थित होने पर यदि शुभग्रहों से दृष्ट चन्द्र अष्टमस्थान में हो तो मनुष्य दीर्घायु होता है । अथवा केन्द्र में शुक्र और गुरु तथा एकादश स्थान में चन्द्र के होने पर मनुष्य शतायु होता है ॥१०५॥

अथ मध्यमायुर्योगं स्रग्धरावृत्तेनाह–

केन्द्रस्थाने शुभाश्चेद्व्ययमृतिगृहगाः सर्वपापा भवन्ति
नीचागारप्रयाते तनुसदनपतौ देहिनो मध्यमायुः ।
लाभे पुण्ये धने वा यदि च सुरगुरुर्लग्नपो मृत्युगेहे
लग्नागारं यदा स्यात्खलखगदृगितं मध्यमायुर्नरः स्यात् ॥१०६॥

केन्द्रस्थान इति । केन्द्रस्थाने शुभाः व्ययमृतिगृहगाः द्वादशाष्टमगृहगताः सर्वपापाः सर्वपापखेचराः भवन्ति चेत् नीचागारप्रयाते नीचराशिप्राप्ते तनुसदनपतौ लग्नगृहस्वामिनि सति देहिनः नरस्य मध्यमायुः भवति । लाभे एकादशे पुण्ये नवमे धने द्वितीये वा सुरगुरुः जीवः च मृत्युगेहे अष्टमगृहे लग्नपः यदि भवति च खलखगदृगितं पापग्रहदृष्टं लग्नागारं यदा स्यात् तदा मध्यमायुः नरः मनुजः भवति । स्रग्धरावृत्तमेतत् ॥१०६॥

केन्द्र में सभी शुभग्रह और अष्टम तथा द्वादशस्थान में पापग्रहों के होने पर यदि

नीचराशि में लग्न स्वामी हो तो मनुष्य को मध्यम आयु प्राप्त होती है। एकादश, द्वितीय या नवमस्थान में गुरु हो, अष्टमस्थान में लग्न स्वामी होने पर तथा लग्नस्थान पापग्रहों से दृष्ट हो तो मनुष्य को मध्यम आयु मिलती है ॥१०६॥

अथ मध्यमायुर्योगमनुष्टुब्वृत्तेनाह—

जन्मकाले यदा यातो लग्नगेहं बृहस्पतिः।
लग्नेशो नीचराशौ च मध्यमायुर्नरो भवेत्॥१०७॥

जन्मकाल इति। यदा जन्मकाले लग्नगेहं बृहस्पतिः विबुधगुरुः यातः च लग्नेशः नीचराशौ भवति तदा नरः मनुष्यः मध्यमायुः भवति। अनुष्टुब्वृत्तमिदम्॥१०७॥

जन्मलग्न में गुरु हो और लग्न का स्वामी यदि नीचराशि में हो तो मनुष्य को मध्यम आयु मिलती है ॥१०७॥

अथाल्पायुर्योगमनुष्टुब्वृत्तेनाह—

हीनं शुभखगैः केन्द्रं लग्नं पापयुतं यदा।
लग्नेशो वीर्यहीनश्च जातोऽल्पायुर्भवेद्ध्रुवम्॥१०८॥

हीनमिति। यदा शुभखगैः शुभग्रहैः हीनं केन्द्रं च पापयुतं लग्नं च वीर्यहीनः लग्नेशः तदा अल्पायुः जातः मनुजः ध्रुवं भवेत्। अनुष्टुब्वृत्तमिदम्॥१०८॥

केन्द्र में शुभग्रह न हो, लग्न पापग्रह से युक्त हो और लग्न स्वामी यदि बलहीन हो तो मनुष्य निश्चित अल्पायु होता है ॥१०८॥

अथाल्पायुर्योगं शार्दूलविक्रीडितेनाह—

रन्ध्रेशे कुजसंयुते तनुपतिर्भौमेन दृष्टो यदि
राहुश्चन्द्र इनश्च लग्नगृहगा जातस्य तूर्णं मृतिः।
रिःफाङ्गाष्टमगेहगः खलयुतश्चन्द्रश्च केन्द्रे तमः
वाल्पायुः कुजभानुभानुतनया मृत्यौ यदा ग्लौयुताः॥१०९॥

रन्ध्रेश इति। रन्ध्रेशे अष्टमाधीशे कुजसंयुते मङ्गलयुक्ते सति च यदि भौमेन मङ्गलेन तनुपतिः लग्नस्वामी दृष्टः भवति राहुः स्वर्भानुः चन्द्रः इनः सूर्यश्च लग्नगृहगाः भवन्ति तदा जातस्य मनुजस्य तूर्णं सत्वरं मृतिः मरणं

भवेत् । रिःफाङ्गाष्टमगेहगः द्वादशलग्नाष्टमगृहगा खलयुतः पापग्रहयुक्तः चन्द्रः च केन्द्रे तमः राहुः सिंहिकासुतः यदा भवति वा अपरः योगः यदा ग्लौयुताः चन्द्रयुक्ताः कुजभानुभानुतनयाः मङ्गलसूर्यशनैश्चराः मृत्यौ अष्टमस्थाने भवन्ति तदा जातः मनुष्यः अल्पायुः भवेत् । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तमेतत् ।।१०९।।

अष्टमस्थान का स्वामी मङ्गल से युक्त हो, लग्न स्वामी पर मङ्गल की दृष्टि तथा राहु, चन्द्र और सूर्य लग्न में होने पर मनुष्य अल्पायु होता है । अथवा द्वादशस्थान में, लग्न में और अष्टमस्थान में पापग्रह से युक्त चन्द्र होने पर तथा केन्द्र में राहु के होने पर मनुष्य अल्पायु होता है । अथवा मङ्गल, सूर्य और शनि अष्टमस्थान में चन्द्र से युक्त होने पर मनुष्य अल्पायु होता है ॥१०९॥

अथाल्पायुर्योगम्मालिनीवृत्तेनाह–

शनिरविविधुभौमाः केन्द्रकोणप्रयाता
लयगृहगतराहुः कुर्वते मृत्युमाशु ।
यदि च खलयुतेन्दुर्मृत्युगौ मन्दभौमा-
वगुरवियुतलग्नं सत्वरं जातमृत्युः ।।११०।।

शनिरवीति । केन्द्रकोणप्रयाताः शनिरविविधुभौमाः शनिसूर्यचन्द्रमङ्गलाः लयगृहगतराहुः अष्टमगृहगतराहुः च आशु शीघ्रं मृत्युं कुर्वते । यदि खलयुतेन्दुः पापग्रहयुक्तचन्द्रः च मृत्युगौ अष्टमगृहगतौ मन्दभौमौ शनैश्चरमङ्गलौ च यदि अगुरवियुतलग्नं राहुसूर्ययुक्तलग्नं भवति तदा सत्वरं जातस्य मनुजस्य मृत्युः भवति । वृत्तमेतन्मालिनी ।।११०।।

शनि, सूर्य, चन्द्र और मङ्गल ये ग्रह केन्द्र में अथवा कोण में अर्थात् नवम, पञ्चमस्थान में होने पर अष्टमस्थान में यदि राहु हो तो मनुष्य शीघ्र मृत्यु को प्राप्त होता है । यदि पाप ग्रहों से युक्त चन्द्र, शनि और मङ्गल अष्टमस्थान में हो और लग्न राहु, सूर्य से युक्त हो तो मनुष्य की शीघ्र मृत्यु होती है ॥११०॥

अथाल्पायुर्योगं स्रग्धरावृत्तेनाह–

भूपुत्रश्चित्रभानुर्यदि तरणिसुतः कण्टकं च प्रयाताः
लग्ने वा चण्डरश्मी रवितनयकुजौ रन्ध्रगौ केन्द्रगेऽगौ
राहुर्वा कण्टके चेच्छशधरसहितो मन्दभौमौ द्युनेतौ
किंवेन्दौ शत्रुगे वाऽष्टमभवनगते पापदृष्टेऽल्पमायुः ।।१११।।

भूपुत्र इति। भूपूत्रः मङ्गलः चित्रभानुः सूर्यः तरणिसुतः शनैश्चरश्च कण्टकं केन्द्रं याताः यदि भवन्ति वा अपरः योगः चण्डरश्मिः सूर्यः लग्ने रन्ध्रगौ अष्टमगृहगतौ रवितनयकुजौ शनिमङ्गलौ च अगौ राहौ केन्द्रे सति वा अपरः योगः शशधरसहितः चन्द्रयुक्तः राहुः कण्टके केन्द्रे च द्युनेतौ सप्तमगृहगतौ मन्दभौमौ शनिमङ्गलौ चेत् किंवा अपरः योगः शत्रुगे षष्ठस्थानगते अष्टमभवनगते वा पापदृष्टे इन्दौ चन्द्रे सति जातस्य मनुजस्य अल्पमायुः भवति। स्रग्धरा-वृत्तमेतत्।।१११।।

मङ्गल, सूर्य और शनि ग्रहों के केन्द्र में होने पर अथवा सूर्य लग्न में तथा शनि और मङ्गल अष्टमस्थान में और राहु केन्द्र में स्थित होने पर अथवा चन्द्र के साथ राहु केन्द्र में और सप्तमस्थान में शनि तथा मङ्गल स्थित होने पर अथवा चन्द्र पाप ग्रहों की दृष्टि से युक्त होकर षष्ठ या अष्टमस्थान में आने पर मनुष्य अल्पकाल तक जीवित रहता है ॥१११॥

अथ शीघ्रमरणयोगमनुष्टुब्वृत्तेनाह–

दृष्टे पापैश्च युक्ते वा चन्द्रे सप्तममन्दिरे।
भौमयुक्तश्च राहुश्चेच्छीघ्रं जातमृतिर्भवेत्।।११२।।

दृष्ट इति। सप्तममन्दिरे काममन्दिरे चन्द्रे पापैः दृष्टे वा युक्ते सति च राहुः स्वर्भानुः भौमयुक्तः चेत् जातमृतिः जातस्य मनुष्यस्य मरणं शीघ्रं भवेत्। अनुष्टुब्वृत्तमिदम्।।११२।।

पापग्रहों से दृष्ट अथवा युक्त चन्द्र सप्तमस्थान में रहने पर और राहु यदि मङ्गल से युक्त हो तो जातक शीघ्र मृत्यु को प्राप्त होता है ॥११२॥

अथ शीघ्रमरणयोगमनुष्टुब्वृत्तेनाह–

व्ययस्थौ जीवराहू च क्षीणचन्द्रस्तनौ यदि।
सौम्यभौमयुते रन्ध्रे शीघ्रं मरणमादिशेत्।।११३।।

व्ययस्थाविति। यदि जीवराहू गुरुराहू व्ययस्थौ द्वादशस्थानगतौ च क्षीणचन्द्रः तनौ लग्ने भवति सौम्यभौमयुते बुधमङ्गलयुक्ते रन्ध्रे अष्टमगृहे सति मरणं शीघ्रमादिशेत्। अनुष्टुब्वृत्तमिदम्।।११३।।

द्वादशस्थान में गुरु और राहु, लग्न में क्षीण चन्द्र तथा अष्टमस्थान बुध और मङ्गल ग्रहों से युक्त होने पर शीघ्र मृत्यु का कथन करना चाहिए ॥११३॥

अथान्यानपि मृत्युयोगान् स्रग्धरावृत्तेनाह–

तातस्थाने च राहौ कुजतरणियुते सूनुनाऽर्कस्य दृष्टे
अज्ञातो जातमृत्युर्भवति लयगते वा तमोयुक्त इन्दौ ।
चन्द्रे स्वर्भानुयुक्ते व्ययमृतिगृहगे भौममन्देक्षिते वा
वार्केन्दुभ्यां च दृष्टे रविजकुजयुते सैंहिकेये मृतिस्थे ।।११४।।

तातस्थान इति । अर्कस्य सूनुना शनिना कुजतरणियुते मङ्गलसूर्ययुक्ते राहौ स्वर्भानौ तातस्थाने दशमस्थाने सति वा अपरः योगः तमोयुक्ते राहुयुक्ते इन्दौ चन्द्रे लयगते अष्टमस्थानगते सति वा अपरः योगः भौममन्देक्षिते मङ्गलशनिदृष्टे व्ययमृतिगृहगे द्वादशाष्टमगृहगते स्वर्भानुयुक्ते राहुयुक्ते चन्द्रे सति वा अपरः योगः अर्केन्दुभ्यां सूर्यचन्द्राभ्यां दृष्टे रविजकुजयुते शनिमङ्गलयुक्ते मृतिस्थे अष्टमस्थिते सैंहिकेये राहौ सति जातमृत्युः मनुजस्य मृत्युः अज्ञातः भवति । स्रग्धरावृत्तमेतत् ।।११४।।

शनि द्वारा दृष्ट मङ्गल और सूर्य संयुक्त राहु दशमस्थान में होने पर अथवा चन्द्र और राहु अष्टमस्थान में होने पर, अथवा मङ्गल और शनि द्वारा दृष्ट तथा राहुयुक्त चन्द्र द्वादश या अष्टमस्थान में होने पर अथवा सूर्य और चन्द्र से दृष्ट और शनि तथा मङ्गल से युक्त राहु अष्टमस्थान में स्थित होने पर मनुष्य की अपघात एक्सीडेण्ट से मृत्यु होती है ॥११४॥

अथान्यानपि मृत्युयोगान् मन्दाक्रान्तावृत्तेनाह–

भौमे पुत्रे लयग इनजेऽब्जे शुभेऽङ्गे च सूर्ये
विद्युत्पातादचलपतनाद्वा मृतिर्मानवस्य ।
चास्ते भौमे दशमग इने यानपाताद्वधः स्यात्
नीचेऽस्तेशे यदि मदगविधुर्व्याघ्रचोरापमृत्युः ।।११५।।

भौम इति । भौमे मङ्गले पुत्रे पञ्चमगृहे च इनजे शनौ लयगे अष्टमगते च अब्जे चन्द्रे शुभे नवमे च सूर्ये अङ्गे लग्ने सति विद्युत्पातात् अचलपतनात् पर्वतात् पतनात् वा मानवस्य मृतिः मरणं भवेत् । भौमे अस्ते सप्तमे च इने सूर्ये दशमगे मेषूरणस्थे सति यानपातात् शकटात् पतनात् वधः मरणं स्यात् । मदगविधुः सप्तमगतचन्द्रः यदि भवति च अस्तेशे सप्तमाधीशे नीचे सति व्याघ्रचोरापमृत्युः व्याघ्रात् वा चोरात् अपमृत्युः भवति । वृत्तमेतन्मन्द्राक्रान्ता ।।११५।।

पञ्चमस्थान में मङ्गल, लग्न में सूर्य, चन्द्र नवमस्थान में और शनि अष्टमस्थान में होने पर मनुष्य की मृत्यु, विद्युत् के गिरने से या पर्वत से गिरने से होती है अथवा सप्तमस्थान में मङ्गल और दशमस्थान में सूर्य के होने पर गाडी से गिरकर मनुष्य की मृत्यु होती है, और सप्तमस्थान का स्वामी नीचराशि का हो तथा सप्तमस्थान में चन्द्र हो तो जातक हिंस्र प्राणियों अथवा चौरादिको से अपघात द्वारा मृत्यु को प्राप्त होता है ॥११५॥

अथान्यानपि मृत्युयोगान् शिखरिणीवृत्तेनाह–

दृशा युक्तो भौमस्य तरणितमोयुक्तरविजो
लयस्थानं यातश्च भवति तदा लोहजमृतिः ।
सुहृद्गेहे भौमे गगनगृहगे सूर्यतनये
कलत्रे मार्तण्डे मनुजमरणं पावकभवम् ।।११६।।

दृशेति । भौमस्य दृशा युक्तः मङ्गलस्य दृष्ट्या युक्तः च तरणितमोयुक्तरविजः सूर्यराहुयुक्तशनैश्चरः यदा लयस्थानमष्टमस्थानं यातः भवति तदा लोहजमृतिः लोहोत्पन्नमरणं भवति । सुहृद्गेहे चतुर्थगृहे भौमे मङ्गले गगनगृहगे सूर्यतनये शनौ कलत्रे सप्तमे मार्तण्डे सूर्ये सति मनुजमरणं मनुष्यस्य मरणं पावकभवं पावकात् अग्नेः भवः जन्म यस्य तत् अग्निजं मरणं भवति इत्यर्थः । शिखरिणी वृत्तमेतत् ।।११६।।

मङ्गल की दृष्टि से युक्त और सूर्य तथा राहु से युक्त यदि शनि अष्टमस्थान में हो तो मनुष्य की मृत्यु लोहे से होती है। मङ्गल चतुर्थ में, शनि दशमस्थान में और सूर्य सप्तमस्थान में होने पर मनुष्य की मृत्यु अग्नि में जलकर होती है ॥११६॥

यदा वा सौरिभौमाभ्यां दृष्टो युक्तो विधुन्तुदः ।
लग्नस्वामियुतः कामे सर्पदंशान्मृतिस्तदा ।।११७।।

यदेति । सौरिभौमाभ्यां शनिमङ्गलाभ्यां दृष्टः युक्तः वा विधुन्तुदः राहुः लग्नस्वामियुक्तः यदा कामे सप्तमगृहे भवति तदा सर्पदंशात् मृतिः मृत्युः भवति । अनुष्टुब्वृत्तमिदम् ।।११७।।

शनि तथा मङ्गल से दृष्ट अथवा युक्त राहु लग्न स्वामी से युक्त होकर सप्तमस्थान में होने पर मनुष्य सर्पदंश से मृत्यु को प्राप्त करता है ॥११७॥

अथान्यानप्यनिष्टयोगान् शार्दूलविक्रीडितेनाह–

मन्दक्षेत्रगते रवौ च हरिगो मार्तण्डपुत्रो यदा
राहौ केन्द्रगते च जातमरणं घ्राणेन्द्रियच्छेदनात् ।
रिःफेशो यदि रन्ध्रगो निधनपे कोणेऽथवा कण्टके
वृक्षाग्रात् पतनान्नरस्य मरणं शस्त्रप्रहारेण वा ।।११८।।

मन्दक्षेत्रगत इति । रवौ मन्दक्षेत्रगते शनिराशिस्थानगते च मार्तण्डपुत्रः शनिः हरिगः सिंहराशिगतः यदा स्यात् च केन्द्रगते राहौ सति घ्राणेन्द्रियच्छेदनात् जातमरणं मनुजस्य मरणं भवति । यदि रन्ध्रगः अष्टमगतः रिःफेशः द्वादशगृहस्वामी भवति च निधनपे अष्टमाधीशे कोणे कण्टके केन्द्रे वा सति वृक्षाग्रात् पतनात् वा शस्त्रप्रहारेण नरस्य मरणं भवति । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तमेतत् ।।११८।।

शनि की राशि में सूर्य और सिंहराशि में शनि तथा केन्द्र में राहु के होने पर घ्राणेन्द्रिय छेदन से मनुष्य की मृत्यु होती है । अष्टमस्थान में द्वादशस्थान का अधिपति तथा अष्टमाधीश कोण में या केन्द्र में होने पर वृक्षाग्र से गिरकर या शस्त्राघात से मनुष्य मृत्यु को प्राप्त होता है ।।११८।।

चतुर्थे सूर्यपुत्रे च सप्तमे च निशापतौ ।
अङ्गारके च दशमे कूपे जातो मृतिं व्रजेत् ।।११९।।

चतुर्थ इति । सूर्यपुत्रे शनौ चतुर्थे च निशापतौ चन्द्रे सप्तमे च दशमे अङ्गारके मङ्गले सति जातः मनुजः कूपे मृतिं मरणं व्रजेत कूपे पतितो म्रियते ।।११९।।

चतुर्थस्थान में शनि और सप्तमस्थान में चन्द्र व दशमस्थान में मङ्गल के होने पर जातक (मनुष्य) कूप में डूब कर मरता है ।।११९।।

अथान्यानपि मृत्युयोगान् मालिनीवृत्तेनाह–

हिबुकनिलययाते लोहिताङ्गे रवौ वा
दशमग इनपुत्रे शूलरोगान्मृतिः स्यात् ।
कुजयुतधनगागुश्चेल्लयेशे लये च
मनुजमरणमन्ते भीमकारागृहे स्यात् ।।१२०।।

हिबुकेति । हिबुकनिलययाते चतुर्थगृहगते लोहिताङ्गे मङ्गले वा रवौ सति च इनपुत्रे शनौ दशमगे मेपूरणस्थे सति शूलरोगान्मृतिः मरणं स्यात् । कुजयुतधनगागुः

मङ्गलयुक्तद्वितीयस्थानगतराहुः चेत् स लयेशे अष्टमाधीशे लये अष्टमे सति अन्ते मनुजमरणं भीमकारागृहे स्यात्। वृत्तमेतन्मालिनी ।।१२०।।

मङ्गल अथवा सूर्य चतुर्थस्थान में और शनि दशमस्थान में होने पर शूल रोग उत्पन्न होकर मनुष्य मरता है। द्वितीयस्थान में मङ्गलयुक्त राहु तथा अष्टमाधीश अष्टम स्थान में होने पर मनुष्य अन्त में कारागृह में मृत्यु को प्राप्त होता है ॥१२०॥

अथानिष्टयोगमनुष्टुब्वृत्तेनाह–

अकस्मादपवादेन तदा मृत्युर्नरस्य च।
लग्नेशो नीचराशिस्थश्छिद्रेशेन युतो यदा ।।१२१।।

अकस्मादिति। छिद्रेशेन अष्टमाधीशेन युतः लग्नेशः नीचराशिस्थः यदा भवति तदा अकस्मात् अपवादेन नरस्य मृत्युः भवति। अनुष्टुब्वृत्तमिदम् ।।१२१।।

अष्टमस्थान के स्वामी से युक्त लग्नाधीश नीचस्थान में होने पर मनुष्य की अपवाद से मृत्यु होती है ॥१२१॥

अथापरनिष्टयोगमनुष्टुब्वृत्तेनाह–

चन्द्रराहुलयाधीशैर्युक्तं लग्नं यदा भवेत्।
अपघाताद्भवेन्मृत्युर्मनुजस्य न संशयः ।।१२२।।

चन्द्रेति। चन्द्रराहुलयाधीशैः चन्द्रराहुमृत्युस्थानपतिभिः युक्तं लग्नं यदा भवेत् तदा मनुजस्य मृत्युः अपघातात् भवेदित्यत्र संशयः न भवति। अनुष्टुब्वृत्तमिदम् ।।१२२।।

चन्द्र, राहु और अष्टमाधीश लग्न में आने पर मनुष्य की मृत्यु दुर्घटना से होती है, इसमें सन्देह नहीं ॥१२२॥

अथ अनिष्टयोगमनुष्टुब्वृत्तेनाह–

खलानुविद्धो भृगुजो विधुर्वा धर्मं गतश्चेद्गुरुदारगामी।
जामित्रनाथः सुतगेहवर्ती विपुत्रभार्यं मनुजं करोति ।।१२३।।

खलानुविद्ध इति। खलानुविद्धः पापग्रहयुक्तः भृगुजः शुक्रः विधुः चन्द्रः वा धर्मं गतः नवमस्थानगतः चेत् नरः गुरुदारगामी गुरुकलत्रगामी भवति। सुतगेहवर्ती पञ्चमस्थानस्थितः जामित्रनाथः सप्तमाधीशः मनुजं विपुत्रभार्यं

विगते पुत्रभार्ये यस्य सः विपुत्रभार्यः तं विपुत्रभार्यं पुत्रभार्याविहीनं करोति पुत्रैः भार्याभिश्च विप्रयुक्तो भवति । उपजातिः वृत्तमेतत् ।।१२३।।

चन्द्र या शुक्र पापग्रहों से युक्त होकर यदि नवमस्थान में हों तो मनुष्य गुरुपत्नी से सम्भोग करता है तथा सप्तमस्थान का स्वामी पञ्चमस्थान में होने पर मनुष्य निपुत्रिक और विधुर होता है ॥१२३॥

अथान्यानप्यनिष्टयोगान्वसन्ततिलकेनाह–

पुत्राद्व्ययारिलयगाः खलखेचराश्चेज्जातस्य ते कुलविनाशकरा भवन्ति ।
पुत्रे यदाऽङ्गगृहपोऽङ्गपुत्रपश्च गृह्णाति नात्मकुलरक्षकदत्तपुत्रम् ।।१२४।।

पुत्रादिति । पुत्रात् पञ्चमगृहात् खलखेचराः पापग्रहाः व्ययारिलयगाः द्वादशषष्ठाष्टमगताः चेत् तदा ते जातस्य मनुजस्य कुलविनाशकराः भवन्ति । अङ्गपुत्रप लग्नपतिः पुत्रे पञ्चमे च अङ्गपुत्रमः लग्नगतपञ्चमाधीशः यदा भवति तदा ना नरः आत्मकुलरक्षकदत्तपुत्रं गह्णाति । वसन्ततिलकंवृत्तमेतत् ।।१२४।।

पञ्चमस्थान से द्वादश, षष्ठ और अष्टमस्थान में पापग्रह होने पर वे ग्रह मनुष्य के कुल का नाश करते हैं और लग्न स्वामी पञ्चमस्थान में होने पर और पञ्चमाधीश लग्न में होने पर मनुष्य अपने कुल की वृद्धि के लिए दत्तकपुत्र लेता है ॥१२४॥

अथान्यानप्यनिष्टयोगान् भुजङ्गप्रयातेनाह–

खलालोकितौ शुक्रभौमौ भवेतां स्मरेतौ तदा वाध्यरोगी मनुष्यः ।
वृषे वाजराशौ क्षपानाथयुक्तौ भवेच्छ्वेतकुष्ठी यदा सौरिभौमौ ।।१२५।।

खलेति । खलालोकितौ पापग्रहदृष्टौ शुक्रभौमौ भृगुसुताङ्गारकौ यदा स्मरेतौ सप्तमगृहगतौ भवेतां तदा मनुष्यः वाध्यरोगी भवति । वृषे वा अजराशौ मेषराशौ क्षपानाथयुक्तौ चन्द्रयुक्तौ सौरिभौमौ शनिमङ्गलौ यदा स्यातां तदा नरः मनुजः श्वेतकुष्ठी भवति । भुजङ्गप्रयातं वृत्तमेतत् ।।१२५।।

पापग्रहों से दृष्ट शुक्र और मङ्गल सप्तमस्थान में होने पर मनुष्य अन्तर्गल नामक रोग से ग्रस्त होता है । वृषभ या मेषराशि में शनि, मङ्गल-चन्द्र से युक्त होने पर मनुष्य को श्वेत कुष्ठरोग होता है ॥१२५॥

अथान्यानप्यनिष्टयोगान् हरिणीवृत्तेनाह–

रुधिरविधुजौ दृष्टिं प्राप्तौ निशापतिशुक्रयोः
रिपुगृहगतौ पापांशेतौ क्षयी च नरस्तदा ।

खलखगयुते रीःफार्थे चेद् द्युनालयगे रवौ ।
भवति मनुजः श्वित्री लग्नं गते च निशापतौ ।।१२६।।

रूधिरेति । निशापतिशुक्रयोः दृष्टिं प्राप्तौ चन्द्रशुक्राभ्यां दृष्टौ पापांशेतौ पापग्रहांशगतौ च रिपुगृहगतौ षष्ठगृहगतौ रुधिरविधुजौ अङ्गारकशीतरश्मिजौ मङ्गलबुधौ वा यदा स्यातां तदा नरः क्षयी क्षयरोगी भवति । रिःफार्थे द्वादशद्वितीयगृहे खलखगयुते पापग्रहयुक्ते स्यातां चेत् च रवौ द्युनालयगे सप्तमगृहगे च निशापतौ चन्द्रे लग्नं कल्पं गते सति मनुजः नरः श्वित्री श्वेतकुष्ठयुक्तः भवति । हरिणीवृत्तमेतत्। तल्लक्षणम्—रसयुगहयैन्सौ म्रौस्लौ गो यदा हरिणी तदा ।।१२६।।

शुक्र और चन्द्र की दृष्टियों से युक्त तथा पापग्रहों के नवांशों से भी युक्त मङ्गल और बुध षष्ठस्थान में होने पर मनुष्य क्षयरोग से ग्रस्त होता है । बारवाँ और दूसरा स्थान पापग्रहों से युक्त होने पर तथा सप्तमस्थान में सूर्य तथा लग्न में चन्द्र के होने पर मनुष्य को श्वेतकुष्ठ रोग होता है ।।१२६।।

अथ सुयोगमुपजातिवृत्तेनाह—

गुरुश्च सूर्यश्च निशापतिश्च क्रमेण बुद्धौ सहजे च धर्मे ।
किंवा भृगुर्वा गुरुदृष्ट इन्दुः केन्द्रे तदा द्रव्ययुतो मनुष्यः ।।१२७।।

गुरुरिति । गुरुः बुद्धौ पञ्चमे च सूर्यः सहजे तृतीयगृहे च निशापतिः चन्द्रः धर्मे नवमे यदा अनेन क्रमेण सर्वेग्रहाः भवन्ति वा गुरुदृष्टः इन्दुः चन्द्रः वा भृगुः शुक्रः केन्द्रे यदा भवति तदा मनुष्यः द्रव्ययुतः भवति । उपजातिः वृत्तमेतत् ।।१२७।।

गुरु पञ्चमस्थान में, सूर्य तीसरे स्थान में और चन्द्र नवमस्थान में होने पर मनुष्य श्रीमान् होता है । गुरु से दृष्ट शुक्र या चन्द्र केन्द्र में होने पर भी मनुष्य श्रीमान् होता है ।।१२७।।

अथ कुयोगं भुजङ्गप्रयातेनाह—

हिमांशोर्यदा सप्तमागारसंस्थो धरण्यात्मजो मानवस्तस्करः स्यात् ।
यदा सूर्यपुत्रो विलग्नान्नभःस्थो भवेद्रात्रिजन्मा च भीरुर्मनुष्यः ।।१२८।।

हिमांशोरिति । हिमांशोः चन्द्रात् यदा सप्तमागारसंस्थः काममन्दिरस्थः धरण्यात्मजः मङ्गलः भवेत् तदा मानवः मनुजः तस्करः चोरः स्यात् । विलग्नात् लग्नगेहात् नभस्थः दशमस्थानगतः मेषूरणस्थो वा सूर्यपुत्रः शनिः यदा भवेत् च

मनुष्यः रात्रिजन्मा भवेत् तदा सः भीरुः कातरः भवति। भुजङ्गप्रयातं वृत्तमेतत् ।।१२८।।

चन्द्र से सप्तमस्थान में मङ्गल के होने पर मनुष्य चोर होता है और लग्न से दशम स्थान में शनि के होने पर तथा मनुष्य का जन्म रात्रि में होने पर वह भीरु अर्थात् डरपोक होता है ।।१२८।।

अथ विद्यायोगमिन्द्रवजयाऽऽह–

कोणे परोच्चे ज्ञशनी भवेतां विद्याधिनाथश्च मृगाङ्कयुक्तः ।
जातस्तदा गायनशास्त्रवेत्ता भवेत् सुपूज्यो बहुपण्डितैश्च ।।१२९।।

कोण इति। यदा ज्ञशनी बुधशनी परोच्चे कोणे नवपञ्चमगृहे भवेतां च विद्याधिनाथः पञ्चमेशः मृगाङ्कयुक्तः चन्द्रयुक्तः भवेत् तदा जातः मनुजः गायनशास्त्रवेत्ता च बहुपण्डितैः सुपूज्यः भवेत्। इन्द्रवज्रा वृत्तमेतत् ।।१२९।।

उच्च राशि के बुध और शनि नवम या पञ्चमस्थान में होने पर और पञ्चमस्थान का स्वामी चन्द्र युक्त यदि हो तो मनुष्य गायनशास्त्र में निपुण होकर पण्डितो द्वारा वह सन्मानित होता है ।।१२९।।

अथान्यान् विद्यायोगान्मालिनीवृत्तेनाह–

यदि सुतपतिरुच्चो जीवदृष्टश्च केन्द्रे बहुगुणयुतमर्त्यो ग्रन्थकर्ता च विद्वान् ।
सुतपतिरथ दृष्टो वा युतो भार्गविण तनुसुखसुतधर्माज्ञागतश्चेत् कविः स्यात् ।।१३०।।

यदीति। उच्चः जीवदृष्टः गुरुणा दृष्टः सुतपतिः पञ्चमेशः केन्द्रे यदि भवति तदा बहुगुणयुतमर्त्यो ग्रन्थकर्ता च विद्वान् भवति। अथ तनुसुखसुतधर्माज्ञागतः लग्नचतुर्थपञ्चमनवमदशमगृहप्राप्तः भार्गवेण शुक्रेण युतः वा दृष्टः सुतपतिः पञ्चमाधीशः चेत् तदा जातः मनुजः कविः स्यात्। मालिनी वृत्तमेतत् ।।१३०।।

उच्च राशि में आया हुआ और गुरु से दृष्ट पञ्चमाधीश यदि केन्द्र में हो तो मनुष्य बहुत बड़ा विद्वान् और ग्रन्थकर्ता होता है। लग्न में या पञ्चम, नवम या दशमस्थान में शुक्र से युक्त या दृष्ट पञ्चमाधीश होने पर मनुष्य कवि होता है ।।१३०।।

वाचस्पतिज्ञयुक्तः स्यात् पञ्चमेशस्त्रिके यदा ।
निर्विद्योऽथ च विद्वांश्चेत्सोऽपि स्यात् केन्द्रकोणगः ।।१३१।।

वाचस्पतिज्ञेति। वाचस्पतिज्ञयुक्तः गुरुबुधयुक्तः पञ्चमेशः सुतपतिः त्रिके षष्ठे अष्टमे द्वादशे वा यदा भवेत् तदा निर्विद्यः विद्याहीनः भवति अथ च

केन्द्रकोणगः सः पञ्चमेशः पञ्चमाधीशः अपि चेत् तदा मनुजः विद्वान् स्यात्। अनुष्टुब्वृत्तमिदम्।।१३१।।

गुरु और बुध से युक्त पञ्चमाधीश यदि षष्ठ, अष्टम और द्वादश स्थान में हो तो मनुष्य अविद्वान् होता है और वही ग्रह केन्द्र या कोण में हो तो मनुष्य विद्वान् होता है॥१३१॥

अथ सत्कर्मयोगान् मन्दाक्रान्तावृत्तेनाह–

पूर्णश्चन्द्रो नवमगृहगः संयुतश्चेत् सुरेण
पुण्याधीशे दशमसदने दृग्युते गीष्पतेर्वा।
स्वर्भानौ वा नवमगृहगे धर्मपे स्वांशगे च
पुण्यैर्युक्तो भवति मनुजस्तीर्थयात्रादिकर्ता।।१३२।।

पूर्णश्चन्द्र इति। सुरेण गुरुणा संयुतः पूर्णः चन्द्रः नवमगृहगः धर्मस्थानगतः चेत् वा अपरः योगः गीष्पतेः बृहस्पतेः दृग्युते पुण्याधीशे नवमगृहस्वामिनि दशमसदने मेषूरणस्थे सति वा अपरः योगः स्वर्भानौ राहौ नवमगृहगे च धर्मपे नवमाधीशे स्वांशगे निजनवांशगते सति तदा पुण्यैः युक्तः तीर्थयात्रादिकर्ता मनुजः नरः भवति। मन्दाक्रान्ता वृत्तमेतत्।।१३२।।

गुरु से युक्त पूर्ण चन्द्र नवमस्थान में होने पर या गुरु दृष्ट नवमस्थान का अधिपति दशमस्थान में होने पर या राहु नवमस्थान में और नवमस्थान का स्वामी स्वनवमांश में होने पर मनुष्य पुण्यकारक कर्म करता हुआ तीर्थ-यात्रादि करता है॥१३२॥

अथ सत्कर्मयोगमुपजातिवृत्तेनाह–

चन्द्रेण युक्तो यदि तुर्यनाथो भाग्याधिनाथो गुरुवीक्षितश्च।
वापीतडागादिभिरत्र जातः परोपकारं सततं करोति।।१३३।।

चन्द्रेणेति। चन्द्रेण युक्तः तुर्यनाथः चतुर्थस्थानस्वामी च गुरुवीक्षितः गुरुदृष्टः भाग्याधिनाथः नवमाधीशः यदि भवति तदा अत्र अस्मिन् योगे वापीतडागादिभिः जातः मनुजः परोपकारं सततमहर्निशं करोति। उपजातिः वृत्तमेतत्।।१३३।।

चतुर्थस्थान का स्वामी चन्द्र से युक्त और नवमस्थान के स्वामी पर यदि गुरु की दृष्टि हो तो मनुष्य कूप, तालाब आदि का निर्माण कर सदा परोपकार करता है॥१३३॥

अथ सत्कर्मयोगमुपजातिवृत्तेनाह–

धर्मस्थानगते सूर्ये सद्द्रेष्काणांशसंयुते ।
पुण्यं भागीरथीस्नानं मनुजस्य न संशयः ।।१३४।।

धर्मस्थानेति । सदद्रेष्काणांशसंयुते शुभग्रहद्रेष्काणस्य अंशेन युक्ते सूर्ये धर्मस्थानगते नवमगृहगते सति मनुजस्य पुण्यं भागीरथीस्नानं भवति अत्र संशयः न भवति । अमुष्टुब्वृत्तमिदम् ।।१३४।।

शुभग्रह के द्रेष्काण के अंश से युक्त सूर्य यदि नवमस्थान में हो तो मनुष्य निश्चय ही गङ्गास्नान करता है ।।१३४।।

विद्यातपोनाथयुतं च तातं दुश्चिक्यनाथेन समन्वितं च ।
मृगाङ्कपुत्रेण यदा च दृष्टं तदा मनुष्यो बहुपुण्यकर्ता ।।१३५।।

विद्यातपोनाथेति । दुश्चिक्यनाथेन तृतीयगृहस्वामिना समन्वितं च मृगाङ्कपुत्रेण बुधेन दृष्टं तातं दशमस्थानं विद्यातपोनाथयुतं पञ्चमनवमगृहस्वामियुक्तं यदा भवति तदा मनुष्यः बहुपुण्यकर्ता भवति । उपजातिः वृत्तमेतत् ।।१३५।।

तृतीयस्थान के स्वामी से युक्त और बुध की दृष्टि से युक्त दशमस्थान, पञ्चम और नवमस्थान के स्वामी से युक्त होने पर मनुष्य बहुत पुण्य कर्म करता है ।।१३५।।

अथ सत्कर्मयोगमनुष्टुब्वृत्तेनाह–

गुरुणा वा युतो दृष्टः पुण्यपः पुण्यगो यदा ।
तातगो रविपुत्रश्च योगोऽध्वरकरस्तदा ।।१३६।।

गुरुणेति । पुण्यगः नवमगृहगः पुण्यपः नवमस्वामी गुरुणा विबुधगुरुणा युतः वा दृष्टः यदा भवेत् च तातगः दशमगृहगः रविपुत्रः शनिः च यदा भवेत् तदा अध्वरकरः यज्ञकरः योगः भवति । अनुष्टुब्वृत्तमिदम् ।।१३६।।

नवमस्थान का स्वामी नवमगृह में होने पर यदि वह गुरु से दृष्ट या युक्त हो और दशमस्थान में शनि हो तो यज्ञ-यागादि सम्पादित करने का योग प्राप्त होता है ।।१३६।।

अथाध्वरकरयोगमनुष्टुब्वृत्तेनाह–

तातेशे तातभावस्थे सूर्यपुत्रेण संयुते ।
धर्मपेन च संदृष्टे योगोऽध्वरकरो भवेत् ।।१३७।।

तातेश इति । सूर्यपुत्रेण शनिना संयुते धर्मपेन नवमाधीशेन संदृष्टे च तातेशे दशमाधीशे तातभावस्थे दशमगृहगते सति अध्वरकरः यज्ञकरः योगः भवेत् । अनुष्टुब्वृत्तमिदम् ।।१३७।।

शनि से युक्त तथा नवमस्थान के स्वामी से दृष्ट दशमस्थान का स्वामी दशमस्थान में होने पर यज्ञ-यागादि सम्पन्न करने का योग प्राप्त होता है ।।१३७।।

अथ प्रव्रज्यायोगं शिखरिणीवृत्तेनाह–

यदा कर्मस्थाने भवति बुधदृष्टो रविसुतः
शनिः किंवा युक्तो गगनपतिना तातगृहगः ।
यदा वा विच्चन्द्रौ तरणिसुतदृष्टौ दशमगौ
तदा संन्यासः श्रीहरिसुपदलाभाय भवति ।।१३८।।

यदेति । बुधदृष्टः रविसुतः शनिः यदा कर्मस्थाने दशमस्थाने भवति किंवा गगनपतिना दशमाधीशेन युक्तः शनिः तातगृहगः दशमगृहगः भवेत् वा तरणिसुतदृष्टौ शनिदृष्टौ विच्चन्द्रौ बुधचन्द्रौ दशमगौ मेषूरणस्थौ यदा भवेताम् तदा श्रीहरिसुपदलाभाय सन्यासः भवति । शिखरिणी वृत्तमेतत् ।।१३८।।

बुध से दृष्ट शनि, दशमस्थान में होने पर या दशमस्थान के स्वामी से युक्त शनि दशमस्थान में होने पर या शनि की दृष्टि से युक्त बुध और चन्द्र दशमस्थान में होने पर इन तीन योगों से श्रीहरि के पदप्राप्ति के लिए संन्यासयोग प्राप्त होता है ।।१३८।।

अथ संन्यासयोगमनुष्टुब्वृत्तेनाह–

चन्द्रात् तातगृहप्राप्ता बुधगीष्पतिभार्गवाः ।
संन्यासस्य तदा योगो जातकस्य भवेद्ध्रुवम् ।।१३९।।

चन्द्रादिति । चन्द्रात् तातगृहप्राप्ताः दशमगृहप्राप्ताः बुधगीष्पतिभार्गवाः बुधगुरुशुक्राः यदा भवन्ति तदा जातकस्य मनुजस्य सन्यासस्य योगः ध्रुवं सत्यं भवेत् । अनुष्टुब्वृत्तमिदम् ।।१३९।।

चन्द्र से दशमस्थान में बुध, गुरु और शुक्र होने पर मनुष्य को नि:सन्देह सन्यास योग प्राप्त होता है ।।१३९।।

अथ कैवल्ययोगमनुष्टुब्वृत्तेनाह–

तातकोणव्ययप्राप्ताः शनिभौमेज्यभास्कराः ।
परब्रह्मणि युक्तात्मा जातकस्य तदा भवेत् ।।१४०।।

तातकोणेति । शनिभौमेज्यभास्कराः शनिमङ्गलगुरुसूर्याः तातकोणव्ययप्राप्ताः दशमनवमपञ्चमद्वादशगृहप्राप्ताः यदा भवन्ति तदा जातकस्य मनुजस्य परब्रह्मणि युक्तात्मा भवेत् । अनुष्टुब्वृत्तमिदम् ।।१४०।।

शनि, मङ्गल, गुरु और सूर्य यदि ये चार ग्रह दशम, नवम और पञ्चम तथा द्वादशस्थान में हों तो मनुष्य का आत्मा परब्रह्म में निमग्न होता है ।।१४०।।

अथान्यान्प्रवज्यायोगानुपजातिवृत्तेनाह–

एकालयेता यदि सर्वखेटा बलान्विता योगपरायणो ना ।
षण्णां खगानां मिलनं यदि स्यात् वने वसेद् राजकुलेऽपि जातः ।।१४१।।

एकालयेता इति। सर्वखेटाः एकालयेताः एकमालयं गृहमिताः गताः बलान्विताः यदि भवन्ति तदा ना नरः योगपरायणः भवेत् । यदि षण्णां खगानां ग्रहाणां मिलनमेकत्र एकस्मिन्स्थाने आगमनं स्यात् तदा राजकुले अपि जातः मनुष्यः वने वसेत् । उपजातिः वृत्तमेतत् ।।१४१।।

सभी शक्तिशाली ग्रह एक राशि में यदि हों तो मनुष्य योगाभ्यास में दक्ष होता है और छः ग्रह एकत्र मिलने पर मनुष्य राजकुल में पैदा होने पर भी वनवासी होता है ।।१४१।।

अथ सत्यलोकप्राप्तियोगं स्वागतयाऽऽह–

चापमेषशफरागतकेतुर्द्वादशे यदि नरो भवमुक्तः ।
रिःफगेहगशुभा यदि सर्वे सत्यलोकमुपयाति च जातः ।।१४२।।

चापमेति । यदि द्वादशे चापमेषशफरागतकेतुः धनुर्मेषमीनराशीन् आगतः केतुः भवेत् तदा नरः मनुजः भवमुक्तः भवात् मुक्तः संसारात् मुक्तः भवति च यदि रिःफगेहगशुभाः द्वादशगृहगाः सर्वे शुभग्रहाः भवन्ति तदा जातः मनुजः सत्यलोकं ब्रह्मदेवलोकमुपयाति गच्छति । स्वागता वृत्तेमेतत् ।।१४२।।

धनु, मेष या मीनराशि में द्वादशस्थान में केतु होने पर मनुष्य संसार से मुक्त होता है और सभी शुभग्रह द्वादशस्थान में होने पर मनुष्य मरणोपरान्त ब्रह्मलोक में गमन करता है ।।१४२।।

अथ वैकुण्ठलोकप्राप्तियोगमुपजातिवृत्तेनाह–

रविश्च सौरो विधुजो व्ययस्थाः स्वोच्चाभिदृष्टो भृगुवंशजातः ।
नयन्ति जातान् बहुपुण्ययुक्तान् सुखान्वितं विष्णुपुरं भवाब्धेः ।।१४३।।

रविरिति । रविः सूर्यः सौरः शनिः विधुजः बुधः च व्ययस्थाः द्वादशगृहप्राप्ताः च स्वोच्चाभिदृष्टः भृगुवंशजातः शुक्रः बहुपुण्ययुक्तान् जातान् मनुजान् भवाब्धेः संसारसागरात् सुखान्वितं विष्णुपुरं वैकुण्ठं नयन्ति । उपजातिः वृत्तमेतत् ।।१४३।।

सूर्य, शनि और बुध १२वें स्थान में होने पर यदि शुक्र पर मीनराशि की पूर्ण दृष्टि हो, तो ये सभी ग्रह संसारसागर से बहुपुण्य युक्त लोक में जातकों को (वैकुण्ठ) ले जाते हैं ।।१४३।।

अथ कैलासलोकप्राप्तियोगमुपजातिवृत्तेनाह–

यदा मृगाङ्कश्च बृहस्पतिश्च कुलीरयातौ बलिनौ व्ययस्थौ ।
तदा महानन्दकरं सुपूज्यं कैलासलोकं मनुजा व्रजन्ति ।।१४४।।

यदेति । व्ययस्थौ द्वादशगृहप्राप्तौ कुलीरयातौ कर्कटराशिगतौ मृगाङ्कः चन्द्रः बृहस्पतिः विबुधगुरुः च बलिनौ भवेतां तदा मनुजाः महानन्दकरं सुपूज्यं कैलासलोकं व्रजन्ति गच्छन्ति । उपजातिः वृत्तमेतत् ।।१४४।।

बलीचन्द्र और गुरु द्वादशस्थान में कर्कराशि के होने पर नितान्त आनन्ददायक और अतिपूज्य कैलासलोक को मनुष्य मृत्यु के बाद गमन करते हैं ।।१४४।।

अथ स्त्रीजातकमुपजातिवृत्तेनाह–

तनोर्विधोर्वा वनिताशरीरं तत्सप्तमेकान्तसुखं च चिन्त्यम् ।
लग्नात् सुते सन्ततिलाभकालो विचारणीयः खलु कामिनीनाम् ।।१४५।।

तनोरिति । तनोः लग्नात् विधोः चन्द्रात् वा वनिताशरीरं चिन्त्यं विचारणीयं च तत्सप्तमे तयोः चन्द्रलग्नयोः सप्तमे कान्तसुखं चिन्त्यम् । लग्नात् सुते पञ्चमगृहे सन्ततिलाभकालः खलु विचारणीयः । उपजातिः वृत्तमेतत् ।।१४५।।

स्त्री के शरीर का विचार लग्न और चन्द्र से करना चाहिए, पति के सुख का विचार लग्न तथा चन्द्र से सप्तमस्थान के द्वारा करना चाहिए और सन्तान प्राप्ति का विचार लग्न से पञ्चमस्थान के द्वारा करना चाहिए ।।१४५।।

अथ भर्तृसौख्यदायोगमनुष्टुब्वृत्तेनाह–

सद्दृष्टौ कामलग्नेशौ तुङ्गौ कण्टककोणगौ ।
तदा सौभाग्ययुक्ता च कामिनी भर्तृसौख्यदा ।।१४६।।

सदिति । कामलग्नेशौ सप्तमलग्नगृहस्वामिनौ सद्दृष्टौ तुङ्गौ उच्चौ च यदा

कण्टककोणगौ केन्द्रनवपञ्चमगतौ भवेतां तदा कामिनी भर्तृसौख्यदा च सौभाग्ययुक्ता भवति । 'अनुष्टुब्वृत्तमिदम् ।।१४६।।

सप्तमस्थान तथा लग्न का स्वामी केन्द्र या कोण में हो और यदि वह शुभ ग्रह से दृष्ट तथा उच्चांश में हो तो वह सौभाग्यवती स्त्री पति को सुख देने वाली होती है।

अथ सौभाग्ययोगम्मालिनीवृत्तेनाह–

निजगृहपतिदृष्टं लग्नगेहं यदा स्यान्मनसिजपतिरुच्चे केन्द्रगाः सद्ग्रहाश्च ।
विधुतनुगुरुदृष्टो लग्ननाथो यदा वा मदगतमदपश्चेदस्ति सौभाग्योगः ।।१४७।।

निजगृहेति । निजगृहपतिदृष्टं लग्नगेहं यदा स्यात् च उच्चे मनसिजपतिः सप्तमस्वामी च सद्ग्रहाः केन्द्रगाः यदा भवन्ति वा अपरः योगः यदा विधुतनुगुरुदृष्टः चन्द्रलग्नगुरुदृष्टः लग्ननाथः भवति च मदगतमदपः सप्तमगृहगतसप्तमस्वामी चेत् तदा सौभाग्ययोगः अस्ति । मालिनी वृत्तमेतत् ।।१४७।।

लग्न पर लग्न के स्वामी की ही दृष्टि तथा उच्चराशि में सप्तमस्थान का स्वामी होने पर तथा केन्द्र में शुभग्रह होने पर **सौभाग्ययोग** होता है अथवा चन्द्र, लग्न और गुरु से दृष्ट लग्न का स्वामी होकर सप्तमस्थान में सप्तमस्थान का ही स्वामी हो तो **सौभाग्ययोग** होता है ।।१४७।।

अथ सौभाग्ययोमुपजातिवृत्तेनाह–

लग्नाधिनाथः परमोच्चवर्ती स्मरेशदृष्टं स्मरमन्दिरं च ।
केन्द्रं यदा सर्वशुभाश्च याताः सौभाग्ययोगः कथितो मुनीन्द्रैः ।।१४८।।

लग्नाधिनाथ इति । परमोच्चवर्ती लग्नाधिनाथः च स्मरेशदृष्टं सप्तमपतिदृष्टं स्मरमन्दिरं सप्तमगृहं च सर्वशुभाः ग्रहाः केन्द्रं याताः यदा भवन्ति तदा मुनीन्द्रैः सौभाग्ययोगः कथितः । उपजातिः वृत्तमेतत् ।।१४८।।

ऋषियों के विचार मे लग्न स्वामी परम उच्चांश में हो और सप्तमग्रह के स्वामी की दृष्टि सप्तमगृह पर हो और केन्द्र में सभी शुभग्रह हों तो **सौभाग्ययोग** होता है ।।१४८।।

अथ वैधव्ययोगान् स्रग्धरावृत्तेनाह–

कामेशो रन्ध्रवर्ती निधनपतियुतः पापदृष्टो यदा स्या-
द्राहुर्वा कामगश्चेच्च लयपदृगिते कामपे सूर्ययुक्ते ।

भौमे वा चाष्टमस्थे स्मरपतिसहिते पापखेटैश्च दृष्टम्
युक्तं वा लग्नगेहं पतिसुखरहिता स्त्री तदा भर्तृहीना ।।१४९।।

कामेश इति । पापदृष्टः निधनपतियुतः अष्टमस्वामियुक्तः कामेशः सप्तमेशः रन्ध्रवर्ती अष्टमस्थः यदा भवेत् वा राहुः कामगः सप्तमगृहगः चेत् च लयपदृगिते अष्टमस्वाामिदृष्टे सूर्ययुक्ते कामपे सप्तमाधीशे सति वा स्मरपतिसहिते सप्तमगृहस्वामियुक्ते अष्टमस्थे भौमे मङ्गले सति च यदा लग्नगेहं पापखेटैः पापग्रहैः युक्तं वा दृष्टं भवेत् तदा स्त्री पतिसुखरहिता भर्तृहीना विधवा भवति । स्रग्धरावृत्तमेतत् ।।१४९।।

पापग्रह से दृष्ट और अष्टमस्थान के स्वामी से युक्त सप्तमाधीश यदि अष्टमस्थान में हो या सप्तमस्थान में राहु अष्टमस्थान के स्वामी से दृष्ट और सूर्य युक्त सप्तमस्थान का स्वामी होने पर, या सप्तमस्थान के स्वामी से युक्त अष्टमस्थान में मङ्गल के होने पर लग्नगृह पापग्रहों से दृष्ट अथवा युक्त होने पर स्त्री को पति का सुख प्राप्त नहीं होता और वह विधवा होती है ।।१४९।।

अथ वैधव्ययोगमुपजातिवृत्तेनाह–

कामालये मृत्युगृहे तमो वा भौमेन युक्तं च शनैश्चरेण ।
शोकेन नित्यं बहुदुःखयुक्तां करोति वैधव्ययुतां च बालाम् ।।१५०।।

कामालय इति । भौमेन मङ्गलेन च शनैश्चरेण तरणिसुतेन युक्तं तमः राहुः कामालये सप्तमगृहे मृत्युगृहे अष्टमगृहे वा आगते सति नित्यं शोकेन बहुदुःखयुक्तां च वैधव्ययुतां बालां बालवधूं करोति । उपजातिः वृत्तमेतत् ।।१५०।।

शनि तथा मङ्गल से युक्त राहु अष्टमस्थान में या सप्तमस्थान में होने पर वह बालवधू को निरन्तर दुःखयुक्त करके विधवा करता है ।।१५०।।

अथ विषकन्यायोगान् भुजङ्गप्रयातेनाह–

द्वितीयातिथौ सार्पभे सूर्यवारे तथा कृत्तिकायां शनौ वाद्रितिथ्याम् ।
कुजे सूर्यतिथ्यां च भे वारुणे वा भवेद् यज्जनिः सा विषाख्या सुता स्यात् ।।१५१।।

द्वितीयेति । द्वितीयातिथौ सार्पभे आश्लेषानक्षत्रे सूर्यवारे रविवासरे वा तथा कृत्तिकायां शनौ शनिवासरे अद्रितिथ्यां सप्तम्यां वा कुजे मङ्गलवारे सूर्यतिथ्यां द्वादश्यां च वारुणे भे शततारकानक्षत्रे यज्जनिः यस्याः कन्यकायाः जनिः जन्म

भवेत् सा विषाख्या सुता विषकन्या भवति । भुजङ्गप्रयातं वृत्तमेतत् ।।१५१।।

आश्लेषा नक्षत्र में रविवार को तथा द्वितीया तिथि में, या कृत्तिका नक्षत्र में शनिवार को तथा सप्तमी तिथि में या शततारका नक्षत्र में मङ्गलवार व द्वादशी तिथि को इन तीन योगों पर जिस कन्या का जन्म होता है, वह विषकन्या अर्थात् वैधव्य, मृतप्रजा आदि दोष को प्राप्त होती है ॥१५१॥

अथान्यान् विषकन्यायोगाननुष्टुब्वृत्तेनाह–

द्वितीयायां शनौ सार्पे नक्षत्रे यज्जनिर्भवेत् ।
सप्तम्यां वारुणे भे वा भौमे सा विषकन्यका ।।१५२।।

द्वितीयायामिति । द्वितीयायां शनौ शनिवासरे सार्पे नक्षत्रे आश्लेषानक्षत्रे वा सप्तम्यां वारुणे भे शततारकानक्षत्रे भौमे मङ्गलवारे यज्जनिः यस्याः कुमार्याः जनिः जन्म भवेत् सा विषकन्यका भवति । अनुष्टुब्वृत्तमिदम् ।।१५२।।

शनिवार को द्वितीया तिथि तथा आश्लेषा नक्षत्र में, या सप्तमी तिथि को शततारका नक्षत्र में मङ्गलवार के दिन इन दो योगों पर जिस कन्या का जन्म होगा वह विषकन्या होती है ॥१५२॥

अथान्यान् विषकन्यायोगानुपजातिवृत्तेनाह–

भद्रातिथौ मन्दकुजार्कवारे तथाग्निसार्पाम्बुपभे च यस्याः ।
कुमारिकाया जननं विषाख्या मुहूर्तमार्तण्डमतेन सा स्यात् ।।१५३।।

भद्रातिथाविति । भद्रातिथौ द्वितीया सप्तमी द्वादशी आसामन्यतमायां तिथ्यां मन्दकुजार्कवारे शनिमङ्गलसूर्याणामन्यतमे वारे अग्निसार्पाम्बुपभे कृत्तिकाश्लेषाशततारकाणामन्यतमे भे नक्षत्रे यस्याः कुमारिकायाः जननं जन्म भवेत् सा मुहूर्तमार्तण्डमतेन विषाख्या भवति । उपजातिः वृत्तमेतत् ।।१५३।।

मूहूर्तमार्तण्ड ग्रन्थ के अनुसार भद्रातिथि में अर्थात् द्वितीया, सप्तमी, और द्वादशी इनमें से किसी भी तिथि को, शनिवार, मङ्गलवार और रविवार इनमें से किसी एक वार को कृत्तिका, आश्लेषा तथा शततारका इन नक्षत्रों में से किसी एक नक्षत्र में जन्म लेने वाली कन्या विषकन्या, होती है ॥१५३॥

अथान्यान् विषकन्यायोगानुपजातिवृत्तेनाह–

धरासुतो धर्मगृहं प्रयातः लग्ने शनिर्बुद्धिगतश्च सूर्यः ।
अङ्गे शुभौ शत्रुगृहागतौ वा तदा कुमार्या जननं विषाख्यम् ।।१५४।।

धरासुत इति। धर्मगृहं नवमगृहं प्रयातः धरासुतः मङ्गलः लग्ने शनिः तरणिसुतः च बुद्धिगतः पञ्चमगृहगतः सूर्यः वा अपरः योगः अङ्के लग्ने शुभौ शुभग्रहौ शत्रुगृहमागतौ प्राप्तौ यदा भवेतां तदा कुमार्याः जननं जन्म विषाख्यं भवति। उपजातिः वृत्तमेतत्॥१५४॥

नवमस्थान में मङ्गल, लग्न में शनि और पञ्चमस्थान में सूर्य के होने पर या लग्न में दो शुभग्रह अपने शत्रु गृहों में होने पर कन्या का जन्म विषाख्य होता है ॥१५४॥

अथ वैधव्ययोगपरिहारप्रकारमुपजातिवृत्तेनाह–

यो लग्नगेहादथवा हिमांशोः द्युनालयेतः शुभसप्तमेशः।
वैधव्यवैपुत्र्यजदोषमेकः शक्नोति हन्तुं विहगस्तदा सः॥१५५॥

य इति। लग्नगेहात् शुभसप्तमेशः शुभसप्तमाधीशः द्युनालयेतः सप्तमगृहगतः यः भवति वा हिमांशोः चन्द्रात् शुभसप्तमेशः द्युनालयेतः स्मरमन्दिरगतः यः भवति तदा सः एकः विहगः ग्रहः वैधव्यवैपुत्र्यजदोषः विधवायाः भावः वैधव्यं, विगतः पुत्रः यस्य सः विपुत्रः तस्य भावः वैपुत्र्यमेतयोः जातं वैधव्यवैपुत्र्यजं दोषं हन्तुं शक्नोति समर्थः भवति। उपजातिः वृत्तमेतत्॥१५५॥

लग्न से या चन्द्र से सप्तमाधीश के शुभग्रह होने पर यदि वह सप्तमस्थान में ही हो तो वह अकेला ग्रह ही वैधव्यदोष और निपुत्रिकत्व द्रोष को दूर करने में समर्थ होता है ॥१५५॥

अथान्यानप्यनिष्टयोगानुपजातिवृत्तेनाह–

षण्ढः पतिर्विद्रविजौ स्मरे चेत् पापा द्युने चेद् विधवा भवेत् स्त्री।
स्मरालयं स्याच्चरराशियुक्तम् पतिः प्रवास्यस्ति तदाङ्गनायाः॥१५६॥

षण्ढ इति। विद्रविजौ बुधशनी स्मरे सप्तमगृहे चेत् षण्ढः पतिः भवति। द्युने सप्तमगृहे पापः पापग्रहः चेत् स्त्री विधवा भवेत्। च यदा स्मरालयं काममन्दिरं सप्तमस्थानमित्यर्थः, चरराशियुक्तं भवति तदा अङ्गनायाः पतिः प्रवासी अस्ति। उपजातिः वृत्तमेतत्॥१५६॥

सप्तमस्थान में शनि और बुध ग्रह के होने पर पति नपुंसक होता है। सप्तमस्थान में पापग्रहों के होने पर स्त्री विधवा होती है। सप्तमस्थान चरराशि से युक्त होने पर उस स्त्री का पति प्रवासी होता है ॥१५६॥

अथान्यानप्यनिष्टयोगानुपजातिवृत्तेनाह–

चन्द्रान्वितौ शुक्रकुजौ द्युने चेत् भर्त्राज्ञया स्त्र्यन्यनरप्रसक्ता ।
शुभेक्षिते हीनबले च पापे भर्त्रुज्झिता स्यात् स्मरगेहयाते ।।१५७।।

चन्द्रानिति । चन्द्रान्वितौ चन्द्रयुक्तौ शुक्रकुजौ शुक्रमङ्गलौ द्युने चेत् सप्तमगृहे चेत् भर्त्राज्ञया भर्तुः आज्ञया स्त्री अन्यनरप्रसक्ता भवति । शुभेक्षिते शुभग्रहदृष्टे हीनबले पापे स्मरगेहयाते सप्तमगृहगते सति स्त्री भर्त्रुज्झिता भर्त्रा उज्झिता त्यक्ता स्यात् । उपजातिः वृत्तमेतत् ।।१५७।।

चन्द्रयुक्त शुक्र और मङ्गल ग्रह सप्तमस्थान में होने पर स्त्री पति की आज्ञा से परपुरुष के साथ मैथुन करती है । शुभग्रह से दृष्ट और बलहीन पापग्रह सप्तमस्थान में होने पर पति अपनी भार्या का त्याग करता है ॥१५७॥

अथ पत्नीमोक्षयोगं स्वागतयाऽऽह–

ज्ञारजीवभृगुजा बलिनश्च लग्नमन्दिरगताः समराशौ ।
ब्रह्मवादनिपुणा गुणयुक्ता स्यात्तदा च पतिसेवनदक्षा ।।१५८।।

ज्ञारजीवेति । समराशौ लग्नमन्दिरगताः बलिनः च ज्ञारजीवभृगुजः बुधमङ्गलगुरुशुक्राः यदा भवन्ति तदा अङ्गना ब्रह्मवादनिपुणा वेदान्तवादनिपुणा गुणयुक्ता च पतिसेवनदक्षा स्यात् । स्वागता वृत्तमेतत् ।।१५८।।

समराशि के बलशाली बुध, मङ्गल, गुरु और शुक्र लग्न में होने पर स्त्री वेदान्तशास्त्र के शास्त्रार्थ में निपुण, गुणवती और पतिसेवा में सदा तत्पर रहती है ॥१५८॥

अथ पूर्वजवर्णनमिन्द्रवज्रयाऽऽह–

रेखीकुलोत्पन्नपवित्रविप्रो यो बापुभट्टोऽभवदग्निहोत्री ।
नानाभिधो यस्य सुतः प्रसिद्धो ज्योतिर्विदां प्राग्रसरश्च पूज्यः ।।१५९।।

रेखीति । रेखी कुलोत्पन्नश्चासौ पवित्रविप्रश्च रेखीकुलोत्पन्नपवित्रविप्रः यः बापुभट्टः अग्निहोत्री अभवत् यस्य ज्योतिर्विदां ज्योतिःशास्त्रज्ञातृणां प्राग्रसरः श्रेष्ठः च पूज्यः नानाभिधः नाना इति अभिधा नाम यस्य सः नानाभिधः सुतः पुत्रः प्रसिद्धः जातः । इन्द्रवज्रा वृत्तमेतत् ।।१५९।।

बापु भट्ट नामक ब्राह्मण अग्निहोत्री का सुप्रसिद्ध रेखी कुल में जन्म हुआ, उनका

नाना जोशी नामक पुत्र जोतिषियों के समाज में प्रवीण और पूज्य समझा जाता था ।।१५९।।

तस्यात्मजो वामननामधेयस्तस्य प्रसादादकरोत्सुबोधम् ।
चिन्तामणिग्रन्थमिमं च रम्यमहंमदाख्ये नगरे प्रसिद्धे ।।१६०।।

तस्येति । तस्य नानाभिधस्य आत्मजः पुत्रः वामननामधेयः वामननामा तस्य पितुः प्रसादात् इमं सुबोधं रम्यं सुन्दरं च चिंतामणिग्रन्थं प्रसिद्धे अहंमदाख्ये नगरे अकरोत् । इन्द्रवज्रा वृत्तमेतन् ।।१६०।।

नाना जोशी नगरकर के वामन नामक पुत्र ने उन्हीं की कृपा से सुन्दर और सरल चिन्तामणि नामक ग्रन्थ को महाराष्ट्र के अहमदनगर में प्रकाशित किया ।।१६०।।

श्रीमद्वत्सकुलोद्भवो गुणयुतो ज्योतिर्विदामग्रणीः
विख्यातो वसुधातले निजगुणैर्नानाभिधानश्च यः ।
तद्विद्यालवलाभतः सुफलितस्तस्यात्मजो वामनः
गोक्वष्टैकमिते शके व्यतनुत श्रीयोगचिन्तामणिम् ।।१६१।।

रेखीकुलोत्पन्नेन नानाजोशीसूनुना वामनेन विरचितः श्रीयोगचिन्तामणिः पूर्णतामगात्

श्रीमदिति । श्रीमद्वत्सकुले वत्सगोत्रे उद्भवः जन्म यस्यः सः श्रीमद्वत्सकुलोद्भवः गुणयुतः ज्योतिर्विदामग्रणीः अग्रेसरः वसुधातले भूमण्डले निजगुणैः विख्यातः प्रसिद्धः यः नाना इति अभिधानं नाम यस्य सः नानाभिधानः नानासंज्ञकः तस्यात्मजः पुत्रः वामनः तद्विद्यालवलाभतः तस्य पितुः विद्यायाः लवलाभतः अल्पलाभात् सुफलितः सन् गोक्वष्टैकमिते नवैकाष्टैकमिते (१८१९) शके श्रीयोगचिन्तामणिं श्रीयोगचिन्तामणिनामकं ज्योतिषग्रन्थमिमं व्यतनुत अकरोत् । स्रग्धरा वृत्तमेतत् ।।१६१।।

श्री वत्सऋषि के कुल में जन्म प्राप्त कर गुणवान् ज्योतिषियों में अपने गुणों से नाना जोशी के नाम से प्रसिद्धि प्राप्त की उन्हीं के वामन नामक पुत्र ने पिता के आशीर्वाद से १८१९ में श्रीयोगचिन्तामणि नामक ग्रन्थ की रचना की ।।१६१।।

महामहोपाध्यायानाम्पण्डित श्री गजाननशास्त्रिचरणानामनुगृहीतान्तेवासिना,
पूज्यपादपण्डितश्रीकेशवरावशास्त्रिचरणतनूजन्मना
श्रीमद्प्रमिलागर्भसम्भूतेन मुसलगाँवकरोपनामकेन राजेश्वरशास्त्रिणा विरचिता
'किरणावली' व्याख्या श्रीमद्गुरुचरणानुग्रहात् पूर्णताम्प्राप्ता
।। श्रीहरिःशरणम् ।।

व्यवहार ज्योतिष

स जयति सिन्धुरवदनो देवो यत्पादपङ्कजस्मरणम् ।
वासरमणिरिव तमसां राशीन्नाशयति विघ्नानाम् ।।

जिस प्रकार सूर्य अन्धकार का नाश करता है, उसी प्रकार जिसके चरण कमलों का स्मरण सभी विघ्नों का नाश करता है, वह सिन्धुरवदन (गजानन) उत्कर्ष को प्राप्त करता है।

१. नमस्ते गणपतये	गणपति को नमस्कार।
२. त्वमेव प्रत्यक्षं तत्त्वमसि।	तुम्हीं प्रत्यक्ष तत्त्व हो।
३. त्वमेव केवलं कर्तासि।	तुम्हीं केवल कर्ता हो,
४. त्वमेव केवलं धर्तासि।	तुम्हीं केवल धारणकर्ता और
५. त्वमेव केवलं हर्तासि	तुम्ही केवल संहारकर्ता हो,
६. त्वमेव सर्वं खल्विंद ब्रह्मासि	तुम्हीं केवल समस्त विश्वरूप हो
७. त्वं साक्षादात्मासि नित्यम्	हो और तुम्हीं साक्षात् नित्य आत्मा हो
	(गणपत्यथर्वशीर्ष)

समय बड़ा बलवान् है, देखिए न, जिस यज्ञ कर्म के लिये वेद प्रवृत्त हुए, वे यज्ञ भी काल पर ही निर्भर हैं, **वेदास्तावद्यज्ञकर्मप्रवृत्ता यज्ञाः प्रोक्तास्ते तु कालाश्रयेण।**

काल का विधान करने वाले **ज्योतिष** शब्द का मूल संस्कृत के 'ज्योति' शब्द में देखने को मिलता है। 'ज्योति' का अर्थ है तेज या प्रकाशकारक अवयव। आकाश के चन्द्रसूर्यादिक तेजःपुञ्ज तारागणादि दीपक की ज्योति की तरह प्रकाशदायक पदार्थ होने से तत्सम्बन्धी विषय को ज्योतिष कहा जाता है। शास्त्र शब्द का अर्थ अनुशासन, शिक्षित करना या नियम या गूढरहस्य का प्रतिपादन करना आदि है। अतः ज्योतिष विषय से सम्बन्धित शिक्षण या नियम जिसमें वर्णित हों, वह ज्योतिःशास्त्र है। यह भी दो प्रकार का है (१) ग्रह-नक्षत्रों की स्थिति, गति आदि का विचार करने वाला शास्त्र गणितज्योतिष और (२) ग्रह-नक्षत्र आदि के शुभाशुभ फल बताने वाला फलितज्योतिषशास्त्र, कहलाता है। वेद के छः अङ्ग है शिक्षा, कल्प, (सूत्र) व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष।

वेदाङ्ग

(भारतीय ज्योतिषशास्त्र का संक्षिप्त इतिवृत्त)

वेदाङ्ग का अर्थ तथा महत्त्व

वेदाङ्गों में ज्योतिष अन्तिम वेदाङ्ग है। 'अङ्ग' शब्द का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ है 'उपकाक' अर्थात् जिनके द्वारा किसी वस्तु के स्वरूप जानने में सहायता प्राप्त होती है, उन्हें 'अङ्ग' कहते हैं। 'ज्योतिष'-वेद की प्रवृत्ति यज्ञ के सम्पादन के लिये है और यज्ञ का विधान विशिष्ट समयों की अपेक्षा रखता है। यज्ञ याग के लिये समय शुद्धि की नितान्त आवश्यकता होती है। कुछ विधान ऐसे हैं, जिनका सम्बन्ध संवत्सर से है और किसी का ऋतु से। तैत्तरीय ब्राह्मण का कथन है कि ब्राह्मण वसन्त में अग्नि का आधान (स्थापन) करे, क्षत्रिय ग्रीष्म में, वैश्य शरद् ऋतु में आधान करे। कुछ यज्ञ विशिष्टमासों तथा विशिष्ट पक्षों में किये जाते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि नक्षत्र, तिथि, पक्ष, मास, ऋतु तथा संवत्सर-काल के समस्त खण्डों के साथ यज्ञयाग का विधान वेदों में पाया जाता है। इन नियमों के यथार्थ निर्वाह के लिये ज्योतिषशास्त्र का ज्ञान नितान्त आवश्यक तथा उपादेय है। इसीलिये वेदाङ्ग ज्योतिष का तो यह आग्रह है कि जो व्यक्ति ज्योतिष को भलीभाँति जानता है, वही यज्ञ का यथार्थ ज्ञाता होता है। इस प्रकार ज्योतिष काल प्रतिपादक शास्त्र है और इसीलिए इसकी वेदाङ्गता सुप्रसिद्ध है।

वास्तव में यज्ञ की सफलता केवल उचित विधान में ही नहीं, प्रत्युत उचित नक्षत्र तथा उचित समय में करने से ही होती है। यज्ञ विधान के लिये ज्योतिष के इस महत्त्व को **भास्काराचार्य** ने भी स्पष्टत: स्वीकार किया है। वेदाङ्ग ज्योतिष की सम्मति में ज्योतिष समग्र वेदाङ्गों में मूर्धस्थानीय है। जिस प्रकार मयूर की शिखा उसके सिरपर रहती है, सर्पो का का मणि उनके मस्तक पर स्थित रहता है, उसी प्रकार षडङ्ग वेद में ज्योतिष को सर्वश्रेष्ठ स्थान प्राप्त है। ज्योतिष वेद पुरुष का चक्षु है। जिस प्रकार चक्षुर्विहीन पुरुष अपने कार्य संपादन में असमर्थ रहता है, उसी प्रकार ज्योतिष ज्ञान से रहित पुरुष वैदिक कार्यों में सर्वथा अन्धा होता है।

इस ज्योतिष की भी जिसे आज हम शास्त्र शब्द से सम्बोधित करते हैं—एक परम्परा रही है। वैसे भारतीय संस्कृति में समस्त ज्ञान सम्पदा परमेश्वर से ही उत्पन्न मानी जाती है, कहा गया है—

योगो ज्ञानं तथा सांख्यं विद्याः शिल्पादि कर्म च।
वेदाः शास्त्राणि विज्ञानमेतत्सर्वं जनार्दनात्।।

तदनुसार इसकी भी परम्परा रही है। ब्रह्मा ने नारद ऋषि को इस ज्योतिष का ज्ञान दिया था। सूर्य ने मयासुर को, चन्द्रमा ने शौनक ऋषि को और वसिष्ठ ने माण्डव्य ऋषि को ज्योतिष की शिक्षा देने के लिये वसिष्ठ संहिता की रचना की थी। दुर्भाग्य से ये अतिप्राचीन ग्रन्थ आज उपलब्ध नहीं हैं और उपलब्ध हैं भी तो अत्यन्त खण्डित, जर्जरित और त्रुटित रूप में। वराहमिहिर द्वारा संपादित 'पञ्चसिद्धान्तिका' ग्रन्थ प्राचीन ग्रन्थ है, पर यह भी त्रुटित है।

गच्छता कालेन ज्योतिषशास्त्र के आचार्यों की परम्परा तीन भागों में विभक्त हो गयी और इसी के आधार पर ज्योतिषशास्त्र के तीन भेद आज देखने को मिलते है। ये तीन भेद है—सिद्धान्त, संहिता और होरा। इन्हें ही वराहमिहिर के बाद में तन्त्र, संहिता और होरा कहा है। जो आज ज्योतिष के 'त्रिस्कन्ध ज्योतिष' के नाम से प्रसिद्ध हैं।

विद्वानों का इस विषय में मतभेद है कि वैदिक काल में हिन्दुओं को ग्रहों का ज्ञान था कि नहीं। इसका तात्पर्य यह नहीं कि वैदिक ऋषियों ने शुक्र और बृहस्पति जैसे ज्वलन्त ज्योतिष्क पिण्डों को देखा था या नही, इस विषय में मत भेद हैं। भला यह सोचिए—ज्योतिष्क पिण्ड़ों को देखने के लिये भारतवर्ष के विशाल मैदान और निरभ्र आकाश से बढ़कर और कौन सा साधन हो सकता है ? वस्तुतः आकाश में दो प्रकार के ज्योतिष्क पिण्ड हैं। एक को नक्षत्र कहते हैं। वे स्व प्रकाश हैं, वे पृथ्वी से इतने दूर हैं कि हम हजारों वर्षों में भी इन की मामूली गति का ही अंदाज लगा सकते हैं। मध्यकाल के ज्योतिषी तो उन्हें स्थित ही मानते थे। दूसरे ग्रह हैं जो सूर्य के प्रकाश से प्रकाशित होते हैं और चलते नज़र आते हैं। देशी पण्डितों ने वेदों में आए हुए 'सप्त आदित्य' शब्द का अर्थ 'सातग्रह' बताया है। यह सत्य है कि वैदिक संहिताओं में बृहस्पति, सूर्य और चन्द्र के अतिरिक्त और किसी ग्रह का नाम नहीं है। किसी समय यूरोपियन पण्डितों ने बताना चाहा था कि भारतीय नक्षत्र विद्या या तो बेबीलोनिया से भारत में आई थी या चीन से, परन्तु शायद ही कोई इन बातों पर विश्वास करे। अब तो यह सिद्ध हो चुका है कि भारत की नक्षत्र विद्या ही उन देशों में गई थी। इतना निश्चित है कि वैदिक काल में नक्षत्रों का प्रचलन अधिक था। ग्रहों और राशियों की गणना लगभग दो हजार वर्ष पहले से ही हमारे देश में विशेष प्रचलित हुई है। उत्तर संहिता युग में स्पष्ट ही बताया जाने लगा कि अमुक नक्षत्र में यज्ञ करने से फल शुभ होता है, अमुक में अशुभ। ईस्वीसन् के पहले की लिखी गई ज्योतिष संहिताओं में (जिनका

परिचय हमें अधिकांश रूप में टीकाकारों ने उद्धरणों से ही पता चलता है) यज्ञ के अतिरिक्त विवाह आदि संस्कारों के लिये भी शुभ अशुभ नक्षत्रों का विधान किया जाता है। महाभारत काल में शुभ मुहूर्त में विवाहादि करने की प्रथा चल पडी थी। द्रुपद ने युधिष्ठिर को शुभ मुहूर्त में विवाह करने का आदेश दिया। (आदि. १९८) ज्योतिष का यही प्राचीन अंग विकसित होकर मुहूर्तशास्त्र के रूप में परिगत हुआ और आज संसार का कोई काम ऐसा नहीं है, जिसके लिए विधि और निषेध इस शास्त्र ने प्रस्तुत न किये हों। इसी प्रकार की परम्पराओं के समर्थन के लिए शुभाशुभ फल निर्देश की नींव पड़ी, परन्तु यह भारत के आदियुग में बिल्कुल नहीं था कि मनुष्य के भाग्य का नियन्त्रग कोई आकाशचारी ग्रह या नक्षत्र कर रहा है।

ज्योतिष के साथ शास्त्र का प्रयोग

सामान्य रूप से 'शास्त्र' शब्द 'शासनात् शास्त्रं' शासन करने वाला अर्थात् विधि-निषेध करने वाला होने से 'शास्त्र' कहलाता है, अर्थात् मनुष्य को किसी कार्य में प्रवृत्त करना या किसी कार्य से निवृत्त करना होता है। वेद, स्मृति, धर्मशास्त्र, आदि ग्रन्थ मनुष्य को सत्कर्म में प्रवृत्त होने और असत् कार्यों से निवृत्त होने का आदेश देते हैं। जैसे पूर्व में कहा है इसलिए वे शास्त्र कहलाते है, परन्तु यहाँ ध्यातव्य है कि विधि प्रतिषेधपरक ग्रन्थ ही शास्त्र नहीं कहलाते, अपितु किसी गूढ तत्त्व का 'शंसन्' प्रतिपादन करने वाले ग्रन्थ भी शास्त्र कहलाते हैं।

इसलिये ज्योतिष शास्त्र का प्रयोजन है "उस सृष्टि को समझना जो अंनन्त दूरी तक अनन्ताकाश में फैली है और उससे भी ज्यादा महत्त्वपूर्ण प्रयोजन है उस परमाशक्ति को जानना जो सुप्त और गुप्त रूप में सृष्टि को जीवन दे रही है।" (पृ. ७, ज्योतिषास्त्र डॉ. कामेश्वर उपाध्याय) यहाँ ज्ञातव्य है कि ज्योतिषशास्त्र को जिसने जिस रूप में देखा और समझा उसने उतना ही उसका प्रयोजन आँका। किसी ने उसे 'प्रत्यक्षशास्त्र' माना तो किसी ने उसे प्रत्यक्षानुभूति को देने वाला कहा—जीवन में जो घटनाएँ भविष्य में घटने वाली है, सृष्टि में जो हलचल होने वाली है, उसका पूर्व कथन करना ही इसका प्रतिपाद्य विषय माना।

ग्रहपिण्डों का जीवन पर प्रभाव

यह विश्वास भारत के आदि युग में बिल्कुल ही नहीं था कि मनुष्य के भाग्य का नियंत्रण कोई आकशचारी ग्रह या नक्षत्र कर रहा है। अपने शुभाशुभ कर्मो के

फलस्वरूप ही मनुष्य शुभ या अशुभ फल पाता है, किसी दूसरे के कारण नहीं। यही साधारण विचार था। ब्राह्मण और उपनिषदों के बाद के युग में यह बात भी विश्वास की जाने लगी थी कि आकाश में चलने वाले ग्रह नक्षत्र भी मनुष्य के शुभाशुभ भाग्य के कारण हैं। ब्राह्मण और सूत्र ग्रन्थों के समय में यह बात स्पष्ट ही स्वीकार की जाने लगी थी कि किसी विशेष नक्षत्र में यज्ञ करने का भावी फल शुभ और किसी में अशुभ होता है। ग्रह पिण्ड पृथ्वी मनुष्य एवं प्राणियों को किस रूप में और कितना प्रभावित करने हैं यह फलितज्योतिष का गोचर विषय है। लल्लाचार्य (ई. ४९९) ने कहा है कि समस्य नक्षत्र मण्डल भूमि से बंधा है। वसिष्ठ संहिता में वसिष्ठ ऋषि ने निर्भ्रान्त शब्दों में कहा है कि—

ग्रहा राज्यं प्रयच्छन्ति ग्रहा राज्यं हरन्ति च।
ग्रहैस्तु व्यापितं सर्वं त्रैलोक्यं सचराचरम्॥

बृहस्पति के विचारानुसार सृष्टि का रक्षण और संहार ग्रहों के ही अधीन है। आज यदि सूर्य नष्ट हो जाय तो पृथ्वी को नष्ट होने में एकक्षण भी नहीं लगेगा।

सौरमण्डल का आत्मा सूर्य है तथा मन का प्रतीक ग्रह चन्द्र है। इसीलिए यवनाचार्य ने कहा है कि पृथ्वी पर स्थित प्रत्येक जड़ व चेतन का विकास और ह्रास सूर्य–चन्द्र के कारण संभव है।

समुद्र में प्रायः आनेवाला ज्वार भाटा, पृथ्वी तट पर आने वाली सुनामी लहरें, तूफान, भूकम्प आदि इस के उदाहरण हैं। विभिन्न राशि–नक्षत्रों के लक्षण पृथ्वीवासी प्राणियों से भी मिलते है। जो इस बात की ओर इंगित करता है कि दूरस्थ ग्रह–नक्षत्रों का प्रभाव पृथ्वीवासियों पर अवश्य पडता है। धर्मसूत्रों में फलित ज्योतिषी या देवज्ञ को राजा के लिए आवश्यक बताया गया है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र (प्रथम ई. शती) के अनुसार छोटी अदालत के कार्यवाहकों में शुभाशुभ भविष्य के निर्देश करने वाले दैवज्ञ का रहना आवश्यक है। युद्ध में तो भावी फलाफल के निर्देश के लिए ज्योतिषी का होना नितान्त आवश्यक बताया गया है।

ईस्वीसन् के आसपास फलित ज्योतिष के अनेक ग्रन्थ लिखे जा चुके थे, जो प्रायः सब लोप हो गये है। ईसा की छठी शताब्दी में एक बहुत बड़े ज्योतिषी 'वराहमिहिर' ने ज्योतिष की प्रत्येक शाखा पर ग्रन्थ लिखे। ये ग्रन्थ नाना ज्ञातव्य तथ्यों से भरे हैं। इन्हीं ग्रन्थों से पता चलता है कि वराहमिहिर के पूर्व असित, देवल, गर्ग, वृद्धगर्ग,

नारद, पराशर, सत्याचार्य, जीव शर्मा, सिद्धसेन, मय, यवन और मणित्थ आदि अनेक आचार्यो ने पुस्तकें लिखी थी। अन्तिम तीन नामों को ग्रीक बताया गया है।

वराहमिहिर ने ज्योतिषशास्त्र को (जैसा कि पूर्व में कहा है) तीन शाखाओं में विभक्त किया है। १ तंत्र २ संहिता और ३ होरा। तंत्र में पाटीगणित एरिथमेटिक) बीज गणित (एलजब्रा), ग्रहगणित (मेथेमेटिकल) एस्ट्रोनॉमी), गोल (स्फेरिकल एस्ट्रेनॉमी) और करण (प्रैक्टिकल एस्ट्रोनामी) शामिल हैं। संहिता में नानाविध प्राकृत घटनाओं का विचार रहता है और होराशास्त्र में जन्म के समय के ग्रह नक्षत्रों की स्थिति से भविष्य फल बताया जाता है। अंग्रेरजी में जिसे 'एस्ट्रोलोजी' कहते हैं, वह होराशास्त्र ही है। मगर भारतीय फलित ज्योतिष में होरा के अतिरिक्त और अनेक बातें भी सम्मिलित हैं।

पहले हमने बताया है कि अर्थशास्त्र और धर्मसूत्रों के युग में या हजरत ईसा से कुछ सौ वर्ष पूर्व भारतीय राजाओं को ज्योतिषी अवश्य रखना पड़ता था। वराहमिहिर ने 'बृहत्संहिता' में दैवज्ञ या ज्योतिष का जो लक्षण दिया है, उससे सहज ही ज्ञान हो सकेगा कि ज्योतिषियों को क्या-क्या काम करना पड़ता था ? ज्योतिषी को हर प्रकार के ज्योतिषिक और अन्य गणितों से परिचित होना पड़ता था। देह के फड़कने का क्या अर्थ, स्वप्न का फल कैसा होता है ? विविध शुभ कर्मो के आरम्भ या समाप्त करने का शुभ मुहूर्त कौन सा है इत्यादि। राजा को ज्योतिषी की सबसे बड़ी आवश्यकता युद्ध के लिए होती थी। किसी पुरुष को सेनापति बनाने के पूर्व उसके अरिष्टों की परीक्षा हुआ करती थी। सप्तर्षि मण्डल या 'ग्रेट बियर' में जो वशिष्ठ नामक तारा है, जिसे अंग्रेजी में 'मिजार' कहते हैं उसी के पास एक छोटी सी तारिका 'अरुन्धती' है। इसे देख न सकने वाले आदमी की मृत्यु छः महिनें के अन्दर हो जाती है। इस प्रकार नाना परीक्षाओं के भीतर से सेनापति को गुजरना पडता था। ज्योतिषी को सूर्यादि ग्रहचार का ज्ञान रखना पडता था। कब कौन सा ग्रह कैसा रंग पकड़ रहा है, उसकी प्रकृति, प्रमाण, वर्ण, किरण, प्रकाश, संस्थान, अस्त, उदय, भिन्नपथ, वक्रता, ग्रहण, युति, आदि के शुभाशुभ फल को बताना पड़ता था। चन्द्रमा की कोई नोक (चन्द्र शृंग) किस तरफ उठी है, मंगल का रंग फीका क्यों हो रहा है, इत्यादि बातें उसे जाननी पड़ती थी। संक्षेप में उसे सर्वज्ञ होना पड़ता था। इस विषय में वराहमिहिर ने कुछ पुराने आचार्यों गर्ग, काश्यप, आदि का भी उल्लेख किया है।

वैदिक काल के पश्चात् भारतीय ज्योतिष में एक नवीन युग का सूत्रपात हुआ इस समय ग्रहों और राशियों को प्रधानता दी गई और सबसे बडी बात यह हुई कि भारतीय

समाज में इस विचार को एक स्थायी स्थान मिल गया कि आकाश में चलने वाले ग्रह पिण्ड मनुष्यों के भाग्य का नियंत्रण कर रहे हैं। जैसा कि पूर्व में कहा है कि इस नये युग ने सर्वप्रथम महत्त्व राशियों और ग्रहों को दिया गया। जिस मार्ग में सूर्य पृथ्वी के चारों और चक्कर लगाया करता है, उसे क्रान्तिवृत्त कहते हैं। उसे बारह भागों में बाँटा गया है। प्रत्येक हिस्से के नक्षत्रों के व्यूह से एक एक राशि बन जाती है। इन राशियों को मेष, वृष, मिथुन, कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धनु, मकर, कुंभ और मीन कहते हैं। राशियों के ये नाम इनके आकार के अनुसार रखे गये हैं। सूर्य और चन्द्र के अतिरिक्त उन दिनों आकाश में चलने वाली अन्य पाँच तराएँ पहचानी गई थी। उन सातों को ग्रह कहते हैं। हमारे वारों के नाम इन्ही ग्रहों के नाम पर रखे गये हैं। ये नाम हैं—सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र और शनि। अन्य दो राहु तथा केतु हैं इन्हें छाया ग्रह कहा जाता है। इन्हें भी ज्योतिर्विदों ने ग्रहों की श्रेणी में रखा है। बस नये युग के ज्योतिष का सर्वस्व इन उन्नीस नामों के भेद उपदेश में है। एक ही नक्षत्र एक ही समय सदा एक ही बिन्दु पर नहीं रहता। जो राशि क्षितिज पर लगती रहती है, उसे 'लग्न' कहते हैं। यह लग्न ही ज्योतिष का सबसे महत्त्वपूर्ण तथ्य है। हमें यह ध्यान में रखना होगा कि प्राचीन या नवीन ज्योतिष दोनों में ही सूर्य की प्रधानता को स्वीकार किया गया है। यद्यपि नव्य मतवाले वैज्ञानिक सूर्य को देवता नहीं मानते। उनकी नज़र में सूर्य भी अन्य तारों की तरह केवल ऊर्जा पिण्ड है। किन्तु भारतीय ज्योतिषी सूर्य को सृष्टि के विस्तारक के रूप में स्वीकार करते हैं। सूर्य सृष्टि में सर्वप्रथम पिण्ड के रूप में उभरा इसलिए वह 'आदित्य' कहलाया है। वह सृष्टि का कारक ग्रह है, इसलिए वह सूर्य है—

"आदित्यः ह्यादिभूतत्वात् प्रसूत्या सूर्य उच्यते।"–सूर्यसिद्धान्त

भारतीय ज्योतिषशास्त्र सूर्य को अपना मूल आधार मानकर स्थित है। सूर्य के बिना ज्योतिषशास्त्र की कोई कल्पना ही नहीं उठती। जिस प्रकार सूर्य सृष्टि का कारक ग्रह है, उसी प्रकार वह समस्त ज्योतिशास्त्रीय चिन्तन का मूलाधार है। सूर्य के जीवित, चमत्कृत और आश्रित लोक को सौर मण्डल कहते हैं। इसी सौर मण्डल का अध्ययन ज्योतिषशास्त्र का प्रयोजन है।

नये युग में फलित ज्योतिष ने जो रूप ग्रहण किया उससे गणितज्योतिष के या ग्रह–नक्षत्रों की विद्या के अध्ययन में महती वृद्धि हुई। इसमें ज्योतिषी संपूर्णतः ग्रहगणित के ज्योतिषी पर निर्भर रहता है। अगर कोई गणित से ग्रहों की स्थिति निकाल

कर रख दे, तो फलित ज्योतिषी का काम बहुत सरल हो जाता है। जहाँ पुराने ज्योतिषी को दिन पक्ष, मास, ऋतु आदि के विपर्यय पर लक्ष्य रखना पडता था, वहाँ आधुनिक ज्योतिषी के लिये केवल पंचाङ्ग का ही शास्त्र पर्याप्त है। पुराने ज्योतिषी को इस बात का लक्ष्य रखना पड़ता था कि अगर गरमी कें मौसम में ठंड या ठंड के मौसम में गरमी पडी तो रोग और राष्ट्र को भय होगा। अगर बरसात के सिवा अन्य ऋतु में लगातार सात दिन तक वर्षा होती रही तो, सम्राट के मरण की आशंका होगी (बृ.सं. ४६,३९-४०) यदि दिन या रात में निर्मेघ आकाश में पूर्व या पश्चिम में इन्द्रधनुष देखा गया, तो अकाल का भय है, इत्यादि। नये ज्योतिषी को यह सब देखने की कतई जरुरत नहीं।

आधुनिक युग में राशि और ग्रहों के ज्योतिष ने बड़ा विशाल रूप धारण किया। केवल जन्मकालीन ग्रहस्थिति से ही फल नहीं कहा जाता। वर्ष पूरा करके दूसरे वर्ष में प्रवेश करने की ग्रहस्थिति से भी फल बताया जा सकता है। मास पूरा करके दूसरे मास में प्रवेश करने के समय की ग्रहस्थिति से भी महीने भर का फल बताया जा सकता है। ज्योतिष के इस विभाग का नाम 'ताजिकशास्त्र' है। ताजिक अरबी लोगों को कहते हैं। इससे आप समझ सकते हैं कि यह शास्त्र मुसलमानों से हिन्दुओं को मिला। ताजिक के सभी पारिभाषिक शब्द अरबी से लिये गये हैं।

मुसलमान ज्योतिषियों ने एक दूसरे विभाग को भी ज्योतिष से परिचित कराया। इसे 'रमलशास्त्र' कहते हैं। रमल अरबी के 'रम्माल' शब्द का संस्कृत रूप है। रमल का सम्बन्ध ग्रहों और राशियों से नहीं है।

यहाँ विशेष ध्यातव्य यह है कि "जैस-जैसे होरास्कन्ध का विकास होता गया, मनुष्य व्यक्तिगत स्तर पर अपनी समस्याओं से निष्कृति पाने के लिये फलित ज्योतिष की अपेक्षा करने लगा। परिणाम यह निकला कि ज्योतिषशास्त्र जातकशास्त्र का पर्याय बनकर रह गया और शेष दो स्कन्ध अन्वेषण और जनसम्पर्क से दूर होने के कारण धूमिल पड़ गये।" भास्कराचार्य (१२ वीं शताब्दी) ने सिद्धान्त स्कन्ध को खूब अभिवृद्ध किया किन्तु उन्हें जातक (होरा) की प्रसिद्धि खटकती रही। फलत: वे होराविद् को ज्योतिषी नहीं मानते। प्रसिद्ध ज्योतिषी म.म. सुधाकर द्विवेदी फलित के प्रति बढ़ती अभिरुचि से चिन्तित हुए है उन्होंने कहा 'आधुनिका: तमात्रैक वेदिन:।' फलित ज्योतिष के प्रति बढ़ती अभिरुचि को देखकर भले ही उक्त दोनों आचार्य चिन्तित हुए हो, परन्तु बढ़ती अभिरुचि का कारण वस्तुत: जीविका और व्यवसाय ही है,

फलत: ज्योतिषशास्त्र की दीर्घ अध्ययन प्रवृत्ति को धक्का पहुँचता है। इतना निश्चित है—(ज्योलिषशास्त्र, पृ. ४-८ डॉ. कामेश्वर उपाध्याय)

ज्योतिःशास्त्र का महत्त्व

यथा शिखा मयूराणां नागानां मणयो यथा।
तद्वेदाङ्गशास्त्राणां ज्योतिषं मूर्धनि स्थितम्।।

शरीर के सर्वश्रेष्ठ अङ्ग मस्तक पर जिस प्रकार मोर की शिखा सुशोभित होती है, या सर्प के फन पर जिस प्रकार उसका मणि शोभित होता है, उसी प्रकार वेदाङ्गों के शिरोभाग में स्थित ज्योतिष सुशोभित होता है।

दैवज्ञ की प्रशंसा– यदि ज्योतिष न हो तो मुहूर्त, तिथि, नक्षत्र ऋतु, अयन का ज्ञान होना संभव नहीं। अत: सब प्रकार से अपने कुशल की इच्छा रखने वाले मनुष्य को दवैज्ञहीन देश में नहीं बसना चाहिए। बृ.सं.अ. २/२५-२७

पञ्चाङ्ग के घटक अङ्ग

दैनंदिन घटित होने वाली घटनाओं का ज्योतिषीय दृष्टिकोण से विवेचन एवं प्रसूत जातक के भविष्य जानने की दृष्टि से एवं जन्म काल की गूढ स्थिति के कारण अच्छे/बुरे परिणाम जानने के उद्देश्य से भारत में अनेक स्थानों से प्रतिवर्ष पञ्चाङ्ग प्रकाशित किये जाते हैं। पञ्चाङ्ग के मुख्यत: पाँच (५) घटक माने गये हैं। (१) तिथि (२) वार (३) नक्षत्र (४) योग और (५) करण। इन पाँच अङ्गों के कारण ही पञ्चाङ्ग नाम पड़ा।

१. तिथि—पञ्चाङ्ग के अवयवों पर विचार करते समय तिथि को शरीर माना गया है। शरीर शुद्ध और बलवान् होने पर ही प्रबलता की कामना की जाती है। तिथि में दोष उत्पन्न हो जाने पर चन्द्र बल, लग्न बल और ग्रह बल काम नहीं देता। मुहूर्त निर्धारण में तिथि की चर्चा सर्वप्रथम की जाती है।

सर्वत्र कार्येषु शुभाशुभेषु पृच्छन्ति लोके तिथिमेव पूर्वम्।।
न क्वापि योगं करणं ग्रहं वा तस्मात् तिथेर्मुख्यतरत्वमुक्तम्।।

उक्त विचार मुहूर्त ग्रन्थों में तिथि के महत्त्व को प्रकट करता है।

डॉ. कामेश्वर उपाध्याय ने अपने ज्योतिषशास्त्र के ग्रन्थ में पञ्चाङ्ग के पाँचों अवयवों को इस प्रकार परिभाषित किया है—"सूर्य चन्द्र का वियोगात्मक मान **'तिथि'** है। सूर्य चन्द्र का संयोगात्मक मान **योग** है। चन्द्रमा का प्रविभागात्मक मान (१३ अंश

२० कला) **नक्षत्र** है। सूर्य का प्रतिदिवसीय उदयात्मक मान **'वार'** है। सूर्य चन्द्रका परस्पर वियोगात्मक अर्ध विभाग मान **'करण'** है। इन्हें ही पञ्चाङ्ग कहते हैं।

इस प्रकार ज्ञात होता है कि सूर्य तथा चन्द्र के बीच १२ अंश की दूरी होने में आवश्यक समय एक तिथि कहलाती है। अमावास्य के दूसरे दिन की प्रतिपदा से शुक्लपक्ष प्रारम्भ होता है। जो पूर्णिमा तक रहता है। इस बीच क्रमशः प्रतिपदा, द्वितीया, तृतीया, चतुर्थी, पञ्चमी, षष्ठी, सप्तमी, अष्टमी, नवमी, दशमी, एकादशी, द्वादशी, त्रयोदशी, चतुर्दशी तिथियाँ आती है। इन्हीं नाम की १४ तिथियाँ पूर्णिमा के दूसरे दिन से प्रारम्भ होकर अमावास्या तक कृष्णपक्ष में आती हैं।

वार

आजकल सम्पूर्ण पृथ्वी पर एक जैसे क्रम में स्थित सात वारों का प्रचलन है। ये हैं—रविवार, सोमवार, मंगलवार, बुधवार, गुरुवार, शुक्रवार, और शनिवार। एक सूर्योदय से दूसरे सूर्योदय के मध्यवर्ती काल का नाम है—वार। भारतीय ज्योतिष में सूर्योदय से ही वार प्रवृत्ति और वर्ष प्रवृत्ति मानी गई है। सूर्य सिद्धान्त वार प्रवृत्ति अर्धरात्रि से मानता है। आज कम्प्यूटर कुण्डलियों में भी वार प्रवृत्ति आधीरात से ही मानी जा रही है। धर्मसिन्धु में दिया गया है कि सूर्योदय से तीन घटी पूर्व अग्रिमदिन वाली प्रातः संध्या होती है। प्रत्येक वार के देवता का भी उल्लेख किया गया है यथा रविवार की देवता है शिव, सोमवार की दुर्गा, मंगलवार की बृहस्पति, बुधवार की विष्णु, गुरुवार की ब्रह्मा, शुक्रवार की लक्ष्मी और शनिवार की देवता है—कुबेर।

प्रत्येक वार की प्रकृति अलग-अलग होने से उनमें किये जाने वाले कार्य भी अलग-अलग कहे गये है—

रविवार के दिन—राज्याभिषेक, उत्सव, वाहनक्रय-विक्रय, औषधी, युद्ध और व्यापारादि से सम्बन्धित कार्य किया जाता है।

सोमवार—के दिन यज्ञ, दुग्ध, विद्यारम्भ, वास्तुकर्म आदि से सम्बन्धित कार्य किये जाते हैं।

मंगलवार के दिन—भेद नीति, चोरी, विष, अग्नि, मारण, युद्ध, कपट, मूँगा, रक्त एवं लाल वस्तु से सम्बन्धित कार्य किये जा सकते हैं।

बुधवार के दिन—विद्या, कला, शिल्प, नौकरी, गणित विद्या, वेदाध्ययन, आदि से सम्बन्धित कार्य करने चाहिये।

गुरुवार के दिन—धार्मिक, यंत्र, विद्या, वस्त्र, इतर शुभ कर्म से सम्बन्धित कार्य करने चाहिये।

शुक्रवार के दिन—स्त्री, संगीत, शय्या, गंध, वस्त्र अलङ्कार आदि से सम्बन्धित कार्य करने चाहिये।

शनिवार के दिन—लोहा, पत्थर, नौकर, झूठ–पाप, निंद्य कर्म, तुलादान शनिदान से सम्बन्धित तेल आदि के कार्य करने चाहिये।

नक्षत्र

ग्रह और तारों के साथ-साथ नक्षत्रों पर भी भारत में प्राचीनकाल से ही अन्वेषण किया जाता रहा है। किन्तु आज तो केवल ग्रहयोग एवं राशियों के आधार पर ही सब कुछ बतलाया जाता है। नक्षत्रों के माध्यम से यदि फलादेश कहा जाए तो निश्चित तौर से फलादेश में सूक्ष्मता बढेगी ?

भारतीय ज्योतिष में नक्षत्रों की संख्या अभिजित् को लेकर २८ मानी गई है। बाद में अभिजित् को उत्तराषाढा और श्रवण में अन्तर्निहित कर दिया गया। प्राचीन ग्रन्थों में कई स्थलों पर नक्षत्रारम्भ कृत्तिका से है जो बाद में व्यवहार में अश्विनी से मान लिया गया। २८ नक्षत्रों के अतिरिक्त भी कुछ नक्षत्रों की चर्चा गणित ग्रन्थों में उपलब्ध है। जैसे—अगस्त्य, व्याध, अग्नि, ब्रह्म, प्रजापति, लब्धक आदि। प्राचीन ज्योतिर्विदों ने अन्वेषण के दौरान यह देखा कि नक्षत्रों के पुंज में अनेक तारे समाहित हैं। कृत्तिका नक्षत्र में छः ताराओं की चर्चा तो महाभारत और पुराणों में भी आयी है। प्रत्येक नक्षत्र में कितने तारे समाहित हैं, और उनके प्रभाव तथा उनके देवता को हमने आगे यथा स्थान उल्लिखित किया है। जैसे—पुष्य, हस्त, रोहिणी, श्रवण, अनुराधा, मूल, रेवती आदि कुछ ऐसे नक्षत्र है, जिनमें जन्म लेने पर जातक तेजस्वी होता ही है। इतिहास में कतिपय घटनाएँ साक्षी हैं।

योग

ज्योतिशास्त्र में तिथि, नक्षत्र की अपेक्षा योगों का समावेश कब हुआ यह कहना जटिलतापूर्ण है। अथर्व ज्योतिष में योगों के नामों का उल्लेख नहीं है। इतना ही ज्ञात होता है कि वार का आठ गुना, करण का सोलह गुना, योग का बत्तीस गुना, तारा का साठ गुना फल होता है। अथर्वज्योतिष का आदेश है कि धर्म, अर्थ, काम के विषय में शुभ नक्षत्र योग में कार्यारम्भ करना चाहिए। पञ्चाङ्ग में दो प्रकार के योग दिये गये हैं (१) विष्कम्भादियोग और (२). आनन्दादियोग।

विष्कम्भ आदि योगों की परिकल्पना गणितीय है, यह सूर्य चन्द्र के स्पष्ट योग पर आश्रित है। जबकि आनन्दादि योग वार और नक्षत्र के संयोग से कल्पित है। वसिष्ठ संहिता में सत्ताईस योगों का उल्लेख है, वे इस प्रकार है विष्कम्भ, प्रीति, आयुष्मान्, सौभाग्य, शोभन, अतिगण्ड, सुकर्त्ता, धृति, शूल, गण्ड, वृद्धि, ध्रुव, व्याघात हर्षण, वज्र, सिद्धियोग, व्यतीपात, वरीयान्, परिघ, शिव, सिद्ध, साध्य, शुभ, शुक्ल, ब्रह्म, ऐन्द्र, और वैधृति। नारद ऋषि के अनुसार योगों के देवता इस प्रकार है—

विष्कम्भ–यम, प्रीति–विष्णु, आयुष्मान्–चन्द्र, सौभाग्य–ब्रह्मा, शोभन–बृहस्पति, अतिगण्ड–चन्द्र, सुकर्मा–इन्द्र, धृति–जल (वरुण) शूल–सर्प, गण्ड–अग्नि, वृद्धि–सूर्य, ध्रुव–भूमि, व्याघात–वायु, हर्षण–भग, वज्र–करण, सिद्धि–गणेश, व्यतीपात–रुद्र, वरीयान–कुबेर, परिध–विश्वकर्मा, शिव–मित्र, सिद्ध–कार्तिकेय, साध्य–सावित्री, शुभ–लक्ष्मी, शुक्ल–पार्वती, ब्रह्म–अश्विनी, ऐन्द्र–पितर, और वैधृति–दिति।

इन योगों में वैधृति और व्यतीपात विवाह आदि शुभकर्मो में त्याज्य है।

एक योग की अवधि ८०० कला निश्चित की गई है।

करण

एक तिथि का आधा भाग एक करण होता है। इस प्रकार से एक तिथि में दो करण होते हैं। लुप्ततिथि में श्राद्ध का निर्णय करने में करण नियामक होता है। विष्टिकरण की लोक में 'भद्रा' के नाम से प्रसिद्ध है। भद्रा में कोई शुभ कार्य नहीं किया जाता। शकुनि, चतुष्पद, नाग, तथा किंस्तुघ्न इन चारों करणों में चन्द्रबल श्रीण रहता है, क्योंकि कृष्णपक्ष की चतुर्दशी से लेकर शुक्लपक्ष की प्रतिपदा तक चन्द्रदर्शन नहीं होता। फलतः इनमें कोई भी शुभ कार्य नहीं किया जाता।

करण तालिका

	शुक्ल पक्ष		कृष्ण पक्ष	
क्र.	प्रथमार्ध	उत्तरार्ध	प्रथमार्ध	उत्तरार्ध
१.	किंस्तुघ्न	बव	बालव	कौलव
२.	वालव	कौलव	तैतिल	गर
३.	तैतिल	गर	वणिज	विष्टि
४.	वणिज	विष्टि	बव	बालव
५.	बव	वालव	कौलव	तैतिल
६.	कौलव	तैतिल	गर	वणिज

७.	गर	वणिज	विष्टि	बव
८.	विष्टि	बव	वालव	कौलव
९.	वालव	कौलव	तैतिल	गर
१०.	तैतिल	गर	परिएरज	विष्टि
११.	वणिज	विष्टि	बव	वालव
१२.	बव	वालव	कौलव	तैतिल
१३.	कौलव	तैतिल	गर	वणिज
१४.	गर	वणिज	विष्टि	शकुनि
१५/३०	विष्टि	बव	चतुष्पद	नाग

करण स्वामी

बव के स्वामी इन्द्र, बालव के ब्रह्मा, कौलव के मित्र (सूर्य) तैतिल के अर्यमा, गर की अधिपति पृथ्वी, वणिज की अधिपति लक्ष्मी, तथा विष्टि के स्वामी यम हैं। शकुनि के कलि, चतुष्पाद के वृषभ, नाग के सर्प, तथा किस्तुघ्न के स्वामी वायु है।

करणों में विहित कर्म

बव में शुभकर्म करने चाहिये, प्रस्थान, प्रवेश, धान्यकर्म आदि। **बालव** में धार्मिककार्य मांगलिक कार्य, उत्सव कार्य आदि। उपनयन, विवाह शुभ होता है। **कौलव** में हाथी, घोड़ा आदि का संग्रह करना चाहिये। **तैतिल** में सौभाग्यवर्धक कर्म करने चाहिये। **गर** में कृषि कर्म, गृह निर्माण आदि। **वणिज** में स्थिर कार्य **विष्टि** में (भद्रा) अशुभ कर्म **शकुनि** में मंत्र कर्म **चतुष्पद** में गो क्रय विक्रय आदि। **नाग** में स्थिर कर्म, हरण, अवरोध कर्म आदि करने चाहिये। **किस्तुघ्न में**–शुभकर्म–मांगलिक कर्म करने चाहिये।

ज्योतिषशास्त्र के घटक

भारतीय ज्योतिष में फलित जानने अथवा कहने अथवा पूर्वानुमान हेतु ज्योतिषी निम्नलिखित घटकों का उपयोग करता है। घटक ये हैं—(१) सूर्य (२) सौर मण्डल (३) पृथ्वी का उपग्रह चन्द्रमा (४) छायाग्रह राहू–केतु (५) राशि समूह (६) नक्षत्र समूह।

(१) सूर्य–यह सौर मण्डल का नाभिकीय ग्रह है। यह समस्त ग्रहों का राजा है। इसके आसपास क्रांतिवृत्त में समस्त ग्रह परिक्रमा करते हैं। यह आकार में सबसे बड़ा

तथा प्रकाशमान ग्रह है। इसकी आकर्षण शक्ति के कारण कोई भी ग्रह अपनी कक्षा से बाहर नहीं जाता। वैज्ञानिक मान्यतानुसार सूर्य ग्रह में हीलियम तथा हायड्रोजन गैस जलती बनती रहती है। सूर्य का व्यास लगभग १४ लाख किलोमीटर आंका गया है। इसका बाहरी तापमान लगभग ६००० डिग्री सेंटी ग्रेड तथा भीतर का १५० लाख डिग्री सेंटीग्रेड आंका गया है। भारतीय ज्योतिष सूर्य को अपना मूल आधार मानता है। सूर्य के बिना ज्योतिषशास्त्र की कल्पना नहीं की जा सकती। वस्तुतः स्थूल, सूक्ष्म और कारण सृष्टि का कर्ता सूर्य ही है। वेद के अनुसार संपूर्ण सृष्टि का आत्मा सूर्य ही है। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में जितने भी सौरमण्डल हैं उनमें सूर्य की उत्पत्ति सर्वप्रथम हुई। सर्वप्रथम उत्पन्न होने के कारण यह 'आदित्य' है तथा इसमें प्रसूति उत्पादक गुण होने से यह 'सूर्य' तथा 'सविता' है। सूर्य से ही हम पृथ्वीवासियों को प्रकाश तथा जीवन का आधार प्राप्त होता है। इसी के कारण वर्षा होती है।

सौरमण्डलग्रह में—सूर्य, मंगल, पृथ्वी, बुध, शुक्र, गुरु शनि, हर्षल, नेपचून तथा प्लूटों ये ग्रह हैं, राहु केतु छाया ग्रह है। चन्द्रमा ग्रह नहीं होकर पृथ्वी का उपग्रह है। ज्योतिष के लिये पृथ्वी को नाभिकेन्द्र तथा सूर्य समेत अन्य सभी को उसके इर्द–गिर्द परिक्रमा करने वाले ग्रह माने जाते हैं। यद्यपि सभी ग्रह क्रान्तिवृत्त पर सूर्य से भिन्न–भिन्न दूरी के अर्धव्यास पर उसकी परिक्रमा करते हैं, फिर भी ज्योतिष हेतु यह माना गया है कि यह सभी ग्रह पृथ्वी की परिक्रमा करते हैं, जिसमें सूर्य भी शामिल है। अर्थात् सूर्य सहित सभी ग्रह अण्डाकार मार्ग पर पृथ्वी की परिक्रमा करते हैं। चन्द्रमा को भी ग्रह का दर्जा दिया गया है।

चन्द्रमा

यह पृथ्वी का उपग्रह है। इसका व्यास ३४७६ कि.मी. होकर पृथ्वी से यह ३.८४ लाख कि.मी. दूर है। यह भी अपनी धुरी पर उतनी ही गति से घूमता है, जितनी पृथ्वी। पृथ्वी की परिक्रमा करने हेतु इसे करीब २९ दिन लगते हैं।

राशि

इन की संख्या बारह है। आकाश में असंख्य तारागण हैं। इनमें से क्रान्तिवृत्त की परिधि पर कुछ–कुछ दूरी पर तारों के समूह दिखाई देते हैं। हमारे ऋषियों ने ऐसे बारह समूह निश्चित किये हैं जो वृत्त का प्रायः परिधि अंश घेरते हैं। इन्हें ही राशियाँ कहा गया है। कोई राशि बड़ी और कोई छोटी होती है। इन राशियों की आकृतियाँ

पृथ्वीवासी कुछ प्राणियों से मिलती है, एवं उन्हीं के नाम पर इनका भी नामकरण किया गया है। जैसे मेष राशि एक बडी भेड का आकार लिये हुए है। वृषभ राशि का आकार बैल सदृश है। कन्याराशी का लड़की जैसा, मकर राशि मगर का आकार लिये हुए है। राशियों की संक्षिप्त जानकारी आगे दी गई है।

नक्षत्र

इन की कुल संख्या २७ है। इनकी भी जानकारी आगे दी गई है।

मानवजीवन में ज्योतिषशास्त्र की उपयोगिता

मानव का जीवन संघर्ष से ही प्रारम्भ होता है और अन्त भी संघर्ष में। वह सदा चिन्ताग्रस्त रहता है। बाल्यकाल में पढ़ाई और शिक्षा की, यौवनकाल प्रारम्भ होने पर आजीविका की, अपने परिवार के पालन पोषण की, वृद्धावस्था में स्वयं के अस्तित्व की चिन्ता उसे घेरे रहती है। ऐसे संघर्षमय जीवनकाल में व्यक्ति सदा अपने कार्यों में सफल होने की इच्छा करता है, किन्तु सदा ऐसा नहीं होने पाता। परिणामतः वह निराश हो जाता है। ऐसे समय में यदि उसे योग्य मार्गदर्शन मिल जाता है तो वह किये कार्यों में सफलता प्राप्त कर लेता है और आगे के कार्यों के लिए प्रोत्साहित हो जाता है। उसके विपरीत योग्य मार्गदर्शन के अभाव में वह निरुत्साहित हो जाता है। ऐसे समय में ज्योतिषशास्त्र उस व्यक्ति के लिए प्रकाशस्तम्भ का काम करता है और वह निराशा के गाढ अन्धकार में अपना योग्य मार्ग पा लेता है। वस्तुतः ज्योतिषशास्त्र की मुख्य उपयोगिता तब ज्ञात होती है, जब व्यक्ति को आनेवाले समय की अनुकूलता/प्रतिकूलता का ज्ञान पूर्व से ही हो जाता है। परिणाम स्वरूप वह व्यर्थ की मानसिक अशान्ति, समय के अपव्यय और आर्थिकहानि से बच जाता है और अनूकूल समय का ज्ञान होने घर उसे अपने लक्ष्य की प्राप्ति थोड़े श्रम में ही हो जाती है।

ज्योतिषशास्त्र की तीन शाखाएँ

१. सिद्धान्त, (२) संहिता और (३) होरा। इन तीन विभागों से युक्त ज्योतिषशास्त्र वेद के दीप्तिमान् नेत्र है। ज्योतिषशास्त्र के अनेक विषयों को इन तीन शाखाओं में सम्मिलित किया गया है। **सिद्धान्त** भाग का ही नाम 'गणितस्कन्ध' भी है। इसका मुख्य विषय ग्रहगणित है अर्थात् ग्रहों की स्पष्ट एवं मध्यम गति, संवत्सर, अयन, मास इत्यादि कालनिर्णय, ग्रहण, पात, इत्यादि से सम्बन्धित गणितीय विचार इसमें होता है। **'संहिता'** इस दूसरे स्कन्ध में ग्रहों का भ्रमण, धूमकेतु, उल्कापात, ग्रहण आदि से जागतिक शुभाशुभ फलों का विचार एवं मुहूर्त्त विचार आदि। **होरा** नामक तीसरे

स्कन्ध में मनुष्य की जन्म कालीन स्थिति पर से उसके जीवन के सुख दुःख का विचार होता है। इसे 'जातकस्कन्ध' भी कहते है।

कालगणना के ९ मान

कालगणना के विषय में नौ मान प्रसिद्ध हैं— १. ब्राह्म, २. दिव्य, ३. पित्र्य, ४. प्राजापत्य, ५. बार्हस्पत्य, ६. सौर, ७. सावन, ८. चान्द्र और ९. आर्क्ष।

१. ब्राह्म अर्थात् ब्रह्मा की आयु को आधार मानकर की गई गणना।
२. दिव्य अर्थात देवों के वर्षादिमान से कालगणना (एक सौरवर्ष=देवों का एक अहोरात्र, ३६० अहोरात्र=१ दिव्य वर्ष)।
३. पित्र्य अर्थात् एकचान्द्र मास=पितरों का एक अहोरात्र, इस मान के अनुसार कालगणना।
४. प्राजापत्य– मन्वन्तरों की गणना के आधार पर सम्पन्न काल गणना।
५. बार्हस्पत्य– गुरूग्रह के राशिसंक्रमणकाल को आधार मानकर सम्पन्न कालगणना।
६. सौर– सूर्य के परिभ्रमण कालावधि को आधार मानकर सम्पन्न कालगणना।
७. सावन– एक सूर्योदय से द्वितीय सूर्योदय तक एक दिवस, इस मान के आधार पर सम्पन्न होने वाली कालगणना।
८. चान्द्र–अर्थात् चन्द्र के तिथ्यादिकाल को आधार मानकर सम्पन्न कालगणना।
९. आर्क्ष-अर्थात् नक्षत्र-तारकों के दैनिक उदयकाल के आधार पर सम्पन्न कालपरिमापन।

प्रकृत में ध्यातव्य है कि वर्ष, अयन, ऋतु, युग इत्यादि की गणना सौरमानानुसार होती है। चैत्रादिमास और प्रतिपदादि तिथियों की गणना चान्द्रमान के आधार पर, सांतपनादि कृच्छ्र, सूतक, वार इत्यादि की गणना सावन मान और घटिकादि की गणना नाक्षत्रमानानुसार होती है।

युगों का मान

कृत, त्रेता, द्वापर और कलि ये चार युग है। प्रत्येक युग के अधोलिखित मान हैं—

१. कृतयुग-१७२८०० सौरवर्ष २. त्रेतायुग– १२९६००० सौरवर्ष
३. द्वापर युग– ८६४००० सौरवर्ष ३. कलियुग– ४३२००० सौरवर्ष

प्रत्येक युग के काल में प्रारम्भ के द्वादशांश भाग आरम्भसन्धि और उत्तरार्द्ध का द्वादशांश विरामसंधि कहलाते हैं। चार युगों के वर्षों की संख्या ४३२०००० होती है।

इसे महायुग कहते हैं। ज्योतिषशास्त्र में तो इस चारयुगों को युगांघ्रि (युग-चरण) कहा है।

चार प्रकार के दिवस

तिथिमान को चान्द्र दिवस, सूर्योदय से सूर्योदय तक के कालमान को सावनदिवस, सूर्य को १ अंश (क्रांतिवृत्त को ३६० वां भाग) भोगने में जो काल अपेक्षित होता है उसे सौरदिवस और एक नक्षत्रविभाग से चन्द्र को संचार करने में जितना काल लगता है उसे नाक्षत्र दिवस कहते हैं।

चार प्रकार के दिवस– ३० सावन दिवस=१ सावन मास, सम्पूर्ण नक्षत्र चक्र से चन्द्र का १ परिभ्रमण=१ नक्षत्र मास, इसका मध्यममान २७ दिवस, १९ घटिका एवं १७.९७९६ पल होता है। एक अमावस्या से दूसरी अमावस्या तक चान्द्रमास होता है, इसका मध्यममान २९.५३०५९ दिवस है। एक राशि में सूर्य परिभ्रमण को लगनेवाला काल सौरमास कहलाता है।

तीनप्रकार के वर्ष

१२ चान्द्रमास=१ चान्द्रवर्ष= ३५४ दिवस/३८४ दिवस (अधिकमास)

१२ सावनमास=१ सावन वर्ष=३६० दिवस

१२ सौरमास=१ सौरवर्ष=३६५ दिवस, १५ घटिका, ३१ पल, ३१ विपल

साठ संवत्सर

१. प्रभव, २. विभव, ३. शुक्ल, ४. प्रमोद, ५. प्रजापति, ६. अंगिरा, ७. श्रीमुख, ८. भाव, ९. युव, १०. धातृ, ११. ईश्वर, १२. बहुधान्य, १३. प्रमाथी, १४. विक्रम, १५. वृष, १६. चित्रभानु, १७. सुभानु, १८. तारण, १९. पार्थिव, २०. व्यय, २१. सर्वजित्, २२. सर्वधारी, २३. विरोधी, २४. विकृति, २५. खर, २६. नन्दन, २७. विजय, २८. जय, २९. मन्मथ, ३०. दुर्मुख, ३१. हेमलम्बी, ३२. विलंबी, ३३. विकारी, ३४. शार्वरी, ३५. प्लव, ३६. शुभकृत्, ३७. शोभन, ३८. क्रोधी, ३९. विश्वावसु, ४०. पराभव, ४१. प्लवंग, ४२. कीलक, ४३. सौम्य, ४४. साधारण, ४५. विरोधकृत्, ४६. परिधावी, ४७. प्रमादी, ४८. आनन्द, ४९. राक्षस, ५०. अनल, ५१. पिंगल, ५२. कालयुक्त, ५३. सिद्धार्थी, ५४. रौद्र, ५५. दुर्मति, ५६. दुदुंभि, ५७. रुधिरोद्गारी, ५८. रक्ताक्षी, ५९. क्रोधन, ६०. क्षय।

उपर्युक्त संवत्सरों में सामान्यत: भाव, धातृ, प्रमाथी, सुभानु, व्यय, विकृति, दुर्मुख, हेमलम्बी, विलंबी, विकारी, प्लव, क्रोधी, विश्वावसु, पराभव, प्लवंग, कीलक विरोधकृत्, परिधावी, प्रमादी, राक्षस, अनल, पिंगल, कालयुक्त, रौद्र, दुर्मति, रुधिरोद्गारी, रक्ताक्षी क्रोधन और क्षय संवत्सर अशुभ होते हैं।

अयन

अयन दो है– १. उत्तरायण और २. दक्षिणायन। शिशिर, वसन्त और ग्रीष्म इन ऋतुओं में अर्थात् मकर संक्रान्ति के प्रारम्भ से कर्क सक्रान्ति के आरम्भ तक सूर्य की गति उत्तर दिशा की ओर होती है, अत: इस काल को उत्तरायण कहा जाता है। वर्षाऋतु, शरद ऋतु और हेमन्त ऋतु इन तीन ऋतुओं में अर्थात् कर्कसंक्रान्ति के प्रारम्भ से मकरसंक्रान्ति के प्रारम्भ तक सूर्य की गति दक्षिण दिशा की ओर होती है, अत: इस काल को दक्षिणायन कहा जाता है। संक्षेप में छ: मास उत्तरायण के और छ: मास दक्षिणायन के होते हैं।

ऋतु और उनका काल

ऋतुओं का सम्बन्ध सूर्य से है। जैसे-जैसे सूर्य घूमता है वैसे-वैसे ऋतु बदलते हैं। ये ऋतु छ: है– १. वसन्त, २. ग्रीष्म,, ३. वर्षा, ४. शरत्, ५. हेमन्त, ६. शिशिर। दो महीनों का एक ऋतु होता है। चैत्र-वैशाख मास में **वसन्त ऋतु**, ज्येष्ठ–आषाढ़ मास में **ग्रीष्म ऋतु**, श्रावण-भाद्रपद मास में **वर्षा ऋतु**, अश्विन-कार्तिक मास में **शरद ऋतु**, मार्गशीर्ष-पौष मास में **हेमंत ऋतु** और माघ-फाल्गुन मास में **शिशिर ऋतु** होता है। इसी प्रकार मीन और मेष राशि में सूर्य होने पर वसन्तु ऋतु। वृषभ-मिथुन ग्रीष्म ऋतु, कर्क और सिंह वर्षा ऋतु, कन्या तुला शरद् ऋतु, वृश्चिक धनु हेमन्त ऋतु और मकर कुम्भ शिशिर ऋतु इस प्रकार सूर्य दो राशियों में घूमता हुआ छ: ऋतुओं को पूर्ण करता है।

बारह मास

१. चैत्र (मधु), २. वैशाख (माधव), ३. ज्येष्ठ (शुक्र), ४. आषाढ (शुचि), ५. श्रावण (नभ), ६. भाद्रपद (नभस्य), ७. आश्विन् (इष), ८. कार्तिक (ऊर्ज), ९. मार्गशीर्ष (सह), १०. पौष (सहस्य), ११. माघ (तप), १२. फाल्गुन (तपस्य), ये बारह चान्द्रमास हैं। एक अमावस्या से द्वितीय अमावस्या तक एक चान्द्रमास होता है। चान्द्रमास और सौरमास का सर्वदा मेल रहना आवश्यक होता

है। चान्द्रमास को निश्चित करने हेतु अधोलिखित प्रक्रिया अपनाई जाती है—

मीन राशि में सूर्य होने पर जिस चान्द्रमास का प्रारम्भ होता है उसे चैत्र कहते हैं। मेष राशि में सूर्य होने पर जिस चान्द्रमास का प्रारम्भ होता है उसे वैशाख कहते हैं। इस प्रकार सूर्यराशि के अनुसार तत्तत् चान्द्रमासों के नाम निश्चित किये जाते हैं।

बारह राशियाँ

१. मेष, २. वृषभ, ३. मिथुन, ४. कर्क, ५. सिंह, ६. कन्या, ७. तुला, ८. वृश्चिक, ९. धनु, १०. मकर, ११. कुम्भ, १२. मीन इन बारह राशियों से नक्षत्रचक्र पूर्ण होता है।

अधिकमास और क्षयमास

जिस चान्द्रमास में सूर्य का राशिसंक्रमण नहीं होता, वह स्पष्टरूप से अधिकमास होता है और एक चान्द्रमास में सूर्य द्वारा दो राशियों का संक्रमण होने पर क्षयमास होता है। क्षयमास के निर्धारण में विशेष सावधानी आवश्यक होती है— जैसे किसी वर्ष वृश्चिक राशि में सूर्य होने पर मार्गशीर्ष नामक चान्द्रमास प्रारम्भ हुआ और तत्पश्चात् उसी मास में धनुसंक्रान्ति और मकरसंक्रान्ति हुई और तब जाकर दुसरा चान्द्रमास प्रारम्भ हुआ। अर्थात् मकर राशि में सूर्य के होने पर प्रकृत चान्द्रमास 'माघ' होगा, क्योंकि धनुराशि में सूर्य के होने पर 'पौष' मास होता है किन्तु धनुराशि में सूर्य संक्रमणावसर पर चान्द्रमास प्रारम्भ ही नहीं हुआ है। अत; पौषमास का क्षय हुआ है ऐसा प्रतीत होता है। किन्तु ऐसी परिस्थिति में 'पौषमास' का क्षय हुआ ऐसा न मानते हुए 'मार्गशीर्ष' मास को ही क्षयमास कहा जाता है। क्योंकि 'मार्गशीर्ष' मास में ही दो सूर्यसंक्रान्तियों का संक्रमण हुआ है इस हेतु 'द्विसंक्रान्तिमासः क्षयाख्य:' इस नियम के अनुसार 'मार्गशीर्ष' मास को ही क्षयमास मानना शास्त्रशुद्ध है। सामान्यत: क्षयमास, कार्तिक, मार्गशीर्ष अथवा पौष मास में ही सम्भव होता है। और जब क्षयमास आता है तब एक वर्ष में उस क्षयमास के पूर्व एक और पश्चात् एक, इस प्रकार दो अधिकमास होते हैं।

संक्रान्ति

ग्रह का एक राशि से दूसरे राशि में गमन का नाम है- संक्रमण, सूर्य का एक राशि से दूसरी राशि में गमन। वह विशेष दिन जिस दिन सूर्य उत्तरायण होता है, इसीदिन सूर्य धनुराशि से मकरराशि में जाता है। सूर्य एक वर्ष में १२ राशियों पर संचार

करता है। इस प्रकार एक वर्ष में १२ संक्रान्तियाँ होती है। १. मेष, २. वृषभ, ३. मिथुन, ४. कर्क, ५. सिंह, ६. कन्या, ७. तुला, ८. वृश्चिक, ९. धनु, १०. मकर, ११. कुंभ और १२. मीन।

विशेष– वस्तुत: सूर्य नहीं घूमता, पृथ्वी ही सूर्य के चारों ओर घूमती है। यहाँ केवल समझने के लिए सूर्य जाता है कहा है।

पक्षविचार

एक महिने में तीस तिथियाँ होती है, यह सर्व विदित है। पन्द्रह तिथियों का एक पक्ष होता है और दूसरा पन्द्रह तिथियों का एक पक्ष होता है। इस प्रकार एक महीने में दो पक्ष होते है– १. शुक्लपक्ष, इसमें चांदनी होती है और दूसरा कृष्णपक्ष, इसमें चांदनी नहीं होती। शुक्लपक्ष प्रतिपदा से प्रारम्भ होकर पूर्णिमा तक, यह उजियाले पाख की अन्तिम तिथि होती है, इस रात चन्द्रमा का मण्डल पूर्ण दिखाई पडता है। कृष्णपक्ष शुक्लपक्ष की पूर्णिमा के बादवाली प्रतिपदा से प्रारम्भ होकर अमावस्या तक रहता है।

तिथियाँ

तिथियाँ तीस हैं– १. प्रतिपदा (पडवा), २. द्वितीया, ३. तृतीया, ४. चतुर्थी, ५. पञ्चमी, ६. षष्ठी, ७. सप्तमी, ८. अष्टमी, ९. नवमी, १०. दशमी, ११. एकादशी, १२. द्वादशी, १३. त्रयोदशी, १४. चतुर्दशी और १५. पूर्णिमा और पूर्णिमा के बाद पुन: ये ही तिथियाँ होती है जो अमावास्या ३० को पूर्ण होती हैं। अमावस्या की तिथि में सूर्य ओर चन्द्र का संगम होता है। 'अमा' शब्द का अर्थ है, एकत्र, और 'वस' का अर्थ है रहना, इस प्रकार अमावस्या तिथि में दोनों ग्रह सूर्यचन्द्र एकत्र रहते हैं, किन्तु दोनों ही चलते रहते हैं। चन्द्र की चाल तेज होती है इसलिए वह सूर्य से आगे रहता है और १२ अंश आगे जाने पर तिथि होती है।

तिथियों की संज्ञा

तिथियों की पाँच संज्ञाएँ है– १. नन्दा, २. भद्रा, ३. जया, ४. रिक्ता और पूर्णा, ये ही प्रतिपदा से क्रमश: बार-बार आती हैं। उदाहरणार्थ प्रतिपदा, षष्ठी, एकादशी इनकी संज्ञा नन्दा है, द्वितीया, सप्तमी, द्वादशी इनकी संज्ञा भद्रा है। तृतीया, अष्टमी, त्रयोदशी इन की संज्ञा जया है, चतुर्थी, नवमी, चतुर्दशी इनकी संज्ञा रिक्ता है, और पंचमी, दशमी और पूर्णिमा इनकी संज्ञा है, पूर्णा। शुक्लपक्ष की प्रतिपदा से पंचमी तक पाँच तिथियाँ कनिष्ठ होती हैं, षष्ठी से दशमी तक पाँच तिथियाँ मध्यम होती है, और

शुक्ल एकादशी से पूर्णिमा तक पाँच तिथियाँ उत्तम होती है। इसी प्रकार कृष्णपक्ष की प्रथम पाँच तिथियाँ उत्तम, षष्ठी से पाँच तिथियाँ मध्यम, और एकादशी से पाँच तिथियाँ कनिष्ठ होती है।

शुभाशुभ तिथि

उपर्युक्त तिथियों के अतिरिक्त शुक्ल और कृष्णपक्ष की द्वितीया, तृतीया, पञ्चमी, सप्तमी, दशमी, एकादशी, प्रतिपदा (यह केवल कृष्णपक्ष की) त्रयोदशी (केवल शुक्ल पक्ष की) और पूर्णिमा ये तिथियाँ सामान्यत: सभी शुभ कार्यों के लिए कहीं गई हैं। शेष तिथियाँ चतुर्थी, षष्ठी, अष्टमी, नवमी, द्वादशी, चतुर्दशी और अमावस्या अशुभ कही गई हैं। इन्हें पक्षरन्ध्र तिथियाँ कहा जाता है। ये तिथियाँ सभी शुभ कार्यों के लिए त्याज्य कही गई हैं। कृष्णपक्षी की त्रयोदशी, चतुर्दशी, अमावस्या और शुक्ल प्रतिपदा वर्ज्य हैं।

नक्षत्र

'न क्षरति तत् नक्षत्रम्'– नक्षत्रों की संख्या २७ है। उनके नाम इस प्रकार हैं– १. अश्विनी, २. भरणी, ३. कृत्तिका, ४. रोहिणी, ५. मृगशीर्ष, ६. आर्द्रा, ७. पुनर्वसु, ८. पुष्य, ९. आश्लेषा, १०. मघा, ११. पूर्वा या पूर्वा फाल्गुनी, १२. उत्तरा या उत्तराफाल्गुनी, १३. हस्त, १४. चित्रा, १५. स्वाति, १६. विशाखा, १७. अनुराधा, १८. ज्येष्ठा, १९. मूल, २०. पूर्वाषाढा, २१. उत्तराषाढा, २२. श्रवण, २३. धनिष्ठा, २४. शततारका, २५. पूर्वाभाद्रपदा, २६. उत्तराभाद्रपदा, २७. रेवती .

विशेष– तीनों पूर्वा का अर्थ है पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढा और पूर्वाभाद्रपदा। इसी प्रकार तीनों उत्तरा का अर्थ है उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा और उत्तराभाद्रपदा।

शुभ नक्षत्र

मघा, मृग, हस्त, स्वाति, मूल, अनुराधा, रोहिणी रेवती, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, और उत्तराभाद्रपदा ये ग्यारह नक्षत्र, शुभकार्य आरम्भ करने के लिए, विवाह कन्या वरण करने के लिए, खेत मे बोबनी के लिए, वस्तुओं का संग्रह करने के लिये और गृहप्रवेश आदि के लिए शुभ माने गये हैं। अश्विनि, पुष्य, चित्रा, धनिष्ठा, श्रवण, और पुनर्वसु, ये छः नक्षत्र भी शुभ हैं, किन्तु विवाह के लिए नहीं। शेष तीनों पूर्वा, ज्येष्ठ आर्द्रा और शततारका, ये नक्षत्र मध्यम हैं और भरणि, कृत्तिका, आश्लेषा

ये तीन नक्षत्र अत्युग्र हैं, अत: शुभ कार्य के लिए ग्रहण नहीं करना चाहिए।

नक्षत्रों के प्रकार (गुण धर्म)

स्थिर नक्षत्र– रोहिणि, और तीनों उत्तरा अर्थात् उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा और उत्तराभाद्रपदा ये चार नक्षत्र शुभ कार्य के लिए, जैसे देवालय बनाना, मकान बनाना, राज्याभिषेक, बाग लगाना आदि के लिए उपयुक्त हैं। कोई वस्तु दीर्घकाल तक बनी रहने के लिए इन्हें ग्रहण करना चाहिए।

चरनक्षत्र– श्रवण, धनिष्ठा, शततारका, स्वाति और पुनर्वसु, ये नक्षत्र घूमने के लिए, काम करने के लिए, घोडा, हाथी आदि पर बैठने के लिए उपयुक्त हैं।

मृदु– मृग, चित्रा, अनुराधा, और रेवती, इन नक्षत्रों पर वस्त्रालङ्कार, गायन, क्रीडा आदि कार्य करने चाहिए।

लघु या क्षिप्र नक्षत्र– पुष्य, अश्विनि, अभिजित, हस्त, इन नक्षत्रों पर लेन-देन करना चाहिए। मंत्र तंत्र सीखना, चित्र निकालना आदि का काम करना चाहिए।

क्रूर या उग्र नक्षत्र– तीनों पूर्वानक्षत्र, भरणी और मघा इन नक्षत्रों पर क्रूरकार्य करना चाहिए।

तीक्ष्ण नक्षत्र– ज्येष्ठा, आर्द्रा, आश्लेषा, और मूल नक्षत्र, इन पर जारण-मारण कलहादि कार्य करने चाहिए।

मिश्र या साधारण नक्षत्र– विशाखा, और कृत्तिका इन पर वृषोत्सर्ग, अग्निहोत्रादि कार्य सम्पादित करने चाहिए।

ऊर्ध्वमुखनक्षत्र– तीनों उत्तरा, रोहिणी, पुष्य, आर्द्रा, श्रवण, धनिष्ठा और शततारका।

अधोमुखनक्षत्र– मूल, आश्लेषा, मघा, तीनों पूर्वा, विशाखा, भरणि, और कृत्तिका।

तिर्यङ्मुखनक्षत्र– पुनर्वसु, अनुराधा, ज्येष्ठा, हस्त, चित्रा, स्वाति, मृग, रेवती और अश्विनि। ऊर्ध्वनक्षत्रों पर मकान आदि बनाना, अधोमुख पर कूप खोदना आदि तथा तिर्यङ्मुख पर गाडी आदि खरीदना चाहिए। उपर्युक्त नक्षत्रों के अन्य नाम भी हैं।

अन्धनक्षत्र– रोहिणी, पुष्य, उत्तरा, विशाखा, पूर्वाषाढा, धनिष्ठा, रेवती।

मन्दनक्षत्र– मृग, आश्लेषा, हस्त, अनुराधा, उत्तराषाढा, शततारका, अश्विनि।

मध्यलोचननक्षत्र– आर्द्रा, मघा, चित्रा, ज्येष्ठा, अभिजित्, पूर्वाभाद्रपदा, भरणी ।

सुलोचन नक्षत्र– पुनर्वसु, पूर्वा, स्वाति, मूल, श्रवण, उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपदा और कृत्तिका ।

पुष्य नक्षत्र की विशेषता

सिंहो यथा सर्वचतुष्पदानां तथैव पुष्यो बलवानुडूनाम् ।
चन्द्रे विरुद्धेऽप्यथ गोचरेऽपि सिध्यन्ति कार्याणि कृतानि पुष्ये ।

जिस प्रकार सभी जानवरों में सिंह बलवान् और श्रेष्ठ है उसी प्रकार सभी नक्षत्रों में पुष्य नक्षत्र श्रेष्ठ है । चौथा, आठवाँ या बारहवाँ चन्द्र अपनी राशि के लिए अनिष्ट होने पर भी पुष्य नक्षत्र को ग्रहण करना चाहिए । इससे कार्य सिद्धि निःसन्देह होती है । **किन्तु–विहाय पाणिग्रहमेव पुष्यः–** इन वचन के अनुसार पुष्यनक्षत्र विवाह के लिए अनिष्ट माना गया है ?

सूर्य नक्षत्र

पञ्चाङ्ग में प्रत्येक तिथि के सामने जो नक्षत्र लिखे रहते हैं, वे चन्द्र नक्षत्र होते हैं, अर्थात् उस तिथि या दिवस पर चन्द्र होता है । इन्हीं नक्षत्रों की तरह सूर्य नक्षत्र भी होते हैं । चन्द्रनक्षत्र और सूर्य नक्षत्रों के नाम एक ही होते हैं, कोई भिन्नता नहीं होती । सभी नक्षत्रों पर सूर्य एक वर्ष में एक बार ही भ्रमण करता है । एक नक्षत्र पर भ्रमण करने के लिए सूर्य को १३ या १४ दिन लगते है । अर्थात् १३ या १४ दिनों में सूर्य नक्षत्र बदलता है । इन्हें 'महानक्षत्र' भी कहा जाता है । पञ्चाङ्ग में 'भरण्यर्कः' 'कृत्तिकार्कः' 'मृगार्कः' 'पुष्यार्कः' 'उत्तरार्कः' ऐसा लिखा रहता है । ये ही सूर्य नक्षत्र होते हैं । आर्द्रा नक्षत्र से चित्रा नक्षत्र तक, नव नक्षत्र, या मृगनक्षत्र से हस्त नक्षत्र तक नव नक्षत्र होते हैं । इनमें वर्षा होती है ।

नक्षत्रों की संज्ञा, उनके स्वामी और स्वरूप

क्र.	नक्षत्र नाम	शुभ अशुभ	स्वामी का नाम	मुख संज्ञा	रुप संज्ञा	लोचन संज्ञा	आकृति	तारों की संख्या
१.	अश्विनी	शुभ	अश्विनीकुमार	तिर्यङ्मुख	लघु, क्षिप्र	मंदलो.	अश्वमुख	३
२.	भरणि	नाशक अशुभ	यमराज	अधो मुख	उग्र, क्रूर	मध्यलो.	योनिरूप	३

३.	कृत्तिका	कार्यनाश	अग्नि	अधोमुख	मिश्र, सा.	सुलोचन	वस्तरारुप	६
४.	रोहिणी	सिद्धि	ब्रह्मा	ऊर्ध्वमुख	ध्रुव, स्थिर	अंधलो.	रथाकृति	५
५.	मृगशीर्ष	शुभ	चन्द्र	तिर्यङ्मुख	मृदु, मैत्र	मन्दलो.	हरिण्यकृति	
६.	आर्द्रा	शुभ	शिव	ऊर्ध्वमुख	तीक्ष्ण, दारुण	मध्य	मणिसम	३
७.	पुनर्वसु	मध्यम	देवमाता	तिर्यङ्मुख	चर,चल	सुलोचन	गृहाकार	४
८.	पुष्य	शुभ	गुरु	ऊर्ध्वमुख	लघु क्षिप्र.	अंधलो.	शरासम	३
९.	आश्लेषा	शोक	सर्प	अधोमुख	तीक्ष्ण	मंदलो.	चक्राकार	५
१०.	मघा	नाशक	पितर	अधोमुख	उग्र, क्रूर	मध्यलो.	शाला सम	५
११.	पूर्वा	मृत्युप्रद	भग	अधोमुख	उग्र, क्रूर	सुलोचन	शय्यासम	२
१२.	उत्तरा	विद्या	अर्यमा	ऊर्ध्वमुख	ध्रुव स्थिर	अंधलो.	पर्यंकासम	२
१३.	हस्त	लक्ष्मी	रवि	तिर्यङ्मुख	लघु, क्षिप्र	मंदलो.	हस्तासम	५
१४.	चित्रा	शुभदा.	त्वष्टा	तिर्यङ्मुख	मृदु., चैत्र	मध्यलो.	मौक्तिक	१
१५.	स्वाति	अशुभ	वायु	तिर्यङ्मुख	चर चल	सुलोचन	पोवळया	१
१६.	विशाखा	अशुभ	इंद्राग्नि	अधोमुख	मिश्र, सा.	अंधलो.	तोरणाकार	४
१७.	अनुराधा	सिद्धि	मित्र	तिर्यङ्मुख	मृदु, मैत्र	मंदलो.	राशिसम	४
१८.	ज्येष्ठा	क्षय	इन्द्र	तिर्यङ्मुख	तीक्ष्ण	मध्यलो.	कुंडलाकृति	३
१९.	मूल	नाशप्रद	राक्षस	अधोमुख	तीक्ष्ण	सुलोचन	सिंहपुच्छ	११
२०.	पू.षाढा	अर्थना.	उदक	अधोमुख	उग्र, क्रूर	अंधलो.	हस्तिदन्त	४
२१.	उ.षाढा	बुद्धिदा.	विश्वेदेव	ऊर्ध्वमुख	स्थिर, ध्रुव	मंदलो.	शय्यासम	३
२२.	अभिजित	बुद्धिदा	ब्रह्मा	सर्वतोमुख	लघु, क्षिप्र	मध्यलो.	लोमडी	३
२३.	श्रवण	सुखप्रद	विष्णु	ऊर्ध्वमुख	चर, चल	सुलोचन	वामनसम	३
२४.	धनिष्ठा	शुभदा.	वसु	ऊर्ध्वमुख	चर, चल	अंधलो.	ढोलकसम	४
२५.	शततारका	कल्याणी	वरुण	ऊर्ध्वमुख	चर, चल	मंदलो.	वर्तुलाकार	१००
२६.	पू.भाद्र.	मृत्युदा.	अजैकपा	अधोमुख	उग्र, क्रूर	मध्यलो.	यमलाकार	३
२७.	उ.भाद्र.	लक्ष्मी	अहिर्बुध्न्य	ऊर्ध्वमुख	स्थिर, ध्रुव	सुलोचन	मंचकासम	२
२८.	रेवति	कामदा	पूषा	तिर्यङ्मुख	मृदु, मैत्र	अंधलो.	मृदंगसम	३२

नक्षत्रों के तारों का फल

यह फल शुभ अशुभ उनके ताराओं की संख्या के अनुसार होता है। यदि कोई व्यक्ति ज्वर से पीडित हो तो उस का ज्वर उस नक्षत्र जिस पर उसे ज्वर आया हो, के ताराओं की संख्या के अनुसार उतने दिनों में ज्वर दूर होगा।

योग विचार

योग २७ हैं। १. विष्कुम्भ, २. प्रीति, ३. आयुष्मान्, ४. सौभाग्य, ५. शोभन,

६. अतिगण्ड, ७. सुकर्मा, ८. धृति, ९. शूल, १०. गण्ड, ११. वृद्धि, १२. ध्रुव, १३. व्याघात, १४. हर्षण, १५. वज्र, १६. सिद्धि, १७. व्यतीपात, १८. वरीयान्, १९. परिघ, २०. शिव, २१. सिद्ध, २२. साध्य, २३. शुभ, २४. शुक्ल, २५. बह्मा, २६. ऐन्द्र, २७. वैधृति।

उक्त योगों के फल उनके नामों के अनुसार समझना चाहिए। व्यतीपात और वैधृति ये दोनों योग पूर्ण रूप से अशुभ हैं। इन योगों पर कोई शुभ कार्य नहीं करना चाहिए। किन्तु कुछ योग ऐसे हैं जिनके आरम्भ से कुछ घटिका पर्यन्त ही वे दोषावह होते हैं, यथा– विष्कुम्भ और वज्र ये योग आरम्भ से तीन घटिका पर्यन्त दूषित होते हैं, परिघयोग का पूर्वार्द्ध से समाप्ति पर्यन्त दोष रहता है, शूल योग का प्रथम पाँच घटिका पर्यन्त, व्याघात योग का नौ घटिका पर्यन्त और गण्ड तथा अतिगण्ड योगों का प्रथम छः घटिका पर्यन्त दोष रहता है। अत: दूषित घटिका त्यागपूर्वक उपर्युक्त योगों में भी शुभकार्य किये जा सकते हैं।

करण

करणों की संख्या ११ है। १. बव, २. बालव, ३. कौलव, ४. तैतिल, ५. गर, ६. वणिज, ७. विष्टि, ८. शकुनी, ९. चतुष्पाद, १०. नाग, ११. किस्तुघ्न।

नक्षत्र से चन्द्र या राशि जानी जाती है

इसके पूर्व बता चुके हैं कि नक्षत्रों की संख्या २७ है, और राशियाँ १२ हैं। अर्थात् सवा दो नक्षत्रों से एक राशि बनती है। इसका तात्पर्य यह हुआ है, कि सवा दो नक्षत्र समाप्त होने तक चन्द्र एक ही राशि में स्थित रहता है। व्यक्ति के जन्म के समय जिस राशि में चन्द्र रहता है, वही राशि उस जातक व्यक्ति की होती है। प्रतिदिन चन्द्र किस राशि में है, यह पञ्चाङ्ग में अङ्कित होता है। प्रत्येक नक्षत्र के चार भाग अर्थात् चरण माने गये हैं। जैसे एक पाद या चरण का अर्थ है १ पाव नक्षत्र (१/४), द्विपाद का अर्थ है अर्ध नक्षत्र (१/२), त्रिपाद का अर्थ है तीन चतुर्थांश नक्षत्र (३/४)।

किस राशि में कितने नक्षत्र होते हैं ?

मेष राशि में अश्विनि नक्षत्र और भरणी पूर्ण होता है, और कृत्तिका नक्षत्र का १/४ पाद होता है, तब मेष राशि में चन्द्र का भ्रमण पूर्ण होता है। इसे निम्नाङ्कित रेखा चित्र से समझा जा सकता है–

नक्षत्र		नक्षत्र		नक्षत्र		चन्द्र
अश्विनी	पूर्ण	भरणी	पूर्ण	कृत्तिका	१/४	मेष-राशि
कृत्तिका	३/४	रोहिणी	पूर्ण	मृग	१/२	वृषभ-राशि
मृग	१/२	आर्द्रा	पूर्ण	पुनर्वसु	३/४	मिथुन-राशि
पुनर्वसु	१/४	पुष्य	पूर्ण	आश्लेषा	पूर्ण	कर्क
मघा	पूर्ण	पूर्वा	पूर्ण	उत्तरा	१/४	सिंह-राशि
उत्तरा	३/४	हस्त	पूर्ण	चित्रा	१/२	कन्या-राशि
चित्रा	१/२	स्वाति	पूर्ण	विशाखा	३/४	तुला-राशि
विशाखा	१/४	अनुराधा	पूर्ण	ज्येष्ठा	पूर्ण	वृश्चिक-राशि
मूल	पूर्ण	पूर्वाषाढा	पूर्ण	उत्तराषाढा	१/४	धनु-राशि
उत्तराषाढा	३/४	श्रवण	पूर्ण	धनिष्ठा	१/२	मकर-राशि
धनिष्ठा	१/२	शततारका	पूर्ण	पूर्वा भाद्रपदा	३/४	कुम्भ-राशि
पूर्वा भाद्रपदा	१/४	उ.भाद्रपदा	पूर्ण	रेवती	पूर्ण	मीन-राशि

नक्षत्रों के गुणधर्म

अश्विनी– यह नक्षत्र बौद्धिक गुणों का है, व्यक्ति स्वाभिमानी, चञ्चल, उष्ण-प्रकृति, दुर्बल शरीर का और नेतृत्व के गुणों का होता है। **भरणी**– स्वार्थी और परावलम्बी होता है। **कृत्तिका** नक्षत्र का व्यक्ति– तामसी स्वभाव, चिड़चिड़ा, यह नक्षत्र तीव्र गुणों का है। उष्णप्रकृति का, बबासीर रोग से ग्रस्त, रक्तस्राव, अग्नि और शस्त्रपीडा और एक्सीडेण्ट करने वाला नक्षत्र है। इस नक्षत्र का व्यक्ति गर्विष्ठ, उग्र और साहसी, जिद्दी, होता है। **रोहिणी**– व्यक्ति का उत्तम सौन्दर्य, गौरवर्ण और आकर्षक, कलाकुशल, विलासप्रिय, स्त्रीप्रिय, शुद्ध और निर्मल मन का होता है। **मृगशीर्ष**– वृषभ राशि गत होने पर सामान्य गुणों का तथा भोगासक्त, मिथुन राशिगत होने पर बौद्धिक क्षेत्र में प्राविण्य प्राप्त करने वाला होता है। **आर्द्रा**– उग्रगुणों का चञ्चल और क्रोधी संशयी मन का होता है। **पुनर्वसु**– शास्त्र, विद्या, कला में पारङ्गत, सत्वगुणी, सज्जन और लोकप्रिय होता है। **पुष्य**– परोपकारी, प्रसिद्ध, ईश्वर भक्त, ग्रन्थकर्ता, उत्तम गुणों का विचारवान् होता है। **आश्लेषा**– संकट और व्याधि उत्पन्न करनेवाला तथा तीव्र

और दुष्टगुणों का नक्षत्र हैं। अविचारी, जिद्दी, चोर, असत्यभाषी, नीतिभ्रष्ट, हानिकारक होता है। **मघा**– महत्त्वाकांक्षी, अधिकार की इच्छा उत्पन्न करने वाला, कर्तृत्ववान्, मानी, स्वावलम्बी और भोगी गुणों का होता है। **पूर्वा**– श्रद्धावान्, धनवान् होने की इच्छा उत्पन्न करने वाला, व्यापारी, कलाभिरुचि सम्पन्न होता है। **उत्तरा**– मानी और परिश्रमी होता है। **हस्त**– सुस्वभावी, ईश्वरभक्त, विद्वान्, वक्ता, ग्रन्थकर्ता, सुखी, शान्त और धनवान्– इस नक्षत्र का व्यक्ति होता है। **चित्रा** नक्षत्र का व्यक्ति– उग्र गुणों का, वस्त्र और फूलों को पसन्द करने वाला, विषयासक्त, कलाकार, गणित प्रवीण, हर कला में निपुण होता है। **स्वाति**– इस नक्षत्र के व्यक्ति में तुला राशि के गुण धर्म होते हैं। शान्तता प्रिय, आनन्दी, ईश्वर भक्त, संयमी, नीतिमान् और सत्यप्रिय रहता है। **विशाखा**– इस नक्षत्र का व्यक्ति लोभी, घात करने वाला, कलहप्रिय, क्षुद्रवृत्ति का तीक्ष्ण घातक होता है। यह विषयुक्त नक्षत्र हैं। **अनुराधा**– इसका व्यक्ति धनवान्, मधुर भाषी, वस्त्रप्रिय, विषयासक्त, अलंकार प्रिय, सांसारिक और सद्‌गुणवान् होता है। **ज्येष्ठा**– यह तीव्र और घातक नक्षत्र हैं। जिद्दी, बदला लेने वाला, गुप्त षडयन्त्री, शूर, अल्पमित्र, गुप्तांगों में पीड़ा उत्पन्न करने वाला होता है। **मूल**– इसमें जन्म प्राप्त व्यक्ति प्रतापी, राजकार्य करने वाला, महत्त्वाकांक्षी, तेजस्वी, अभिमानी और गर्व करने वाला होता है। इसे अग्निभय तथा हड्डियों में चोट का भय रहता है। **पूर्वाषाढा** में जन्मा व्यक्ति– सुखी, धनवान्, नम्रप्रवृत्ति का होता है। **उत्तराषाढा**– में उत्पन्न व्यक्ति विद्वान्, उत्तमगुणों का एवं उदार होता है। **धनिष्ठा**– में उत्पन्न व्यक्ति दुष्टगुणों का, हिंसक, निर्लज्ज, शूर, अविचारी, पराक्रमी किन्तु दुष्ट होता है। **शततारका**– में उत्पन्न व्यक्ति धूर्त, विषयासक्त व्यसनी, सौन्दर्य और कम बुद्धि वाला होता है। **पूर्वाभाद्रपदा**– में उत्पन्न व्यक्ति विद्याभ्यासी, संशोधक, शास्त्रज्ञ, चतुर, धूर्त तथा निपुण होता है। **उत्तरा भाद्रपदा**– में उत्पन्न व्यक्ति अस्थिर, भाषा चतुर, विद्वान्, गौरवर्ण, अल्पबालों का होता है। **रेवती**– में उत्पन्न व्यक्ति धनवान्, बुद्धिमान् निःस्वार्थी, सत्कर्म करने वाला, सत्यप्रिय होता है।

चन्द्रबल या शुभाशुभ चन्द्र

सभी किये जाने वाले कार्यों के लिए चन्द्रबल देखने की आवश्यकता होती है। जिस दिन कार्य करना हो या कहीं जाना हो तो सर्वप्रथम जान लें कि उस दिन चन्द्र किस राशि का है ? तत्पश्चात् अपनी जन्मराशि से उस राशि के चन्द्र तक गिनती करनी चाहिए जो संख्या आवे, उसके अनुसार चन्द्र अपने लिये शुभ है या अशुभ है जान

लें। यथा– रामनाम के व्यक्ति को कहीं जाना है तो वह उस दिन पञ्चाङ्ग में देखकर जान ले कि चन्द्र किस राशि का है। मानलो, उस दिन चन्द्र मेष राशि का है, और राम की राशि मिथुन है, तो उसे अपनी राशि मेष से आगे गिनना प्रारम्भ कर मिथुन तक गिनना चाहिए, गिनने पर ज्ञात होता है, मिथुन तक गिनती ३ आती है अत: उस दिन राम को ३ रा चन्द्र है, समझना चाहिए। इस प्रकार **पहिला** चन्द्र लक्ष्मी कारक होता है, **दूसरा** सन्तोषप्रद, **तीसरा** धनदायक, **चौथा** अनिष्ट, कलहोत्पादक, **पाँचवाँ** कार्यनाशक, **छटा** सम्पत्तिप्रद, **सातवाँ** मानससम्मान दायक, **आठवाँ** दु:खदायक, **नवाँ** भयदायक, **दसवाँ** इच्छापूर्ण करने वाला, **ग्यारहवाँ** लाभदायक और **बारहवाँ** हानिकारक समझना चाहिए। इस प्रकार ४, ८ और १२वाँ चन्द्र सभी कार्यों के लिए त्याज्य समझना चाहिए। शुक्लपक्ष का २, ५ और ९ वाँ चन्द्र शुभ माना गया है। ११वाँ चन्द्र सर्वोत्तम माना गया है।

अमृतसिद्धि योग

यह योग विशेष वार तथा विशेष नक्षत्र पर ही होता है। जैसे– रविवार को हस्त, सोमवार को मृग, मंगलवार को अश्विनी, बुधवार को अनुराधा, गुरुवार को पुष्य, शुक्रवार को रेवती ओर शनिवार को रोहिणी नक्षत्र होने पर यह योग होता है। यह योग सभी कार्यों के लिए शुभ माना गया है।

अनिष्ट अमृतसिद्धि योग

उपर्युक्त अमृत सिद्धियोग विशेष कार्य के लिए निषिद्ध भी माना गया है। जैसे यद्यपि गुरुवार को पुष्य नक्षत्र होने पर अमृत सिद्धियोग बनता है, किन्तु यह विवाह के लिए त्याज्य है। शनिवार के दिन रोहिणी नक्षत्र होने पर भी प्रवास के लिए त्याज्य माना गया है। मङ्गलवार को अश्विनी नक्षत्र होने से अमृत सिद्धियोग भी ग्रहप्रवेश के लिए त्याज्य है। ये योग अत्यन्त निंद्य माने गये हैं। इसी प्रकार रविवार को पञ्चमी, सोमवार को षष्ठी, मंगलवार को सप्तमी, बुधवार को अष्टमी, गुरुवार को नवमी, शुक्रवार को दशमी और शनिवार को ग्यारस होने पर अमृतसिद्धि होते हुए भी वह त्याज्य है। जैसे रविवार को हस्तनक्षत्र होने पर सभी कार्यों के लिए शुभ रहने वाला अमृत सिद्धियोग, रविवार को पञ्चमी तिथि होने से निंद्य है।

मृत्युयोग

रविवार को अनुराधा, सोमवार को उत्तराषाढा, मंगलवार को शततारका, बुधवार

को अश्विनी, गुरूवार को मृगशीर्ष, शुक्रवार को आश्लेषा और शनिवार को हस्तनक्षत्र होने पर 'मृत्युयोग' बनता है। यह योग किसी भी शुभकार्य में वर्ज्य माना गया है।

दग्धयोग

रविवार को द्वादशी, सोमवार को एकादशी, मंगलवार को पञ्चमी, बुधवार को तृतीया, गुरुवार को षष्ठी, शुक्रवार को अष्टमी और शनिवार को नवमी होने पर 'दग्धयोग' बनता है। यह योग भी समस्त शुभकार्यों हेतु वर्ज्य माना गया है।

यमघण्टयोग

रविवार को मघा, सोमवार को विशाखा, मंगलवार को आर्द्रा, बुधवार को मूल, गुरुवार को कृतिका, शुक्रवार को रोहिणी और शनिवार को हस्त नक्षत्र होने पर 'यमघण्ट योग' बनता है। इस योग पर प्रयाण, गृहप्रवेश, देवस्थापना आदि कृत्य वर्जित होते हैं। इस योग पर उत्पन्न हुए पुत्र को कष्ट होता है।

धनिष्ठापञ्चक

धनिष्ठा नक्षत्र के उत्तरार्द्ध से खेती नक्षत्र की समाप्ति तक के पाँच नक्षत्रों को धनिष्ठापञ्चक कहा जाता है। यह पञ्चक प्रत्येक माह आता ही है किन्तु कुछ विद्वान् इसे सदोष न मानते हुए वैशाख कृष्णपक्ष की षष्ठी, सप्तमी में जो धनिष्ठापञ्चक आता है उसे सदोष मानते हैं और कुछ विद्वान् ग्रन्थकार वैशाख कृष्ण पक्ष के धनिष्ठानवक को अर्थात् धनिष्ठा से रोहिणी पर्यन्त ९ नक्षत्रों को सदोष मानते हैं।

गजच्छायायोग

भाद्रपद कृष्ण पक्ष में अमावास्या तिथि में हस्त नक्षत्र हो और सूर्यनक्षत्र भी हस्त ही हो तो इस पर्व को 'गजच्छाया' कहते हैं। इस दिन किये गए श्राद्धादिकृत्य अनन्त फल की प्राप्ति कराते हैं।

अर्धोदय-महोदययोग

पौषमास में रविवार के दिन अमावास्या हो और व्यतीपात और श्रवण का योग हो तो 'अर्धोदय' योग होता है। इस पर्व को सूर्यग्रहण की अपेक्षा अधिक फलदायी माना गया है, और यह योग दिन में हो तो अधिक प्रशस्त माना जाता है। 'अर्धोदययोग' में कुछ न्यूनता होने पर 'महोदय' योग घटित होता है।

प्रदोष के दिन

तृतीया तिथि के दिन रात्रि के प्रथम प्रहर के पूर्व यदि चतुर्थी का प्रवेश हो अथवा षष्ठी तिथि के दिन रात्रि के प्रथम देड प्रहर के पूर्व, यदि सप्तमी का प्रवेश हो, अथवा द्वादशी के दिन मध्यरात्रि के पूर्व त्रयोदशी का प्रवेश हो तो वे दिन प्रदोष के कहलाते हैं। (धर्मसिन्धु)

कपिलाषष्ठी– भाद्रपद महिने के कृष्णपक्ष में षष्ठी के दिन मंगलवार होने पर यदि रोहिणी नक्षत्र, व्यतीपात और सूर्य नक्षत्र हस्त भी हो तो कपिला षष्ठी का योग होता है। ऐसा योग साठ वर्षो में एक बार आता है। इस पर्व पर दान, होम, श्राद्ध आदि करने पर कोटि गुणों की प्राप्ति होती है। यह पर्व सूर्यपर्व है, अतः उक्त सभी योग दिन में ही होने चाहिए। रात्रि में होने पर यह निष्फल समझा जाना चाहिए।

काल मान की गणना– १ पल २४ सैकण्ड, ६० सैकण्ड या २।। पल= १ मिनिट, २४ मिनिट=१ घटिका, २।। घटिका १ घंटा, ३ घंटा या ७।। घटिका= १ प्रहर, ८ प्रहर या २४ घंटा=१ दिन, अहोरात्र।

मेष आदि राशियों के स्वामी– मेष राशि और वृश्चिक राशि का स्वामी मंगल ग्रह, वृषभ और तुला राशि का स्वामी शुक्र, धनु और मीन राशि का स्वामी गुरू और मकर और कुंभ राशि का स्वामी-शनि है। इनमें कुछ ग्रहों के पास दो-दो राशियाँ है— जैसे मंगल के अधिकार में मेष और वृश्चिक, बुध के अधिकार में मिथुन और कन्या।

गुरु के अधिकार में धनु और मीन, शुक्र के अधिकार में- वृषभ और तुला, शनि के अधिकार में मकर और कुंभ, एक-एक राशि के स्वामी है। रवि-सिंह चन्द्र-कर्क। राहु कन्या राशि का स्वामी है, और केतु मीन राशि का। जो ग्रह जिस राशि का स्वामी है, वह राशि उसका स्वगृह है। या स्व क्षेत्र कहलाता है।

राशियों के तत्त्व और उनका स्वभाव–

१. चर राशि– १. मेष, २. कर्क, ३. तुला, ४. मकर ये चार राशियाँ चर अर्थात् अस्थिर तत्त्वों की हैं।

२. स्थिर राशि– २. वृषभ, ५. सिंह, ८. वृश्चिक, ११. कुम्भ ये चार राशियाँ स्थिर तत्त्व स्वभाव की है।

३. द्वि स्वभाव– ३. मिथुन, ६ कन्या, ९. धनु, १२. मीन ये चार राशियाँ द्वि स्वभाव की हैं अर्थात् अस्थिर और कभी स्थिर स्वभाव की है।

४. अग्निराशि– १. मेष, ५. सिंह, ९. धनु ये तीन राशियाँ अग्नि स्वभाव की हैं।

५. पृथ्वी तत्त्व राशि– २. वृषभ, ६. कन्या, १०. मकर ये तीन राशियाँ पृथ्वी तत्त्व की हैं। कुछ विद्वान् मकर को जलराशि मानते हैं।

६. वायुराशि– ३. मिथुन, ७. तुला, ११ कुम्भ– ये तीन राशियाँ वायु तत्त्व की हैं।

७. जलराशि– ४. कर्क, ८. वृश्चिक, १२. मीन– ये तीन राशियाँ जल तत्त्वों की हैं।

८. राशिदेह– मेष, वृषभ एवं कुम्भ ह्रस्वदेह राशि, मिथुन, कर्क, धनु, मकर, एवं मीन मध्यम देह राशि और सिंह, कन्या, तुला तथा वृश्चिक दीर्घदेह राशियाँ हैं।

९. राशि स्वभाव– विषम राशियाँ क्रूर और समराशियाँ सौम्य होती हैं। अर्थात् मेष, मिथुन, सिंह, तुला, धनु और कुम्भ विषम राशियाँ हैं और वृषभ, कर्क, कन्या, वृश्चिक, मकर तथा मीन सम राशियाँ है।

१०. राशि जाति– विषम राशियाँ पुरूष जाति की एवं समराशियाँ स्त्री जाति की होती हैं।

११. राशियों का बलाबल– सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, कुम्भ और मीन राशियाँ दिन में बलवान् होती हैं तथा मेष, वृषभ, मिथुन, कर्क, धनु और मकर राशियाँ रात्रि में बलवान् होती हैं।

१२. राशियों की दिशा– मेष, सिंह, धनु की पूर्व दिशा; वृषभ, कन्या, मकर की दक्षिण दिशा; मिथुन, तुला, कुम्भ की पश्चिम दिशा तथा कर्क, वृश्चिक, मीन की उत्तर दिशा होती है।

१३. राशियों के स्थानबल– मिथुन, कन्या, तुला, कुम्भ और धनुराशि का पूर्वार्द्ध ये राशियाँ लग्न में बलवान् होती हैं। कर्क, मीन और मकर राशि का उत्तरार्द्ध-ये चतुर्थस्थान में बलवान् होती हैं। मेष, वृषभ, सिंह और धनु राशि का उत्तरार्द्ध तथा मकर राशि का पूर्वार्द्ध-ये दशमस्थान में बलवान् होती हैं। वृश्चिक राशि सप्तम स्थान में बलवान् होती है।

१४. राशियों की पर्यायसंज्ञा– मेषादि राशियों की अधोलिखित अन्य संज्ञाएँ भी हैं– १. **मेष–** अज, विश्व, क्रिय, तुम्बुर, आद्य, २. **वृषभ–** वृष, उक्ष, गो,

गोकुल, ३. **मिथुन–** द्वंद्व, नृयुग्म, यम, युग, तृतीय, ४. **कर्क–** कर्कट, कुलीर, कर्कटक, ५. **सिंह**–कण्ठीरव, मृगेन्द्र, हरि, लेय, ६. **कन्या–** पाथोन, रमणी, योषिता, तरुणी, ७. **तुला–** तौलि, वणिक्, जूक, घट, ८. **वृश्चिक–** अलि, कीट, ९. **धनु–** तौक्षिकि, चाप, धन्वी, शर, कार्मुक, शूरासन, १०. **मकर–** मृग, नक्र, मृगास्य, ११. **कुम्भ–** घट, हृदरोग, तोयधर, १२. **मीन–** मत्स्य, पृथुरोम, झष, अंत्यभ, मीनालि।

राशियों का शरीर के अवयंवों से सम्बन्ध

मेष– मस्तक, **वृषभ–** मुख, **मिथुन–** वक्ष:स्थल, **कर्क–** हृदय, **सिंह–** उदर, **कन्या–** कमर उदर कोख। **तुला–** बस्ती, **वृश्चिक–** गृह्यभाग, **धनु–** कमर के नीचे तथा घुटनों के ऊपर का भाग। **मकर–** घुटना, **कुम्भ–** घुटनों के नीचे का मांस पिण्ड, **मीन–** पाद चरण। **मेष, वृषभ, कुंभ–** छोटे कद के–हृस्वदेही। **सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक–** ऊँचे कद के–लंबे शरीर के। **मिथुन, कर्क, धनु, मकर और मीन–** मध्यम कद के। मेष, वृषभ, मिथुन, कर्क, धनु और मकर राशियाँ रात्रि बली-शक्तिशाली होती है। सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक और कुंभ राशियाँ दिवाबली होती है। मीन राशि उभयकाल बली होती है।

राशियों की दिशाएँ

पूर्व दिशा– मेष, सिंह, धनु। पश्चिम– मिथुन, तुला, कुंभ। दक्षिण– वृषभ, कन्या, मकर। उत्तर– कर्क, वृश्चिक, मीन।

राशियों के अनुसार जातकों के विशेष गुण स्वभाव

१. मेषराशि (चु, चे, चो, ला, ली, लू, ले, लो, अ)– लम्बा चेहरा, गोलनेत्र, सुन्दर दन्त पंक्ति, प्रभावशाली व्यक्तित्व, गरम स्वभाव, कभी-कभी आँखों में लाली, उतावलापन, महत्त्वाकांक्षी, कर्तव्यवान्, वचन की दृढता, साहसी, निडर, बातूनी, चेहरे अथवा छाती पर तिल या मस्सा, रक्तचाप, गेस से दर्द। क्रोध की मात्रा अधिक, अहंकार। वर्चस्व रखने का स्वभाव। यह राशि मङ्गल की है, इसमें अग्नितत्त्व का गुण है यह पुरुष राशि है।

२. वृषभ (ई, उ, ए, ओ, वा, वी, वू, वे, वो)– सुन्दर चेहरा, स्थूल और मजबूत शरीर, धीमी आवाज में बात करना, कला प्रेमी, परिश्रमी, चतुर, मन के विचार प्रकट न करने वाला, सौन्दर्य प्रेमी, दयावान्, इन्द्रिय अथवा गाल पर तिल का निशान, धन संग्रह नहीं कर पाता, मिथ्यावादी, अशिष्ट व्यक्ति से चिढ। शुक्र के गुणों की

अधिकता, विषय वासना, गले का विकार, सुखाभिलाषी, स्थिर राशि तथा शुक्र के गुणों से युक्त यह पृथ्वी तत्त्व की राशि है।

३. मिथुन (का, की, कु, घ, ङ, छ, के, को, हा)– वायुतत्त्व की राशि है। बडा चेहरा, ठोडी में गड्ढा, आँखें कमजोर, स्नायु कमजोर, स्मृति तेज, गणित एवं वाणिज्य में आगे, चंचल, संवेदनशील, बुद्धिमान्, राजनीतिज्ञ, चतुर, वाकपटु, सभ्य, चरत्रिवान्, उत्तरदायित्व निभाने वाला, प्रवास, वाचन, सिलाई में रुचि, आँखों की तकलीफ, चेहरे पर अथवा पेट, कान, हाथ पर तिल या मस्सा इन लक्षणों से युक्त जातक होता है।

४. कर्क (ही, हू, हे, हो, डा, डी, डू, डे, डो)– जलतत्त्व राशि है। विशाल बाहु, लम्बा कद, विवाह में विलम्ब, बच्चों एवं फूलों से प्रेम, चंचलवृत्ति, गोल चेहरा, महत्त्वाकांक्षी, उद्योगी, स्वतन्त्र रहना पसंद, अनियमित जीवनचर्या, पत्नी के अधीन, गला, बाहू अथवा इन्द्रिय पर तिल या मस्सा, नगर लाभदायक। चन्द्र अशुभ होने पर रजोगुणी, शुभ होने पर दूरदर्शी, सहनशील एवं सत्त्वगुणी जातक होता है।

५. सिंह (मा, मी, मू, में, मो, टा, टी, टू, टे)– अग्नितत्त्व, विशाल चेहरा, छाती पर बाल, निर्भय, पुष्ट शरीर अहंकार शीघ्र आता है, ईमानदार, न्यायप्रिय, जैसे को तैसा व्यवहार, गला, पेट या पैर पर तिल का निशान, अधिकार पसंद, उदरविकार, पीठ में दर्द, मध्यम कद, उष्ण प्रकृति, उदार इत्यादि गुणों से युक्त जातक होता है। यह स्थिर राशि है।

६. कन्या (टो, पा, पी, पु, ष, ण, ठ, पे, पो)– पृथ्वीतत्त्व राशि वाला जातक साधारण व्यक्तित्व, चतुर, कमजोर शरीर, छोटा कपाल, स्थूल, मन्दगति से कार्य, मन का भेद न प्रकट करने वाला, कमजोर इच्छा शक्ति, कम उत्साही, बुद्धिमत्ता स्मरण शक्ति तीव्र, संशयी वृत्ति, उदर पीड़ा, अपचन से विकार, पेचिश (आँव) तथा दूसरों से शीघ्र प्रभावित होने वाला होता है। यह द्विस्वभाव एवं वातप्रकृति की राशि है।

७. तुला (रा, री, रु, रे, रो, ता, ती, तु, ते)– वायुतत्त्व एवं चरराशि वाला जातक लम्बा कद, मजबूत शरीर, मोटी नाक, कालेपन पर रङ्ग, लम्बी अंगुलियाँ, न्यायप्रिय, शान्त स्वभाव, कला प्रेमी, व्यवस्थित रहना पसंद, प्रेम प्रिय, भावना प्रधान, कौटुंबिक प्रेम, मूत्राशय के विकार, कफप्रकृति, सौन्दर्य प्रेम, सत्यप्रिय, खर्च करने की प्रवृत्ति, स्त्रियों के प्रति विशेष आकर्षण वाला होता है।

८. वृश्चिक (तो, ना, नी, नू, ने, नो, या, यी, यू)– जलतत्त्व एवं स्त्री राशि वाला जातक विशाल नेत्र, छोटे बाहू, प्रकृति का असर शीघ्रता से, आगे के कुछ दन्त उठे हुए, कमर से निचला भाग छोटा, शीघ्र क्रोधी, तमोगुणी, गरम स्वभाव, अहंकारी, तीखी वाणी, कामी, व्यसनी, संयम की कमी, दांतों का कष्ट, वक्षस्थल या नाक पर तिल का निशान, हृदय की बात जानना कठिन, जिद्दी स्वभाव, मूत्राशय की बीमारी वाला होता है। यह स्थिरतत्त्व राशि है।

९. धनु (ये, यो, भा, भी, भूं, धा, फा, दा, भे)– अग्नितत्त्व एवं द्वि स्वभाव राशि वाला जातक नाक सीधी, लंबी, उठी हुई, खुराक ज्यादा, स्थूल शरीर, छाती और कान पर बाल, लम्बा कद, भौहें मोटी, मिली हुई, सुन्दर आँखें, तमोगुणी, स्वाभिमानी, व्यवहारिक ज्ञान की कमी, मददगार, धार्मिक, सामाजिक कार्यों में रुचि, छाती, भुजा, गले पर तिल का निशान, जिद्दीपन, पत्नी पर गृह कार्य की जिम्मेदारी सोंपकर निश्चिन्त होने की प्रवृत्ति वाला होता है।

१०. मकर (भो, जा, जी, रवी, खू, खे, खो, गा, गी)– पृत्वीतत्त्व एवं चर तत्त्व की यह राशि कर्म स्थान की द्योतक है। इस राशि का जातक गर्दन लंबी, कम परन्तु काले घुंघराले बाल, लंबा कद, भौंहे, मोटी तथा मिली हुई, सुन्दर आँखे, तमोगुणी, मन के भाव चेहरे पर आना, स्वाभिमानी, व्यवाहारिक ज्ञान की कमी, मददगार धार्मिक/सामाजिक कार्यों में रुचि, छाती, भुजा, गले पर तिल का निशान, जिद्दी स्वभाव, राशि का स्वामी शनि होने से कार्य में लगनशीलता, अधिकार रखने की इच्छा, अविश्वासी स्वभाव वाला होता है। इस राशि का प्रभाव घुटनों पर रहता है।

११. कुम्भ (गु, गे, गो, सा, सी, सू, से, सो, दा)– वायुतत्त्व, स्वामी शनि, लाभस्थान की राशि वाला जातक रोग प्रतिरोधक शक्ति प्रबल, सुन्दर आँखे, कपाल ऊँचा उठा हुआ, पैर के तलवे लंबे, प्रभावी व्यक्तित्व, विवेकशील विचार, तर्क शक्ति, अरूढीवादी, प्रेम और सहानुभूति का व्यवहार, परिश्रम से जीवन का निर्माण, क्रोधी, उग्रस्वभाव, तथापि मन से नरम, संघर्ष में दृढ, प्रयत्नवादी, व्यय में सन्तुलन रखने की प्रवृत्ति, मन से साफ, महत्त्वाकांक्षी, गला, पीठ, कपाल पर तिल का निशान, साहसी होने का दिखावा करने वाला, पित्तप्रकृति, लीवर संबन्धी रोग, चंचलता, अधिकार की इच्छा, पक्के इरादों वाला होता है। प्राचीन ज्योतिषियों के विचार में कुम्भ लग्न अशुभ है। इसका प्रभाव घुटनों के नीचे पिण्डलियों से तलवे तक है।

१२. मीन (दी, दू, थ, झ, ग, दे, दो चा, ची)– जल एवं स्त्रीराशि वाला

जातक भावनाशील, मन का खुलापन, हृदय की कोमलता, ऊँचाई कम, नाजुक प्रकृति, कम लम्बे नाखनू, सत्वगुमी, दयालु, निर्लोभी, चरित्रवान्, कार्यक्षम, व्यवहार कुशल, मिलनसार जीवन के अंतिम चरण में विरक्ति की भावना, स्वाभिमानी, भजन, वाचन में रुचि, द्विधा मन की स्थिति, गला, कान, भुजा पर तिल वाला होता है।

विशेष– उपर्युक्त राशियों के लक्षण मोटे तौर पर देखे जा सकते हैं। राशियों के स्वामी ग्रह बलवान् होकर, लग्न राशि पर उनका प्रभाव होने की दशा में व्यक्ति में अलग-लक्षण प्रतिलक्षित होते हैं।

ग्रहों की जाति और गुण धर्म

१. गुरु और शुक्र– ब्राह्मण वर्ण के हैं और इन की प्रवृत्ति सत्कर्म की ओर रहती है।

२. रवि और मङ्गल– ये क्षत्रिय वर्ण के हैं, लडाई झगडा इन्हें रुचिकर होता है। अपना वर्चस्व रखना चाहते हैं।

३. चंद्र– वैश्य वर्ण का है। यह जिस ग्रह के साथ रहता है, वैसे ही व्यवहार करता है।

४. बुध– वैश्य जाती का है। श्रम करने की प्रवृत्ति का है।

५. शनि-राहु, केतु– ये चाण्डाल जाति के हैं। दुष्कर्म करने की प्रवृत्ति के होते हैं।

ग्रहों के लिङ्ग

१. पुरुष ग्रह– रवि, मङ्गल, गुरु।

२. स्त्री ग्रह– चन्द्र, शुक्र, राहु।

३. नपुसंक ग्रह– शनि और बुध।

शुभाशुभ ग्रह

१. गुरु, २. शुक्र, ३. बुध, ४. और पूर्ण चन्द्र, ये शुभ ग्रह हैं।

२. रवि, मङ्गल, शनि, राहु और केतु– ये अशुभ ग्रह हैं। क्षीण चन्द्र भी अशुभ माना जाता है। कृष्णपक्ष की पंचमी से ३० आमावस्या तक का चन्द्रक्षीण होता है।

ग्रहों के स्वभाव– रवि-स्थिर, चन्द्र-चंचल, मङ्गल-उग्र, बुध-मिश्र, गुरू-क्षिप्र, शुक्र-मृदु, और शनि दारूण स्वभाव का है।

ग्रहों के तत्त्व– रवि-मंगल अग्नितत्त्व, चन्द्र-शुक्र जल तत्त्व, बुध भूमितत्त्व,

गुरू आकाश तत्त्व और शनि वायु तत्त्व के हैं।

ग्रहों के गुण— सूर्य, चन्द्र और गुरू सत्त्वगुमी, बुध-शुक्र रजोगुणी और मंगल शनि तमोगुणी हैं।

उदित ग्रह— सूर्य प्रकाश में लुप्त न होने के कारण जब कोई भी ग्रह हमें रात्रिकाल में दृग्गोचर होता है वह ग्रह उदित माना जाता है।

अस्तग्रह— सूर्य के पास जाकर जब कोई ग्रह सूर्यप्रकाश में आच्छादित होने के कारण हमें रात्रिकाल में दृग्गोचर नहीं होता वह ग्रह अस्तंगत कहा जाता है।

वक्रीग्रह— जब कोई ग्रह राशियों के अनुक्रम का उल्लंघन करता हुआ विपरीत संचार करता है, ऐसी स्थिति में वह ग्रह वक्री कहलाता है— जैसे किसी ग्रह का कुम्भ राशि से मकर राशि में जाना।

मार्गीग्रह— जब कोई वक्री ग्रह पुनः राशियों के अनुक्रम में संचार करता है तब वह मार्गी कहा जाता है— जैसे किसी ग्रह का मेष राशि से वृषभ राशि में गमन।

स्तम्भी ग्रह— जब एक ही राशि में नियमित कालावधि की अपेक्षा अधिक कालावधि तक कोई ग्रह संचार करता है— तब वह ग्रह स्तम्भी कहलाता है।

कुजस्तम्भ— मंगल के वक्री रहते उसकी गति मन्द होने पर वह एक राशि में ही नियमित कालावधि की अपेक्षा अधिक काल तक संचार करता है। इसे कुंजस्तम्भ कहते हैं। ऐसी अवस्था में मंगल १० मास तक एक ही राशि में रहता है।

ग्रहों की सम और विषम राशियाँ

सम राशि— वृषभ, कर्क, कन्या, वृश्चिक, मकर और मीन।

विषम राशि— मेष, मिथुन, सिंह, तुला, धनु और कुम्भ।

ग्रहों के रंग (वर्ण)— १. रवि (लाल), २. मङ्गल (गहरा लाल), ३. गुरु (पीला), ४. शनि (काला), ५ केतु सामान्य काला, ६. चन्द्र गौरवर्ण, ७. बुध हरा, ८. शुक्र श्वेत अथवा मिश्र वर्ण, ९. राहु— साधारण काला।

ग्रहों का एक राशि में रहने का समय

१. रवि— एक राशि में करीब-करीब एक माह।

२. चन्द्र— एक राशि में सवा दो दिन।

३. मङ्गल— एक राशि में डेढ़ माह।

४. बुध— एक राशि में करीब-करीब पौन माह।

५. **गुरु**— एक राशि में करीब-करीब तेरह माह।
६. **शुक्र**— एक राशि में करीब-करीब पौन माह।
७. **शनि**— एक राशि में ढाई वर्ष।
८. **राहु + केतु**— एक राशि में डेढ वर्ष।

ग्रहों का उच्च-नीच स्थान

१. **रवि**— मेष राशि में १० अंशो तक परमउच्च और तुला में १० अंशों पर परमनीच रहता हैं।

२. **चन्द्र**— वृषभ राशि में ३ अंशों पर परमउच्च और वृश्चिक राशि में ३ अंशों पर परमनीच होता है।

३. **मङ्गल**—मकर राशि में २८ अंशों पर परमउच्च और कर्क राशि में २८ अंशों पर परमनीच रहता है।

४. **बुध**— कन्या राशि में १५ अंशों पर परमउच्च और मीन राशि में १५ अंशों पर परमनीच रहता है।

५. **गुरु**— कर्क राशि में ५ अंशों पर परमउच्च रहता है, और मकर राशि में ५ अंशों पर परमनीच का होता है।

६. **शुक्र**— मीन राशि में २७ अंशों पर परमउच्च तथा कन्या राशि में २७ अंशों पर परमनीच का होता है।

७. **शनि**— तुला राशि में २० अंशों पर परम उच्च रहता है और मेष राशि में २० अंशों पर परमनीच का रहता है।

विशेष— राहु और केतु के उच्च-नीच स्थानों के विषय में विद्वानों में एक वाक्यता नहीं है।

राहु— मिथुन राशि में १५ अंशों पर परमउच्च रहता है, और कुछ लोगों के विचार में वृषभ राशि में १५ अंशों पर परमउच्च रहता है और धनुराशि में १५ अंशों पर परमनीच का रहता है। और कुछ विद्वानों के विचार में वृश्चिक राशि में १५ अंशों पर परमनीच का होता है।

केतु— धनु राशि में १५ अंशों पर परमउच्च का रहता है और मिथुन राशि में १५ अंशों पर परमनीच का रहता है। कुछ विद्वानों के विचार में वृश्चिक राशि में १५ अंशों पर परमउच्च रहता है और वृषभ राशि में १५ अंशों पर परमनीच का रहता है।

ग्रहों की दृष्टियाँ

प्रत्येक ग्रह (रवि, चन्द्र, मङ्गल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि, राहु और केतु) अपने स्थान से सातवें स्थान को पूर्ण दृष्टि से देखता है, किन्तु कुछ ग्रहों की विशेष दृष्टियाँ भी हैं।

गुरु– अपने स्थान से सातवें स्थान पर पूर्णदृष्टि से देखता है, इसके अतिरिक्त ५वें और ९वें स्थान पर भी पूर्णदृष्टि से देखता है।

मङ्गल– पत्रिका में स्थित स्थान से सातवें स्थान को पूर्णदृष्टि से देखता है और ४/८ वे स्थान को भी पूर्णदृष्टि से देखता है।

शनि– पत्रिका में स्थित स्थान से सातवें स्थान को पूर्णदृष्टि से देखता है और ३ तथा १० वें स्थान को भी पूर्णदृष्टि से देखता है।

विशेष– उक्त दृष्टियों के अतिरिक्त प्रत्येक ग्रह अपने स्थान से ३ तथा १० वें स्थान को एक चरण दृष्टि से ५ और ९ वें स्थान को दो चरण की दृष्टि से, ४ और ८ वें स्थान को तीन चरण की दृष्टि से देखता है।

ग्रहों की अवस्थाएँ

ग्रहों की कुल मिलाकर पाँच अवस्थाएँ हैं। १. बाल्य, २. कुमार, ३. तरुण, ४. वृद्ध और ५. मृत। वृषभ, कर्क, कन्या, वृश्चिक, मकर और मीन राशि में ग्रह होने पर प्रथम ६ अंशों में वह बाल, आगे के १२ अंशों में कुमार, १८ अंशों में तरुण, २४ अंशों में वृद्ध और ३० अंशों में मृत होता है। यह दशा सम राशियों की है। इसके विपरीत विषम राशि में ग्रह के होने पर अर्थात् मेष, मिथुन, सिंह, तुला, धनु और कुम्भ राशि का ग्रह प्रथम ६ अंशों में मृत, आगे १२ अंशों में वृद्ध, १८ अंशों तक तरुण, २४ अंशों तक वृद्ध और ३० अंशों तक बाल्य अवस्था का होता है।

उच्च या मूल त्रिकोण में स्थित ग्रह– दीप्त, स्वगृही ग्रह-स्वस्थ, मित्रगृही ग्रह-उदित, शुभ ग्रहों के वर्ग का ग्रह-शान्त, जब वह दैदीप्यमान होता है तब शक्त, जब ग्रह अन्य ग्रहों से आच्छादित होता है तब वह पीड़ित रहता है शत्रु गृह में रहने पर ग्रह दीन होता है, पाप ग्रह से युक्त ग्रह नीच होता है और अस्तंगत ग्रह विफल रहता है।

शरीरावयवों पर ग्रहों के परिणाम

रवि– हृदय और धमनियाँ, समस्त प्रकार के नेत्ररोग, मूर्च्छा, ज्वरपीडा इत्यादि

रोग अनिष्ट रवि के कारण होते हैं। पितृसुख, वैद्यशास्त्र में अभिरूचि का कारण रवि ही होता है। लग्न अथवा सप्तमस्थान में रवि होने पर सिर और आँखें बड़ी होती हैं।

चन्द्र– चन्द्र का अधिकार मस्तिष्क पर होता है। अनिष्ट चन्द्र के कारण स्वभाव चञ्चल होता है। मिथुन, तुला, मकर, और कुम्भ राशि में जन्मकाल में चन्द्र होने पर जातक दूरदर्शी, दृनिश्चयी, विचारी संशोधक, एकान्तवासप्रिय, अत्यन्तपरिश्रमी, किन्तु संशयी होता है। वृषभ राशि का चन्द्र जातक को हठवादी बनाता है। शुभचन्द्र होने पर जातक विश्वासु, सभ्य और दयालु होता है। कृष्णपक्ष की अष्टमी से शुक्लप्रतिपदा तक उत्पन्न जातक डरपोक, चंचलमति, अधीर और पश्चात्ताप प्राप्त करने वाले होते हैं। क्षीण चन्द्रमा के कारण रोग होना, बढ़ना और कम होना चलता रहता है।

मंगल– मंगल की सत्ता मांस पर होती है। शुभस्थान अथवा तृतीय स्थान में मंगल होने पर जातक पुंस्त्व गुण एवं निडर स्वभाव का होता है। शरीर विशाल, नासिका रन्ध्र बडे, आँखें लाल, तामसी स्वभाव, स्वार्थी और दीर्घवैरी जातक अनिष्ट मंगल अथवा रवियुक्त होने पर होता है। नीचगृह में मंगल होने पर जातक अधर्मी, अन्यायी और निर्दयी होता है। ३/९ स्थानों पर, मित्रक्षेत्र का, उच्च का अथवा शुभग्रह युक्त मंगल जातक को धनाढ्य बनाता है।

बुध– बुद्धि का स्वामी बुध होता है। यदि बुध पापग्रह से युक्त हो, शत्रुक्षेत्र में अकेला हो अथवा ४-८-१२ स्थान में हो तो जातक बुद्धिभ्रम, पागलपन और अस्थिर चित्त आदि विकारों से ग्रस्त रहता है। लग्न में स्वगृही बुध होने पर जातक सुन्दर शरीर प्राप्त करता है, वाक् चातुर्य से सम्पन्न एवं विनोदी होता है। गणितशास्त्र में दक्षता, वक्तृत्व और वेदान्त आदि बुध के कारण ही प्राप्त होते हैं।

गुरु– गुरु ज्ञानशक्ति का सूचक होता है। शुभस्थान का गुरु जातक को निस्पृह, उदार, सदाचारी, धार्मिक और न्यायप्रिय बनाता है। शरीर गौरवर्ण, देहपुष्ट, सुन्दर शरीरावयव और कृष्णवर्णीय पानीदार आँखें प्राप्त करता है। गुरु पापग्रह से दृष्ट होकर जिसके स्थान पर होता है उस स्थान का आधाफल प्राप्त होता है। ३-६-८-१२ इन स्थानों पर अथवा पापग्रह से युक्त या पापग्रहों से दृष्ट गुरु अपूर्ण विद्याप्राप्ति का कारण होता है और जातक को कोरे अहंकार से भर देता है। उसकी विद्या तेजस्वी नहीं होती। सप्तम स्थान का गुरु जातक को अंधश्रद्धावान् बनाता है। नवमस्थान में मीन राशि का और पञ्चम स्थान में धनुराशि का गुरु जातक को ग्रन्थकार बनाता है।

शुक्र– शुक्र का अधिकार क्षेत्र वीर्य, रेत, गर्भाशय, जननेन्द्रिय, स्तन, कण्ठ

आदि पर होता है और तत्सम्बन्धी रोगों का जनक भी शुक्र ही होता है। नीच का शुक्र, शत्रुक्षेत्र का शुक्र, पापग्रह से दृष्ट अथवा युक्त होने पर जातक डरपोक, दुष्कृताचरणशील, स्त्रीवश और सर्वज्ञता के अभिमान से ग्रस्त एवं अविचारी होता है। शुभस्थानगत शुक्र जातक को तेजस्वी एवं सुकुमार देहवाला, आँखें पानीदार, निश्चिन्त, क्षमाशील, औषधशास्त्रज्ञ, मधुरवाणी एवं गायन कला का व्यसनी बनाता है। धनस्थानगत नीच का शुक्र नेत्रपीडा उत्पन्न करता है।

शनि– शनि का अधिकार मनुष्य की जंघाओं, कमर एवं स्त्रियों के गर्भाशय पर होता है। षष्ठ स्थान अष्टमस्थानगत अथवा पापग्रह से युक्त शनि जातक को जलोदर, अर्धांगवात, गले के रोग, क्षय, दन्तविकार आदि रोगों से ग्रस्त करता है। स्त्रियों की कुण्डली में पञ्चम स्थानगत अनिष्ट शनि गर्भपात, बांझपन और अल्पायु प्रजा देता है। मंगल की दृष्टि से युक्त शनि अत्यन्त अशुभ होता है। पापक्षेत्र, लग्न अथवा २-५-६ स्थानों का शनि जातक को स्वार्थी, दुर्बलमुखाकृति, परोत्कर्षासहिष्णु और नित्य उदास बनाता है। नीच का शनि सर्वदा आपत्तियों का दाता होता है।

गुरु-शुक्र ग्रहों का अस्तोदय काल

गुरु का अस्त २५ से ३०-३३ दिनों तक रहता है और उदित होने पर पुन: उसका ३६६ से ३७५ दिनों तक अस्त नहीं होता। गुरु का अस्त हमेशा पश्चिम दिशा में होता है और उसका उदय पूर्व दिशा में होता है। शुक्र का पूर्व दिशा में अस्त होने पर उसका उदय ७२ दिनों के बाद पश्चिम दिशा में होता है, किन्तु कभी-कभी उसका अस्त ५८ से ७५ दिनों तक भी रहता है और एक बार उदय होने पर उसका अस्त २४८ से २५२ दिनों तक पुन: नहीं होता और यदि शुक्र का पश्चिम दिशा में अस्त होता है तो लगभग ८ से १२ दिनों में पूर्व दिशा में उदय होता है। तात्पर्य यह है कि शुक्र का अस्तोदय दो प्रकार का होता है। जब शुक्र का पश्चिम में अस्त होता है तब वह वक्री होता है और जब उसका अस्त पूर्व में होता है तब वह मार्गी होता है। वक्री शुक्र को मार्गी होने में ४० से ४५ दिन लगते हैं और मार्गी होने पर वह ५४० से ५४५ दिनों तक प्राय: वक्री नहीं होता। गुरु वक्री होने पर उसे मार्गी होने में कम से कम ११६ से १२५ दिन लगते हैं। ५८४ दिनों में शुक्र का दो बार उदय और दो बार अस्त होता है। इसी प्रकार ३९९ दिनों में गुरु का एक बार उदय और एक बार अस्त होता है। गुरु-शुक्र के अस्त में शुभ कार्य नहीं करने चाहिए। जैसे कूप, तालाब खोदना, यज्ञ करना, यात्रा करना, चौलादि संस्कार, देव प्रतिष्ठा, यज्ञ-यागादि,

विद्यारम्भ, नवीन घर बनाना, नवीन घर में प्रवेश तीर्थस्नान, आदि नहीं करना चाहिए और सिंह राशि में गुरु के होने पर भी उक्त कार्य नहीं करने चाहिए। गुरु-शुक्र के अस्त होने के कम से कम सात दिन पूर्व कार्य नहीं करने चाहिए और उनका उदय होने पर भी सात दिनों तक शुभ कार्य नहीं करने चाहिएँ।

अनिष्ट मङ्गल

जन्मलग्न में या लग्न से चतुर्थ स्थान में, सातवें स्थान में, आठवें स्थान में और बारहवें स्थान में यदि मङ्गल हो तो वह अनिष्ट कारक होता है। वधू-वर में से एक की जन्म पत्रिका में ऊपर बतलाये गये स्थानों के अनुसार अनिष्ट मङ्गल हो और दूसरे की पत्रिका में न हो तो वह ग्राह्य नहीं है, किन्तु वधू-वर में से एक ही पत्रिका में लग्न या लग्न से चौथा, सातवाँ आठवाँ या बारहवाँ हो तो यह आवश्यक नहीं है कि दूसरे की पत्रिका में भी उन्हीं स्थानों पर होना चाहिए। यदि एक की पत्रिका के सप्तमस्थान में मङ्गल हो और दूसरे की पत्रिका में सप्तमस्थान में शनि या शनि की दृष्टि हो तो ग्राह्य समझकर विवाह कर लेना चाहिए। ऐसा अनेकों का मत है। कुछ विद्वानों के विचार में सप्तमेश जहाँ हो, उस स्थान से यदि १/४/७/८/१२ इन स्थानों पर मङ्गल हो तो उस मङ्गल को अनिष्टकारक समझना चाहिए। गुणों की संख्या यदि पूर्ण हो तो मंगल का दोष नष्ट होता है, ऐसा भी कुछ विद्वान् कहते हैं। प्राचीन ग्रन्थों–मुहूर्तचिन्तामणि, मुहूर्तमार्तण्ड, बृहज्जातक, सारावली आदि ग्रन्थों में मङ्गल ग्रह के विषय में ऐसा विचार उल्लिखित नहीं है।

मङ्गल दोष को देखने के दो तीन प्रकार देखने में आते हैं– कुछ जन्म पत्रिका में स्थित चन्द्र के स्थान से मङ्गल देखते हैं, कुछ विद्वान् सप्तमेश जहाँ होता है वहाँ से मंगल की गणना करते हैं और कुछ विद्वान् जन्मलग्न से, अत: कौन सा प्रकार विश्वसनीय है, कहना कठिन है।

जन्मपत्रिका के सप्तमस्थान में, लग्न में, पञ्चमस्थान में, अष्टमस्थान में, दशमस्थान में या द्वादशस्थान में शनि होने पर मङ्गल दोष नहीं मानना चाहिए, क्योंकि उक्त स्थानों से शनि की दृष्टि सप्तमस्थान व कुटुम्बस्थान पर होती है। मेषराशि का मङ्गल यदि लग्न में हो, धनुराशि का व्ययस्थान में, वृश्चिकराशि का चतुर्थस्थान में, मकरराशि का सप्तमस्थान में और कर्कराशि का अष्टमस्थान में हो तो मङ्गल दोष कारक नहीं होता। इसी प्रकार मङ्गल वक्री, नीचराशि का, शत्रुगृह का, अस्तङ्गत अथवा शुभग्रह से पूर्ण दृष्ट हो, या बलवान् गुरु-शुक्र लग्न में अथवा सप्तमस्थान में यदि हो तो मङ्गल का दोष नहीं होता। अथवा वधू-वरों की राशि के स्वामियों की परस्पर मित्रता हो, एक गण

होने पर अथवा गुण बाहुल्य हो, अर्थात् २४ से अधिक गुण हो तो मङ्गल का दोष नहीं रहता।

भावों के कारक ग्रह

१. लग्न का कारक ग्रह रवि
२. धन का कारक शुक्र
३. सहज का मङ्गल
४. सुहृत् का चन्द्र और बुध
५. सुत का गुरु
६. रिपु का मङ्गल और शनि
७. जाया का शुक्र
८. मृत्यु का शनि
९. धर्म या भाग्य का रवि और गुरु
१०. कर्म का गुरु, रवि, बुध और शनि
११. आय का गुरु
१२. व्यय का शनि कारक ग्रह है।

कारकत्व का अर्थ यह है कि प्रत्येक ग्रह के अधिकार में कुछ विशेष कार्य होते हैं। उनसे निम्नोक्त बातों का ज्ञान होता है। जैसे– शुक्र ग्रह से हम पत्नी, वैवाहिक जीवन, सौख्य, प्रणय, धन, सौन्दर्य, कला आदि के विषय में जान सकते हैं। ये ही इस ग्रह के गुण-धर्म हैं। **मङ्गल–** से शक्ति, बन्धु, शूरता, शस्त्र आदि के विषय में जान सकते हैं। **बुध–** से मामा, बुद्धि, वाणी, लेखन आदि के विषय में जान सकते हैं। **गुरु–** से संतति, मान-सन्मान, कीर्ति, ज्ञान, धर्म, विद्या के विषय में जान सकते हैं। **शनि–** से आयु, मृत्यु, उद्योग, दुर्भाग्य, दुःख आदि के विषय में जान सकते हैं। **राहु–** से यश, प्रतिष्ठा, विष, पूर्वजों के विषय में जान सकते हैं। **केतु–** संन्यास एवं **रवि–** से पिता, आत्मा, मान, कीर्ति के विषय में जान सकते हैं। **चंद्र–** से माता, मन, आदि के विषय में जान सकते हैं।

जन्मकुण्डली का परिचय

जन्म पत्रिका में अधोलिखत प्रकार की आकृति बनी रहती है। इस आकृति के १२ भाग किये रहते हैं। इन १२ भागों को सरल भाषा में घर कहा जाता है। पहला घर, दूसरा घर आदि।

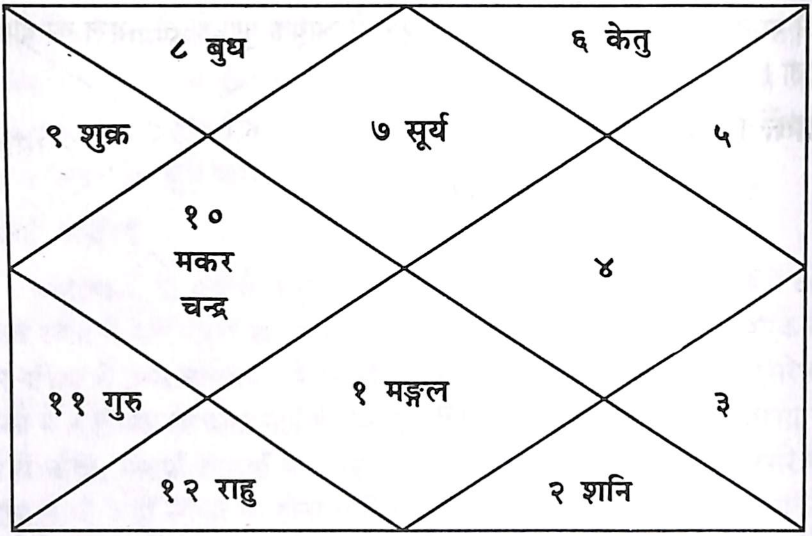

ऐसे उनके अनुक्रम से नाम हैं। जहाँ पहिला घर लिखा है उसके बाँई ओर से (वाम भाग से) गिनती प्रारम्भ होती है। इन घरों को संस्कृत में भाव अथवा स्थान कहा जाता है। भाव अथवा स्थान शब्द ही अधिक प्रचलित है। नवग्रह इन घरों या भावों में कहीं न कहीं रहते हैं। वे नवग्रह रवि, चन्द्र, मङ्गल बुध, गुरु, शुक्र, शनि, राहु और केतु हैं। यह आवश्यक नहीं कि ये ग्रह एक साथ किसी एक घर में रहें, किसी में एक किसी में दो एक साथ किसी में दो से भी अधिक रहते हैं और किसी घर में कोई ग्रह नहीं भी रहता। इनका कोई क्रम नहीं रहता।

प्रथम स्थान में १२ राशियों में से कोई भी राशि हो सकती है। प्रथम स्थान में वह राशि या उसका अंक होता है, जो जन्म के समय में पूर्व क्षितिज पर उदित होती है। प्रथम स्थान में जन्म समय की राशि लिखने के पश्चात् उसके क्रम से अन्य राशियाँ या उनके अंक होते हैं। जैसे– जन्म समय में पूर्वक्षितिज पर तुला राशि उदित है तो वह प्रथम स्थान में लिखी जावेगी। जन्म समय में पूर्वक्षितिज पर जो राशि उदित होती है, वहीं जन्म लग्न की राशि कहलाती है। यहाँ ध्यान में यह रखना आवश्यक है कि प्रत्येक स्थान में एक ही राशि होती है, ग्रहों के अनुसार वह दो या तीन नहीं होती। एक स्थान या भाव या घर में एक ही राशि होगी, जबकि ग्रह एक से अधिक हो सकते हैं।

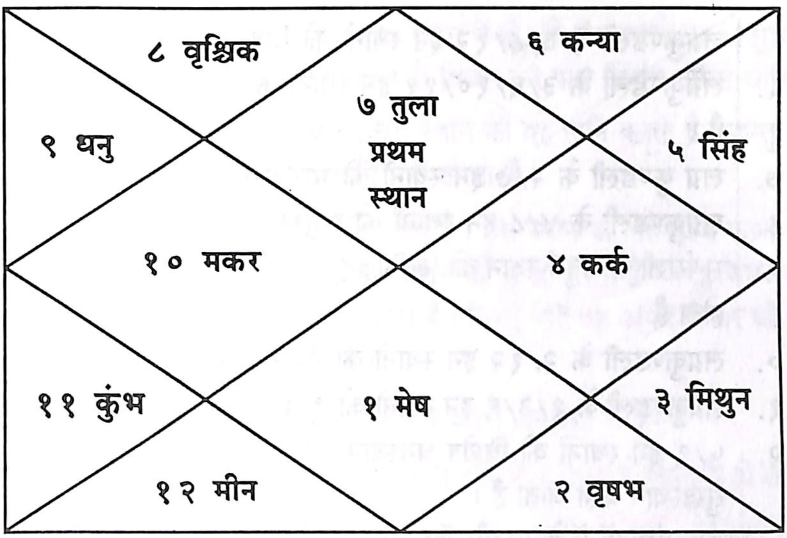

आकृती २

आकृति नं. २ में प्रथम स्थान में ७वाँ अङ्क लिखा है, अत: शंका होती है कि नाम तो प्रथम स्थान है और उसमें लिखा है सातवाँ अङ्क, ऐसा क्यों ? उसमें लिखा हुआ अङ्क राशि का होता है, उस घर अथवा भाव का नहीं। स्थान तो स्थिर है, राशियाँ स्थिर नहीं हैं। प्रथम स्थान में कोई भी राशि और उसका अङ्क हो सकता हैं और प्रथम स्थान या भाव ही लग्न का स्थान होता है। अत: हमें राशियों के अङ्क ध्यान में रखने चाहिए। राशियों के अङ्क इस प्रकार हैं– मेष राशि का अङ्क १, वृषभ का २, मिथुन का ३, कर्क का ४, सिंह का ५, कन्या का ६, तुला का ७, वृश्चिक का ८, धनु का ९, मकर का १०, कुम्भ का ११ और मीन का १२वाँ अङ्क होता है।

लग्न कुण्डली की केन्द्रादि संज्ञाएँ

१. लग्न कुण्डली के- १/४/७/१० इन चार स्थानों को **केन्द्र स्थान** कहा जाता है।

२. लग्न कुण्डली के– २/५/८/११ इन चार स्थानों को **पणफर स्थान** कहा जाता है।

३. लग्नकुण्डली के– ३/६/९/१२ इन चार स्थानों को **आपोक्लिम स्थान** कहा जाता है।

४. लग्न कुण्डली के प्रथम स्थान से ९ (नवम) और ५ (पञ्चम) स्थान को **त्रिकोण** कहा जाता है।

५. लग्नकुण्डली के ६/८/१२ इन स्थानों को **त्रिक स्थान** कहा जाता है।
६. लग्नकुण्डली के ३/६/१०/११ इन स्थानों को **उपचय स्थान** कहा जाता है।
७. लग्न कुण्डली के २/७ इन स्थानों को **मारक स्थान** कहा जाता है।
८. लग्नकुण्डली के ४/८ इन स्थानों को **चतुरस्र स्थान** कहा जाता है।
९. सूर्यराशी से चतुर्थ स्थान को 'अभिजित्' कहते हैं, यह स्थान सर्वदा बलिष्ठ होता है।
१०. लग्नकुण्डली के २/१२ इन स्थानों को नेत्रस्थान कहते हैं।
११. लग्नकुण्डली के १/३/९ इन स्थानों को बुद्धि के कारकस्थान कहा जाता है।
१२. ५/९ इन स्थानों को विशेष धनस्थान और ४/१० इन स्थानों को विशेष सुखस्थान कहा जाता है।

उपर्युक्त संज्ञाओं में केन्द्र और त्रिकोण स्थान विशेष शुभ और त्रिक स्थानों को अशुभ समझना चाहिए।

फलादेश के कतिपय स्थूल नियम

जन्म-पत्रिका के ग्रहों के फलों को बताते समय निम्नांकित साधारण नियमों को ध्यान में रखना आवश्यक है—

१. किसी भी स्थान का स्वामी यदि वह शुभ ग्रह हो, अथवा स्वक्षेत्री हो, मित्र क्षेत्र में हो या अपनी उच्चराशि में हो, अथवा केन्द्र में हो, अथवा त्रिकोण में स्थित हो, और पापग्रहों की दृष्टि उस पर न हो, अथवा वह पापग्रह से युक्त न हो, तो जिस स्थान का वह स्वामी होगा, उस स्थान का वह शुभ फल देगा।

२. किन्ही दो स्थानों के स्वामी यदि वे एक दूसरे को देख रहे हों, अथवा एक-दूसरे के घरों में स्थित हों, तो उस भाव का शुभफल प्राप्त होगा।

३. कोई भी पापग्रह यदि अपने स्थान में, मित्र के घर में, अपनी उच्चराशि में अथवा शुभग्रह की राशि में स्थित हो तो, वह शुभफलदायक होता है।

४. किसी भी स्थान का स्वामी यदि अपने स्थान से १।४।५।७।९।१०। इनमें से किसी एक स्थान में हो, तो भी, जिस स्थान का वह स्वामी होगा, उस स्थान का वह शुभफल देगा।

५. यदि किसी भी स्थान का स्वामी पापग्रह हो, पापग्रह से युक्त हो, अथवा दृष्ट हो, अथवा शुभ ग्रह होने पर भी नीच स्थान में स्थित हो, अथवा शत्रु क्षेत्र में हो, अथवा

लग्न से अथवा अपने स्थान से ६।८।१२। स्थान में हो, तो उस स्थान का अशुभफल प्राप्त होगा। तात्पर्य यह है कि उक्त प्रकार से विचार कर फल निर्णय करना चाहिये।

६. गुरु जिस स्थान में होता है, उस स्थान की वह हानि करता है, परन्तु यदि वह अपने ही घर का हो, तो वह हानि नहीं करता है।

७. जिस स्थान पर गुरु की दृष्टि होती है। उस स्थान की वह वृद्धि करता है। शनि जिस स्थान पर स्थित रहता है उस स्थान की वृद्धि करता है किन्तु जिस स्थान को वह देखता है उस स्थान का नाश करता है। किन्तु यदि वह अपने ही घर को देख रहा हो तो, अशुभ फल नहीं देता है।

८. मंगल को भी इसी प्रकार फल देने वाला समझना चाहिए।

९. पापग्रह यदि उपचय स्थान में अर्थात् लग्न से ६।८।११ स्थान में हो तो उसे बलवान् समझना चाहिये।

१०. लग्न से तीसरे अथवा ग्यारहवें स्थान में स्थित कोई भी ग्रह बलवान् होता है।

११. कोई भी ग्रह त्रिक स्थान में (अर्थात् ६।८।१२) स्थित होने पर वह निर्बल होता है।

१२. बलवान् ग्रह अपनी महादशा में शुभफल देते हैं। सारांश यह है कि किसी भी भाव के फल को कहते समय उस भाव के सप्तम में कौन से ग्रह हैं, उस भाव का स्वामी शत्रु क्षेत्र में है या मित्रक्षेत्र में है, उच्च का है या नीच का है, शुभग्रह से युक्त है या पापग्रह से युक्त है, या दो पाप ग्रहों की कर्तरी में अथवा उसका अन्योन्य क्षेत्र संबन्ध है ? अर्थात् मेषराशि का स्वामी सिंह राशि में या सिंह राशि का स्वामी मेष राशि में है, ऐसा होने पर (यह योग शुभ होता है।) आदि बातों का विचार कर, फलादेश कहना चाहिये। वास्तव में ग्रहों का फल बतासकना अपने अनुभव पर होता है। अत: सभी योगों के फल किसी भी बड़े ग्रंथ में नहीं, होते, उन्हें तो अपने बुद्धि-बल से ही बताना होता है।

जन्म-पत्रिका पर से ग्रहों का फल देखते समय भाव (स्थान) का ही सर्वप्रथम विचार करना होता है। इसके पूर्व भावों का जो वर्णन किया गया है, उस पर से यह तो ज्ञात हो गया होगा ही कि, प्रत्येक भाव सभी प्रकार का फल निर्देशित नहीं करता, अत: मनुष्य के जीवन के जिस विषय के सम्बन्ध में फल को देखना हो तो, उस विषय

का फल देने वाले विशिष्ट भाव को ही देखना पड़ता है। जैसे– पत्रिका पर से यदि रोग के सम्बन्ध में फल देखना हो तो उसे एकादशभाव पर से ज्ञात करना संभव नहीं होगा। अत: उस फल को देखने के लिए षष्ठभाव को ही देखना पडेगा, यह विशेष रूप से ध्यान में रखना होगा। तात्पर्य यह है कि फलादेश की कल्पना करते समय विशिष्ट प्रश्न से सम्बन्धित विशिष्ट भाव को ही देखना चाहिए। यही उसका प्रथम साधन है। अमुक फल अमुक भाव से देखना चाहिए, यह एक बार निश्चित हो जाने पर, उस भाव की उदित राशि, उस भाव का अधिपति, उस भाव में स्थित ग्रह, और उस भाव से दृष्टियोग करनेवाले ग्रह इत्यादि के सम्बन्ध से उस फल का शुभाशुभ निर्णय करना होता है। भावों की तरह ही फलादेश के विषय में ग्रहों को भी कारकत्व दिया गया है। इसके पूर्व ग्रहों के भाव और उनके कारकत्व को बताते समय, इस विषय में बताया ही गया है। अत: सर्वप्रथम भाव पर से फल निर्णय करना चाहिए, तत्पश्चात् उस फल के कारक ग्रह पर से भी फल की कल्पना करनी चाहिए और ग्रहों के पारस्परिक योग पर से जो कुछ स्वतंत्र फल दिखाई देता है, उसका भी विचार करने के बाद फल कथन करना चाहिए।

फलादेश कथन करने के सम्बन्ध में एक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि ज्योतिषी को देश-काल और परिस्थिति का भी पूर्ण ज्ञान होना चाहिए। यह नहीं होने पर उसे यश नहीं मिलेगा। जैसे– अपने देश में २०० वर्ष पूर्व के काल में और आज के काल की बातों में बहुत अधिक अन्तर आ चुका है। उद्योग-व्यवसाय, स्त्री-शिक्षा, विवाह की मर्यादा, उम्र की मर्यादा, धार्मिक आचार विचारों में बहुत परिवर्तन हो चुका है। अत: फलादेश कहते समय उक्त बातों को ध्यान में ध्यान में रखकर ही चातुर्य से फलादेश कथन करना चाहिए। अलग-अलग जन्मपत्रिकाओं में एक ही प्रकार के ग्रह-योग हो सकते हैं, किन्तु भिन्न देश-काल-परिस्थिति के कारण तथा भिन्न जाति धर्म, भिन्न कुलपरंपरा आदि के कारण फलादेश भी भिन्न हो सकता है। अत: ज्योतिषशास्त्र के अनुसार फलादेश के नियमों का ज्ञान प्राप्त कर लेने पर ज्योतिषी के सामने जब, जिस समय, जिस प्रकार की पत्रिका आवे उसका बड़े चातुर्य से विचार कर, फलादेश कथन करना ही योग्य होता है। पूर्व में कथितानुसार फलादेश के मूलभूत विषय– राशि, भाव और ग्रह– इन सबका स्वतंत्र ज्ञान होने पर, फलादेश कथन करने में सरलता होगी। अत: अनेकविध शैलियों के ज्योतिषशास्त्र के ग्रंथों का निरंतर अध्ययन करना आवश्यक है। और अलग-अलग पत्रिका निरीक्षण करने का का अभ्यास भी होना चाहिए। जिससे

अपने ज्ञान में वृद्धि होती है। ज्योतिषी को पत्रिकाओं को देखने का अनुभव अधिक होना चाहिए। तभी उसे यश की प्राप्ति हो सकती है।

द्वादश भावों से निम्नलिखित बातें जानी जा सकती हैं–

१. प्रथम भाव– अर्थात् पत्रिका के जन्म लग्न भाव से देह (तन) रङ्ग, आकृति, यश-मान, गुणत्व, विवेकशक्ति, सुख-दुःख, प्रवास, तेज, बल, प्रारब्धयोग, मस्तिष्क, स्वाभाव, आयु, शारीरिकचिह्न, रोगरोधकक्षमता। शरीर की ऊँचाई अर्थात् व्यक्ति ऊँचा है या ठिगना, बोना है। स्थूल है या कृष, दुर्बल प्रभाव, स्वास्थ्य। पत्रिका में प्रथम लग्न स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होता है।

२. द्वितीय भाव– (धनस्थान) धनभाव आदि विषयक घर है। विवेक, दाहिना नेत्र, परिवार, कुटुम्बसुख, गुणज्ञता, वचन, विद्या, भोजन, यात्रा, स्वर्ण रत्नादि, कोष-विपुलधनसम्पदा, चलसम्पदा, मृत्यु का तरीका, वाणी, दृष्टि, स्वाद और सत्य। पूर्वजों से प्राप्त धन, कृपण या खर्चीला स्वभाव, कोटुम्बिक स्थिति, दाँत, जिह्वा, गला, दाँतों की दुर्गन्ध, नेत्रसौन्दर्य, दृष्टिदोष आदि का विचार किया जाता है। इसे धन स्थान या कुटुम्ब स्थान से जाना जात है।

३. तृतीय भाव (भ्रातृस्थान)– पराक्रम, हाथ, कान, महत्त्वाकांक्षा, नौकर, सुख-दुःख, हस्ताक्षर, मित्रता, रहन-सहन, वृत्ति, उद्योग, यश, अपमान, माता-पिता, मरण, खांसी दमा, औषधज्ञान, बंधु-बांधव, सहोदर, मांस पेशियों की क्षमता, अचल सम्पदा, कर्म और श्रम। बन्धुओं से प्रेम या शत्रुता, निर्धनता, धन विपुलता, गले का विकार, मानसिक भय, मन की संवेदना, विचार क्षमता, पत्र लेखन से ग्रन्थ लिखने तक की क्षमता का विचार। भाषणकला, एकाग्रता, चंचलता आदि को पराक्रम स्थान या सहोदर स्थान से जाना जाता है।

४. चतुर्थभाव, मातृभाव– विद्याविचार, मातृसुख-दुःख, पशुपालन, कृषि कर्म, जमीन, जायदाद, नवनिर्माण मनोवृत्ति, मानसिक सुख-दुःख, गृहसुख, उपभोग, रहन सहन, हृदय का साहस, जीवन की उन्नति, कार्य प्रसाधन क्षमता, ऐश्वर्य, कीर्ति, वाहन सवारी योग, प्राथमिक विद्या, संस्कार दीक्षा, स्नेह, हृदय, फेफडे, नैतिकचरित्र, पिता के संस्कार। मित्र सौख्य, माता का स्वभाव, सोतिली माता, मामा के घर विचार किया जाता है।

५. पञ्चम भाव (पुत्र सन्तान तथा विद्या स्थान)– बुद्धि, विवेक, देव भक्ति,

विद्या, योग, भौतिक विद्या, शस्त्र निपुणता, सट्टा लॉटरी, राजनीति प्रतिष्ठा, लेखन, वाक्यपटुता, साहित्य, रोग, भाग्य ज्ञान, उदर, जिगर, अमाशय, गर्भधारण, गर्भाशय की स्थिति, गर्भाशय की विकृति (स्त्रियों की पत्रिका में) प्रसूति, सन्तति से होने वाले सुख-दुःख, सन्तति का भाग्य, पुत्रादिसे मतैक्यता, उनकी अनुकूलता प्रतिकूलता, पुत्रचिन्ता। यह भाव पुत्र स्थान (विद्या स्थान) के रूप में जाना जाता है।

६. षष्ठ भाव– (रिपु स्थान) इसमें रोग, शत्रु ऋण आदि का विचार किया जाता है। व्यसन, चोट, विरोध, रोग, मामा पक्ष, चोरीभय, हानि, स्वजन विरोध, कमर, पैर, धोखा, मनःसन्ताप, क्रूरकर्म, मुक्दमा विवाद, चिन्ता, पाचनक्रिया, शारीरिक ताप, कफ, क्षय, उष्णरोग, सन्धिवात, अतिसार, रक्तदोष आदि का विचार किया जाता है। देखाजाय तो प्रथम स्थान शरीर पोषक है, किन्तु षष्ठ स्थान मारक है। भूत पिशाचादि से होने वाला त्रास, मामा की आर्थिक स्थिति। यह स्थान अशुभ माना जाता है।

७. सप्तम भाव– (भार्या जाया स्थान) स्त्री विवाह। स्त्री का रूप रंग (स्त्रियों की पत्रिका में पति विषयक माहिती) गुण, स्वभाव, स्त्रीसुख, विवाह, लाभ-हानि, व्यभिचार, न्यायालय, व्यापारक्रिया लाभ, भतीजा पक्ष, गुमा हुआ धनलाभ, मुकदमा, युद्ध क्षेत्र, स्वास्थ्य, दाम्पत्यजीवन, काम क्रीडाएँ, मूत्राशय स्थान, अण्डकोश, लिंग, योनि वासना, अर्शरोग, प्रेम, शत्रुओं पर विजय, जीवन साथी की आयु, सुख इत्यादि का विचार किया जाता है। इस स्थान का नाम मारक स्थान भी है। यहाँ से लघु प्रवास भी देखा जाता है। ज्योतिषियों ने इसे यात्रा स्थान भी कहा है।

८. अष्टम भाव– प्रकृत भाव आयु विचारणीय है। रिश्वत, भूगतधन, लाँटरी, आकस्मिक धनलाभ, जलयात्रा, ससुराल से लाभ, चिन्ता, शत्रु, गुप्तरोग, विकार, स्त्रीलाभ, सर्पदंश, व्यसन, ऋणत्व, संकट, मृत्यु, उसका स्वरूप, कारण, स्थल, काल आदि, तीव्र प्रकार का दुःख, स्त्रियों की पत्रिका में सांसारिक सुख की दृष्टि से यहाँ विचार किया जाता है।

९. नवम भाव (भाग्य स्थान)– जलयात्रा, वायुयात्रा, धर्म, पाप-पुण्य का विवेक, उदारता, दान, यन्त्र-मन्त्र, साधना, पौत्रसुख, सम्पन्नता, ज्ञान पिपासा, तीर्थाटन, साहित्य रचना, ज्योतिष, पिता पुत्र, देवता, धर्मविषयक रुचि, पूज्य जनों के प्रति आदर सम्मान, परोपकार भावना, भाग्यवृद्धि, परदेशगमन योग की दृष्टि से यह नवस्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

१०. दशम स्थान (कर्म स्थान)– पिता का काम, रंग, वृत्ति, गुण स्वभाव, आयु, उत्कर्ष सम्मान, उच्चपद, राजयोग, नौकरी, पिता का सुख, अधिकार, विरासत, यात्राएँ, विदेश प्रवास, लक्ष्यप्राप्ति, स्वप्न। कृषिकार्य करने की पात्रता अपात्रता, पिता के विचारों से मेल या विरोध आदि का विचार किया जाता है। स्त्रियों की पत्रिका में अलंकार प्रेम, निद्रासुख, निद्रा के विकार का भी विचार किया जाता है। पाश्चात्य विचारकों के अनुसार दशम स्थान से माँ का विचार और चतुर्थ स्थान से पिता का विचार किया जाता है।

११. एकादश भाव (लाभ स्थान)– यह आय स्थान भी कहलाता है। मित्र सुख, भाई, समाज में श्रेष्ठता, वाहन लाभ, सुख, प्रापर्टी योग, मशिनरी कार्य, मेलमिलाप, क्रिया कुशलता, आकस्मिक लाभ, आभूषण, ऐश्वर्य, कर्मकाण्ड, देवोपासना, सभी प्रकार के स्वार्थ, अभिलाषासिद्धि, स्त्रियों से होने वाले लाभ इसी स्थान से देखे जाते हैं।

१२. द्वादश स्थान (व्ययस्थान)– वामनेत्र, दूरयात्रा का विचार, व्यसन, दुराचरण, कारावास, दण्ड, ऋण, अपयश, कलह, मुकदमा, शत्रुत्व, वृद्धावस्था, विदेश भ्रमण, गुप्तकार्य, रोग, विरक्ति, संन्यास मोक्ष, आत्महत्या, राजकीय संकट, स्त्री के कारण उत्पन्न शत्रु, स्त्री द्वेष, स्त्रियों के रोग, पाप, शय्यासुख, मुक्ति की दृष्टि से यह महत्त्वपूर्ण स्थान है। शरीर के प्रत्येक अंगों पर होने वाले प्रभाव-**प्रथमभाव का प्रभाव**-चेहरा, मस्तक, केश आदि पर होता है। **द्वितीयभाव का**-गर्दन, गला, सीधी आँख पर होता है। **तृतीयभाव का**-सीधा कान, हाथ, स्कन्ध, फेफड़ों पर प्रभाव होता है। **चतुर्थ भाव का प्रभाव**-छाती, उदर, वक्षःस्थल, स्तनों पर होता है। **पञ्चम भाव का प्रभाव**–हृदय पर होता है, (पाश्चात्य दृष्टि से।) **षष्ठ भाव का प्रभाव**-पचनेन्द्रिय, आँतों पर होता है। **सप्तमभाव का प्रभाव**-गुह्येन्द्रियों पर, मूत्राशय, कमर पर होता है। **अष्टमभाव का प्रभाव**-शुक्राशय, स्त्रीबीज, उत्पादक ग्रन्थि, गुदद्वार आदि पर होता है। **नवमभाव का प्रभाव**-कमर से नीचे और घुटने के ऊपर के भाग पर होता है। **दशमभाव का प्रभाव**-घुटनों पर होता है। **एकादशभाव का प्रभाव**-वाम, बायाँ कान, घुटनों से चरण तक के भाग पर होता है। **द्वादशभाव का प्रभाव**-पैर, पैर का तला नेत्र पर होता है।

द्वादश स्थानों की अन्य संज्ञाएँ–

ज्योतिष के ग्रन्थों में उक्त द्वादश स्थानों की अनेक संज्ञाएँ प्राप्त होती हैं। नवीन अध्येता भिन्न-भिन्न संज्ञाओं से भ्रमित हो जाता है। अतः उन सभी का हमने संग्रह अधोलिखित कर दिया है—

१. प्रथम स्थान– लग्न, मूर्ति, अङ्ग, तनु, उदय, जन्म, होरा, आत्मा, शरीर, वपु, आद्य और कल्प ये १२ (बारह) नाम हैं।

२. द्वितीय स्थान– स्व, कोश, अर्थ, वाक्, भुक्ति, नयन, कुटुम्ब और धन ये ८ (आँठ) नाम हैं।

३. तृतीय स्थान– सहज, विक्रम, सहोदर, वीर्य, धैर्य, कर्ण, भ्रातृ और दुश्चिक्य ये ८ (आठ) नाम है।

४. चतुर्थ स्थान– अम्बा, पाताल, वृद्धि, क्षिति, सुख, वेश्म, तुर्य, हिबुक, गृह, सुहृत्, वाहन, यान, बंधु, अम्बु, नीर और जल ये १६ (सोलह) नाम हैं।

५. पञ्चमस्थान– तनय, बुद्धि, विद्या, आत्मज, पञ्चम, राज, पितृनन्दन, प्रतिभा वाक्स्थान और तनुज– ये १० (दस) नाम हैं।

६. षष्ठ स्थान– रिपु, द्वेष, वैरी, क्षत रोग, अंश, शस्त्र, व्याधि, लोभ, मत्सर, क्रोध, भंग और षष्ठ– ये १३ (तेरह) नाम हैं।

७. सप्तम स्थान– जामित्र, अस्त्र, स्मर, मदन, अज्ञता, निवृत्ति, युवति, कलत्रसम्पत्, मद, घून और काम– ये ११ (ग्यारह) नाम जायास्थान के हैं।

८. अष्टम स्थान– रन्ध्र, आयु, छिद्र, याम्य, निधन, रण, विनाशन, बन्ध, च्युति, लयपद, अष्टम और मृत्यु– ये १२ (बारह) नाम हैं।

९. नवम स्थान– गुरु, धर्म, शुभ, नवम, तप भाग्य, विभु और मार्ग– ये ८ आठ नाम हैं।

१०. दशम स्थान– तात, आज्ञा, मान, कर्म, आस्पद, गगन, नभ, व्योम, मेषूरण, मध्य, व्यापार और दशम– ये १२ (बारह) नाम दशमस्थान के हैं।

११. एकादशस्थान– उपांत्य, भव, आय, लाभ, तप और अय ये– ६ (छ:) नाम एकादश स्थान के हैं।

१२. व्ययस्थान– भान्त्य, अन्तिम, द्वादश और रि:फ– ये ४ (चार) नाम व्यमस्थान के हैं।

गोचर विचार

लग्न से शरीर का, सूर्य से आत्मा का एवं चन्द्र से मन का, विचार होता है। समस्त कार्य मन पर ही अधिक निर्भर करते हैं। मन से ही सुख, दु:ख का अनुभव होता है। मन की प्रसन्नता से ही समस्त कार्य सिद्ध होते हैं। इसलिए प्रत्येक मनुष्य के जीवन में मन को स्थिर तथा शान्त रखने के लिए जन्म राशि अर्थात् चन्द्रराशि की आवश्यकता होती है। महर्षियों ने जन्म कालिक चन्द्रमा को चन्द्रलग्न मानकर उस स्थान

से जिन-जिन राशियों के ग्रह भ्रमण करते हैं, वैसा फल उस समय जातक के जीवन में घटित होती है। इसी को गोचर फल कहते हैं। चन्द्रकुण्डली सभी कुण्डलियों में अपना विशेष स्थान रखती है। आचार्यों ने कहा है–

सर्वेषु लग्नेष्वपि सत्सु चन्द्र लग्नं प्रधानं खलु गोचरेषु।

सामान्यतया प्रत्येक राशि में सूर्य, बुध, शुक्र एक मास, मंगल डेढमास, गुरु १३ मास, चन्द्र सवा दो दिन, शनि ३० मास और राहु एवं केतु १८ मास तक रहते हैं। प्रत्येक ग्रह अग्रिम राशि में जाने के कुछ दिन पूर्व ही अपने शुभाशुभ फल देने लगते हैं। जैसे सूर्य ५ दिन, मङ्गल ८ दिन, बुध ७ दिन, शुक्र ७ दिन, चन्द्र ३ घटि, राहु तीन माह, शनि ६ माह, गुरु ५ माह पहले से ही अग्रिम राशि का फल देते हैं।

जन्म राशि से १, २, ४, ५, ७, ८, ९, १२ इन स्थानों में सूर्य, राहु, मङ्गल, एवं शनि हो तो धनधान्य आदि का नाश करते हैं। गुरु जन्म राशि से १, ३, ४, ६, ८, १०, १२ स्थान में स्थित हों तो रोग, दण्ड, विदेशगमन और अपने लोगों से भी विरोध होता है। चन्द्र राशि से ३, ६, ११ स्थान में शनि, सूर्य, मङ्गल एवं राहु होने पर राज्य सम्मान, शारीरिक सुख, तथा धन आदि देते हैं।

चन्द्र कुण्डली का गोचर राशिफल बोधक चक्र

भाव	सूर्य	चन्द्र	मङ्गल	बुध	गुर	शुक्र	शनि	राहु	केतु
१.	स्थान नाश	भाग्योदय	अन्त:शोक	हानिभस्य	अनिष्ट	शुभ,शत्रुनाश	नाश	कष्ट	रोग,हानि
२.	भय	घनहानि	भय	धनलाभ	लाभ	धनलाभ	हानि	घन	नाश,हानि
३.	घन	जय	जय	भय	स्थितिनाश	धनवृद्धि	लाभ	आरोग्य	सुख
४.	मानहानि	रोगभय	स्थानभ्रंश	धनलाभ	बन्धुकष्ट	सुख	शत्रुवृद्धि	शत्रवृद्धि	भय
५.	दैन्य	शोक	ज्वर	स्त्रीकलह	पुत्रसुख	पुत्रसुख	नाश	शोक	शोक
६.	विजय	आरोग्य	विजय	अलाभ	रोग,विरोध	कष्ट	लाभ	धन,सुख	धन,सुख
७.	भ्रमण	सुख	स्त्रीकलह	विरोध	यात्रा	पीडा	स्त्रीकष्ट	हानि	दुर्गति
८.	पीडा	दु:ख	ज्वर	पुत्रसुख	मार्गक्लेश	सम्पत्ति	शत्रुभय	रोग	राजभय
९.	धर्म हानि	रोग	दीनता	विघ्न	शुभ	सुख	धर्महानि	पाप	दैत्य
१०.	कार्मसिद्धि	इष्टसिद्धि	कार्यनाश	सुख	धनकष्ट	कलह	वैर	वैर	शौक
११.	धनप्राप्ति	प्रसन्नता	लाभ	लाभ	पुत्रसुख	लाभ	आयुवृद्धि	सुख	यश
१२.	कष्ट	व्यय	मानाश	पराभव	दु:ख	अर्थ,लाभ	हानि	शोक	धनक्षय

जन्मकाल में चन्द्रमा की राशि को लग्न मानकर बनी कुण्डली को चन्द्रकुण्डली कहते हैं। इस चन्द्र राशि से जो ग्रह जिस भाव में रहता है तदनुसार फल देता है, वह गोचर फल कहलाता है।

उदाहरणार्थ– किसी की जन्मकुण्डली में चन्द्र तुला में है तथा वर्तमान काल में

शनि मानों कन्या में है तो गोचर के शनि १२वें भाव में कहलायेंगे, जिसका फल उपरोक्त बनी सारिणी में हानि है। शनि एक राशि में प्राय: २ वर्ष ६ माह रहता है। गोचर के शनि, १२, १ और २ में प्राय: अशुभ फल देते हैं। अत: यह काल साढेसाती कहलाता है। ८, ९, १० में भी शनि अशुभ है, अत: यह भी साढेसाती तुल्य ही है। गोचर फल शुभ तभी होगा जब निम्न भावों में कोई ग्रह न हो। सूर्यफल हेतु ४, ५, ९, १२, चन्द्र हेतु २, ४, ५, ८, ९, १२, मङ्गल शनि, राहु और केतु हेतु ३, ६, ११, बुध हेतु १, ३, ५, ८, ९, १२, गुरु हेतु ३, ४, ८, १०, १२ एवं शुक्र हेतु १, ३, ५, ६, ७, ८, १०, ११ में कोई ग्रह न हो तभी उपर्युक्त सारणी का शुभ फल प्राप्त होगा। इन्हें विद्ध स्थान कहते हैं। विद्ध स्थानों में पिता पुत्र सम्बन्ध वाले ग्रह हों तो वेध का प्रभाव नहीं पडता। सूर्य, शनि तथा चन्द्र, बुध में पिता पुत्र सम्बन्ध है। जैसे– वर्तमान में सूर्य यदि किसी व्यक्ति की जन्म राशि से १०वें भाव में हो और उसे ६ भाव आगे अर्थात् चतुर्थ में शनि के व्यतिरिक्त कोई ग्रह न हो तो कार्य सिद्धि होगी। विपरीत वेध शुभ होता है। अर्थात् वेध स्थान (सूर्य हेतु) जन्म राशि से ४, ५, ९, १२ में वह ग्रह हो और शुभस्थान में अन्य ग्रह हों तो अशुभ फल भी शुभ बन जाता है। चन्द्रमा शुक्ल पक्ष में २, ५, ९ स्थानों में शुभ होता है यदि ४, ६, ८ में बुध के सिवा कोई ग्रह न रहे।

प्रत्येक लग्न के शुभ-अशुभ ग्रह निम्नानुसार हैं–

लग्न	शुभ	अशुभ	मारक	योग कारक
मेष	र.गु.चं.	बु.शु.शनि	बु.शु.शनि	
वृषभ	र.शनि	चं.शु.गु.	चं.मं.गुरु	शनि
मिथुन	शुक्र	र.गु.मं.	र.गु.मं.	
कर्क	मं.गुरु	बु.शु.	र.बु.शु.	मङ्गल
सिंह	मङ्गल	बु.शु.	बु.शु.	मङ्गल
कन्या	शुक्र	मं.गु.चं.	मं.गु.चं.	बु.शु.
तुला	बु.शनि	र.मं.गु.	र.गु.	चं.बु.
वृश्चिक	चन्द्र	बु.मं.शु.	बु.शु.मङ्गल	र.चन्द्र
धनु	र.मङ्गल	शुक्र	शु.शनि	र.बु.
मकर	बु.शु.	मं.चं.गु.	मं.गु.चं.	शुक्र
कुंभ	शुक्र	र.चं.गु.	चं.मङ्गल	
मीन	चं.मङ्गल	बु.शु.र.श	बु.शु.श.रवि	मं.गु.

ग्रहों के मित्र-शत्रु और सम ग्रह

ग्रह	मित्र	शत्रु	सम
सूर्य	गुरु, मङ्गल, चन्द्र	शनि, शुक्र	बुध
चन्द्र	सूर्य, बुध	राहू	मंगल, गुरु, शुक्र, शनि
मंगल	रवि, चन्द्र गुरु	बुध	शुक्र, शनि
बुध	रवि, शुक्र	चन्द्र	मंगल, गुरु, शनि
गुरु	रवि, चन्द्र, मंगल	बुध, शुक्र	शनि
शुक्र	शनि, बुध	रवि, चन्द्र	मंगल, गुरू
शनि	शुक्र, बुध	रवि, चन्द्र, मंगल	गुरू
राहु	शनि, बुध शुक्र	रवि, चन्द्र, मंगल	गुरू
केतु	शनि, बुध, शुक्र	रवि, चन्द्र, मंगल	गुरू

विशेष– मित्र क्षेत्र में स्थित ग्रह शुभ फल देने वाला होता है। ग्रहों का शत्रु मित्रत्व भाव देखते समय राशितत्त्व को अधिक महत्त्व देना चाहिए। जैसे अग्निराशि के अधिपति ग्रहों में अधिक निकट की मित्रता रहती है। पृथ्वी राशि के अधिपति ग्रहों में मित्रता रहता है। षडाष्टक में स्थित राशि के अधिपतियों में शत्रुत्त्व रहता है। जैसे सिंह राशि से मकर राशि छटी राशि है, अत: रवि और शनि में शत्रुता है। इसके विपरीत सिंह राशि मीन राशि आठवीं होने पर भी अग्नितत्त्व की राशि सिंह, धनु दोनों समान होने से, उनका शत्रुत्व तीव्र नहीं है।

मूल त्रिकोण

रवि की सिंह मूलत्रिकोण राशि है। **चन्द्र** की वृषभ मूलत्रिकोण राशि हैं। **मङ्गल** की मेष मूलत्रिकोण राशि हैं। **बुध** की कन्या मूल त्रिकोणराशि हैं। **गुरु** की धनु मूलत्रिकोणराशि हैं। **शुक्र** की तुला मूलत्रिकोणराशि हैं। **शनि** की कुंभ मूलत्रिकोणराशि हैं। **राहु** मिथुन राशि में मूलत्रिकोणी होता है।

उक्त प्रसंग में ध्यातव्य है कि रवि सिंह राशि में २० अंशपर्यन्त मूलत्रिकोणी समझा जाता है और आगे अर्थात् २० अंशों से अधिक स्वगृही समझा जाता है। चन्द्र वृषभ राशि में ३ अंशों तक उच्च तथा उसके आगे मूल त्रिकोणी होता है। मंगल मेषराशि में १२ अंशों तक मूलत्रिकोणी और उससे अधिक अंशों में रहने पर स्वगृही

समझा जाता है। बुध कन्याराशि में १५ अंशों तक उच्च, २५ अंशों तक मूलत्रिकोणी और अधिक अंशों में स्वगृही, शुक्र तुला राशि में २० अंशों तक मूलत्रिकोणी तथा अधिक अंशों में स्वगृही, और शनि कुम्भराशि में २० अंशों तक मूलत्रिकोणी तथा अधिक अंशों में होने पर स्वगृही होता है।

रवि और शनि ये दोनों ग्रह स्वगृही, उच्च अथवा मूलत्रिकोणी जातक की कुण्डली में सुख कारक नहीं होते हैं तथा मंगल और शुक्र ये दोनों ग्रह जातक की कुण्डली में मूलत्रिकोण में होने पर अनिष्टकारक ही होते हैं।

राशि के अनुसार ग्रह-बल

१. **रवि–** लग्नकुण्डली में लग्न अथवा दशम स्थान में मेष, कर्क, सिंह और धनुराशि का सूर्य अत्यधिक बलवान् होता है। २।४।६।८।१२ इन स्थानों में राशिबली होने के उपरान्त भी हीनफल ही देता है। जैसे– धन स्थान में कुटुम्ब सुख का अभाव और ऋणी, चतुर्थ स्थान में चिन्ताग्रस्त, षष्ठस्थान में शत्रुपीडा, अष्टम स्थान में धननाश तथा शरीरकष्ट और द्वादशस्थान में अत्यधिक व्ययी और ऋणी करता है। राशि के प्रारम्भकाल में यह बलवान् होता है।

२. **चन्द्र–** यह अत्यन्त चञ्चल ग्रह है। चर राशि में होने पर जातक का चित्त स्थिर होने की सम्भावना ही नहीं होती, मनोराज्य में भ्रमण करना, उत्तावला होना आदि दोष देता है। सिंहराशि का चन्द्र जातक को अहोरात्र मान-सम्मान की चिन्ता से ग्रस्त बनाता है। वृश्चिकराशि का चन्द्र वैरबुद्धि और कपटी बनाता है। धनुराशि का चन्द्र जातक को व्यायाम के प्रति सजग करता है। यह राशि के अन्त्यभाग में बलवान् होता है।

३. **मंगल–** मेष, सिंह, वृश्चिक, धनु, मकर, कुम्भ तथा मीन राशि का मंगल बलवान् होता है। अश्विनी, मघा और मूल नक्षत्र का मंगल जातक को पराक्रमी और कुलदीपक बनाता है। मिथुन राशि का मंगल स्वाभिमानी, भाषण और वादविवाद पटु बनाता है। कर्कराशि का मंगल स्त्रीविषयक हीन विचार, तुलाराशि का मंगल उत्साह सम्पन्न तथा कुम्भराशि का मंगल तत्त्वग्राही पाण्डित्य उत्पन्न करता है। यह राशि के प्रारम्भकाल में ही बलवान् होता है।

४. **बुध–** मिथुन और कन्या इस ग्रह की बली राशियाँ हैं। मंगलगृही होने पर जुआ, मद्यपान, कर्ज, नास्तिकता, चौर्यकर्म, निर्धनता और असत्याचरण आदि फल

देता है। शुक्रगृही होने पर गुरूभक्तिपरायण, कौटुम्बिक सुखसम्पन्न और उदारता स्वगृही होने पर वक्तृत्व, युक्तिसम्पन्न, क्षमाशील, ज्ञानी, कलासम्पन्न और उदारता, कर्कराशि में होने पर स्वजनविरोध और धन-नाश, सिंहराशि में स्त्रीद्वेष्टा, सुखहीन, भ्रमणशील और स्वजनों से अनादृत, गुरुगृही होने पर सेवाकुशल, पण्डित, युक्तिसम्पन्न और राजमान्य तथा शनिगृही होने पर कारागार, द्यूतकर्मरत, निर्धनता और ऋणी बनाता है। यह राशि के मध्यभाग में बलवान् होता है।

५. **गुरु–** मेष, कर्क, सिंह, धनु एवं मीन राशि में बलवान् और धनदायक होता है। सिंह और कुम्भ राशियों में अस्तंगत रहने पर गर्भ नहीं टिकता और यदि टिक जाय तो संतति टिकती नहीं है। कर्क, वृश्चिक, मकर और मीन राशि में विपुल सम्पत्ति प्रदान करता है। वृषभ, वृश्चिक, कर्क, मकर और मीन राशि में कन्या संतति अधिक देता है। तुला राशि में गुरु जातक को सत्त्वगुणी बनाता है। यह राशि में मध्यभाग के बली होता है।

६. **शुक्र–** स्वगृही और उच्चराशि में बली रहता है। कर्क और वृश्चिक राशि का शुक्र अनेक स्थानों पर रतिसुख देता है और व्यभिचार प्रवृत्ति उत्पन्न करता है। सिंह और धनुराशि का शुक्र जातक के शरीर को तेजस्वी और बली बनाता है। गुरूगृही अथवा सान्निध्य में होने पर चरित्र निष्कलंक रहता है। यह राशि के मध्यभाग में बली होता है।

७. **शनि–** तुला, मकर, कुम्भ इन राशियों में बली रहता है। मिथुन, तुला और कुम्भ राशि में दातृत्वशक्ति सम्पन्न बनाता है। मेष, कर्क, सिंह, वृश्चिक एवं धनु राशि का शनि अनिष्ट फल देता है। कर्क एवं मकर राशि का शनि कफ विकृति, सर्दी, दमा इत्यादि विकार उत्पन्न करता है। यह राशि के अन्त्यभाग में बलवान् होता है।

८-९. **राहु-केतु–** ये ग्रह स्वगृही और उच्च स्थानों में शुभफलकारक होते हैं। राहु-मेष, वृषभ, मिथुन, कर्क, कन्या और कुम्भ राशि में बलवान् होता है। केतु-वृषभ, कर्क, वृश्चिक, धनु और मीन राशि में बली होता है।

ग्रह अपनी राशि से सातवी राशि में निर्बली रहता है। निर्बलीग्रह अथवा परिणाम कारक रहता है। यथा रवि अपनी राशि सिंह से सातवीं राशि कुंभ में निर्बल रहता है। इसी प्रकार चन्द्र मकरराशि में, मङ्गल तुला और वृषभ में, बुध धनु और मीनराशि में, गुरु मिथुन और कन्याराशि में, शुक्र मेष और वृश्चिकराशि में, शनि कर्क, सिंह राशि में निर्बल रहता है।

ग्रहों का भाग्योदय काल

सूर्यादि सभी ग्रह स्वगृह में, उच्चराशियों में, मित्र क्षेत्र में और मूलत्रिकोण में होने पर तथा यदि वे शत्रु क्षेत्र में न हों, या ८/१२ वें स्थान न हों, या पापग्रहों से दृष्ट न हों तो आगे लिखे अनुसार उन-उन ग्रहों के कारण मनुष्य की आयु के उन-उन वर्षों में उनका भाग्योदय होता है। यथा रवि के कारण से २२ वें वर्ष से, चन्द्र के कारण २४ वें वर्ष से, मङ्गल के कारण २८वें वर्ष से, बुध के कारण ३२ वें वर्ष से, गुरु के कारण १६ वें वर्ष से, शुक्र के कारण २४ वें वर्ष से और शनि के कारण ३० वें वर्ष से मनुष्य का भाग्योदय होता है।

मेषादि लग्नों में शुभाशुभ ग्रह

१. **मेष लग्न में–** जन्म होने पर लग्न में बुध, शुक्र एवं शनि अनिष्ट होते हैं, क्योंकि बुध षष्ठेश, शुक्र मारकेश एवं शनि लाभेश होता है। रवि एवं गुरू त्रिकोणाधिपति होने से शुभ माने जाते हैं परन्तु व्ययेश भी गुरू ही होने से गुरू का स्थान देखकर ही शुभाशुभ फल का कथना करना चाहिए। जन्मस्थ रवि, चतुर्थ स्थान में गुरु, सप्तम में शनि और दशम स्थान में मङ्गल के होने पर राजयोग होता है। क्योंकि ये चार ग्रह उच्च के होते हैं और वे केन्द्र में स्थित होते हैं।

२. **वृषभ लग्न में–** जन्म होने पर चन्द्र, गुरु और शुक्र ये ग्रह अशुभ होते हैं। क्योंकि चन्द्र तृतीयेश होने के कारण क्षीण पराक्रमी, गुरु अष्टमेश तथा वही लाभेश भी होता है और शुक्र षष्ठेश होता है, भाग्येश और दशमेश शनि होता है जो राजयोग कारक होता है।

३. **मिथुन लग्न में जन्म होने पर–** रवि, मङ्गल और गुरु अनिष्ट ग्रह होते हैं क्योंकि रवि तृतीयेश होता है, मङ्गल षष्ठेश और गुरु मारकेश होता है। यहाँ शनि और गुरु का योग मारक होता है क्योंकि शनि अष्टमेश और गुरु मारकेश है। शुक्र अवश्य पञ्चमेश होने से शुभ होता है। यहाँ बुध और शुक्र का योग होने से राजयोग होता है। क्योंकि यहाँ बुध केन्द्राधिपति और शुक्र त्रिकोणाधिपति होता है।

४. **कर्क लग्न में–** जन्म होने पर बुध, शुक्र और शनि ग्रह अशुभ होते हैं। इनमें बुध तृतीयेश और व्ययेश होता है, शुक्र चतुर्थेश और वहीं से अष्टमेश अर्थात् लाभेश भी होता है। शनि मारकेश और अष्टमाधिपति होता है। पाप ग्रह केन्द्र में होने पर शुभ होते हैं। अतः मङ्गल को शुभ समझना चाहिए। इसके अतिरिक्त मङ्गल ग्रह

त्रिकोण और दशम का स्वामी होने से राजयोग का फल देने वाला भी है। कर्क लग्न में जन्मस्थ गुरु, चतुर्थ शनि, सातवाँ मङ्गल और दशम में रवि ये राजयोग कारक होते हैं।

५. **सिंह लग्न में जन्म होने पर–** बुध और शुक्र अनिष्ट फल देते हैं क्योंकि बुध मारकेश और लाभेश भी होता है। शुक्र तृतीयस्थान का स्वामी होता है और तृतीय स्थान का जो मृत्युस्थान अर्थात् दशम स्थान का भी वही स्वामी होता है। मङ्गल अधिक शुभ रहता है क्योंकि वह केन्द्र का और भाग्य का अधिपति होता है।

६. **कन्या लग्न में जन्म होने पर–** मङ्गल और गुरु ये दोनों अनिष्ट होते हैं क्योंकि मङ्गल तृतीयस्थान का स्वामी होता है, तृतीयस्थान का जो रिपु स्थान अर्थात् जन्मलग्न का मृत्युस्थान, उसका भी वही स्वामी होता है। गुरु मारकेश होता है। चन्द्र भी लाभेश होने से अनिष्ट ही होता है। बुध और शुक्र का योग राजयोग कारक होता है क्योंकि बुध दशमेश और शुक्र भाग्य का स्वामी होता है।

७. **तुला लग्न में जन्म होने पर–** रवि, मङ्गल और गुरु ये अशुभ होते हैं क्योंकि रवि लाभेश, मङ्गल मारकेश और गुरु तृतीयेश होता है और वही षष्ठस्थान का भी स्वामी होता है। शनि और बुध ये त्रिकोणाधिपति होने से शुभ होते हैं। इसमें बुध तथा चन्द्र का योग राजयोग कारक होताा है क्योंकि बुध नवमेश और चन्द्र दशमेश होता है। तुला लग्न में जन्मस्थ शनि, चतुर्थ मङ्गल, सप्तम रवि, और दसवाँ गुरु होने से राजयोग होता है।

८. **वृश्चिक लग्न में जन्म होने पर–** मङ्गल और बुध ये दोनों अशुभ होते हैं क्योंकि मङ्गल त्रिक स्थान का अधिपति और वही लग्नेश भी होता है। बुध लाभेश होता है किन्तु वही मृत्यु स्थान का भी स्वामी है। शनि मध्यम है। गुरु और चन्द्र त्रिकोणाधिपति होने से शुभ होते हैं। इसमें रवि चन्द्र का योग राजयोग कारक होता है। गुरु और शुक्र मारकेश होते हैं।

९. **धनु लग्न में जन्म होने पर–** शुक्र अनिष्ट होता है। क्योंकि वह लाभेश रहता है और त्रिक स्थान का स्वामी भी वही होता है। इसमें रवि, बुध ये दोनों शुभ होते हैं, क्योंकि रवि भाग्येश तथा बुध सप्तम और दशम स्थानों का स्वामी होता है। यहाँ रवि बुध का योग राजयोग का कारक होता है।

१०. **मकर लग्न में जन्म होने पर–** चन्द्र और गुरु अशुभ होते हैं क्योंकि गुरु व्ययेश और चन्द्र मारकेश होते हैं। शुक्र दशम स्थान का और त्रिकोण का तथा बुध

त्रिकोण का अधिपति होता है। अतः ये दोनों शुभ होते हैं। मकर लग्न में जन्मस्थ मङ्गल, चतुर्थ रवि, सप्तम में गुरु और दशम स्थान में शनि, ऐसी स्थिति होने पर उत्तम राजयोग होता है क्योंकि ये चारों ग्रह केन्द्र में होने से उच्च के होते हैं।

११. **कुम्भ लग्न में जन्म होने पर–** गुरु, चन्द्र पापफल देने वाले होते हैं क्योंकि चन्द्र षष्ठेश और गुरु मारकेश होता है। शुक्र त्रिकोण का और केन्द्र का स्वामी होने से शुभ होता है। यहाँ शुक्र, मङ्गल का योग राजयोग कारक होता है।

१२. **मीन लग्न में जन्म होने पर–** रवि, शुक्र और शनि ये तीनों ग्रह अनिष्ट फल देते हैं क्योंकि रवि षष्ठेश, शुक्र अष्टमेश और शनि व्ययेश होता है। मंगल नवमेश और गुरु दशमेश होने से गुरु मङ्गल का संयोग राजयोग उत्पन्न करने वाला होता है। इसी प्रकार चन्द्र मङ्गल त्रिकोणाधिपति होने से शुभ होते है।

सामान्यतः– कर्क, सिंह, धन तथा तुला लग्न में जन्म लेने वाले पुरुष पराक्रमी होते हैं। कन्या, मकर, वृषभ तथा वृश्चिक लग्न में जन्म लेने वाले लोग कृपण तथा कपटी होते हैं। लग्न में त्रिकोण में या दशम में चन्द्र, मङ्गल या गुरु का होना ही बड़ा अधिकार तथा बड़ी सम्पत्ति को देने वाला होता है। पराक्रमी पुरुषों की पत्रिका में प्रायः तीसरे या षष्ठ स्थान में मङ्गल होता है। पञ्चम स्थान में या लाभ स्थान में अनेक ग्रह होने पर मनुष्य संघर्षशील होता है। पत्रिका के किसी भी एक स्थान से, विशेषतः धन स्थान से आगे प्रत्येक स्थान में कोई भी ग्रह हो तो मनुष्य को गजान्तलक्ष्मी देने वाला होता है। ३, ६, ११ इन स्थानों के स्वामी शुभ ग्रह होने पर भी अशुभ फल देते हैं।

ग्रहयोगफलादेश

१. **रवि-चन्द्र शुभयोग–** व्यवसाय में त्वरित प्रगति होती है। अभिजात्य वर्ग का आश्रय प्राप्त होता है। सामाजिक और राजकीय प्रतिष्ठा, न्यून परिश्रम से प्रभूत लाभ, विवाह से लाभ, आध्यात्मिक बल और जीवनशक्ति प्राप्त होती है। किन्तु अशुभयोग होने पर प्रकृति अशक्त, सांपत्तिक संघर्ष, कष्टानुरूप प्राप्ति का अभाव, विवाह पश्चात् नाना दुःख, वरीष्ठ वर्ग से वैचारिक मतभेद, आप्तजनों से सहयोग का अभाव इत्यादि फल प्राप्त होते हैं।

२. **रवि-मंगलशुभयोग–** औदार्य, धैर्य, आरोग्य, कार्यकौशल, अधिकारसम्पन्नता, उच्चस्थानापन्न लोगों से मैत्री, पुलिस-सेना में प्रगति आदि फल

प्राप्त होते हैं। स्त्रियों की कुण्डली में इस योग से विवाह सहज होता है और पति अधिकारी और कर्तृत्व सम्पन्न प्राप्त होता है। किन्तु अशुभयोग में अविचारिता, हठवादिता अपव्ययिता, अपघात से कष्ट, क्रोधी, जातक होता है। स्त्रियों की कुण्डली में इस योग से स्वभाव में उजड्ड एवं क्रोधपूर्ण व्यवहार दृग्गोचर होता है। वैधव्य की सम्भावना भी होती है।

३. रवि-बुधशुभयोग– जातक विद्या व्यासंगी, व्यवहारदक्ष, महत्त्वाकांक्षी, लेखक, शास्त्रज्ञ, व्यापारकुशल, कलारूचिसम्पन्न होता है। किन्तु अशुभयोग में अर्थात् रवि-बुध में ११ एवं २२ अंशों का अंतर होने पर जातक आडम्बरसम्पन्न, मंदबुद्धि, वाचाल, अनेक विषयों में रूचि होने पर भी किसी भी विषय में दक्षता हीन, अनिश्चय सम्पन्न व्यवहार, लेखनकार्य या वादों में विवाद ग्रस्त एवं भीरू प्रकृति का होता है।

४. रवि-गुरूशुभयोग– जातक सुस्वभावसम्पन्न, उदार, नीतिसम्पन्न, भाग्यशाली, उत्तमस्वास्थ्य, बुद्धिमान्, महानकार्यों को करने वाला, उच्चध्येयशाली, श्रीमन्त और उच्चस्थानापन्न व्यक्तियों से मित्रता करने वाला होता है। विवाह अच्छा होता है। स्त्रियों में यह योग भर्तृसुख उत्तम देता है। किन्तु अशुभयोग में साम्पत्तिकहानि, अपयश, अपव्ययी, भाग्योदय में बाधा, नैराश्य को देता है। स्त्रियों की कुण्डली में यह योग पति को आर्थिक अभाव से ग्रस्त बनाता है। यह अशुभयोग वादविवाद में यश नहीं देता और स्वास्थ्य का हानि करता है।

५. रवि-शुक्रशुभयोग– रवि से शुक्र ४७ अंश से अधिक दूर न जाने के कारण उनके मध्य ३०, ३६, ४५ अंशान्तरों का योग हो सकता है। इनके मध्य युतियोग होने पर यदि अन्य ग्रहों से शुभसम्बन्ध होता है तो ही शुभयोग समझना चाहिए। इस शुभयोग में जातक काव्य, गायन, साहित्यशास्त्र, नाट्यकला, चित्रकला, आदि में विशेष अभिरुचि रखता है। सरकारी नौकरी में ऊँचा दर्जा प्राप्त होता है। नैसर्गिक बुद्धिचातुर्य, त्वरित प्रगति, विलासी साधनों की आकांक्षा, स्त्रियों से वार्तालाप में दक्ष, मधुरभाषण में संलग्न भी जातक इस शुभयोग में देखा जाता है। किन्तु अशुभयोग में जातक व्यसनी, अनुदार व्यवहार, अपवाद को प्राप्त करनेवाला, कुटुम्ब में क्लेश भोगने वाला, प्रेमसम्बन्धों में क्लेश प्राप्त करने वाला होता है।

६. रवि-शनिशुभयोग– जातर स्थिरबुद्धि, गम्भीर, यशस्वी, न्यायप्रिय, दृढ़निश्चयी, सम्पत्तिसंरक्षक, सततपरिश्रमी होता है। किन्तु अशुभयोग में संकटपरम्पराग्रस्त, दुर्भाग्यशाली, निर्बल, सरकारी कार्यों में अपयशप्राप्त, आत्मविश्वासहीन, संशयग्रस्त,

आर्थिकविपन्न, अपमान पानेवाला जातक होता है। स्त्रियों की कुण्डली में इस अशुभयोग से पतिसुख नष्ट होता है। पति अशक्त, रोगी, वृद्ध प्राप्त होता है।

७. चन्द्र-मंगलशुभयोग– जातक भाग्यशाली होता है अनेक प्रकार के सौभाग्य उसे प्राप्त होते हैं। वह उदार, धैर्यशाली, शूर, निश्चयी, कार्यकुशल, बुद्धिमान्, आर्थिक उपक्रमों में यशस्वी, सौन्दर्य का उपासक, उपभोगी, यान्त्रिक विद्या में निष्णात, दृढ शरीर एवं दीर्घोद्योगी होता है। किन्तु अशुभयोग होने पर अस्थिर स्वभाव, अविचारी, निरूपयोगी कार्यों में बल का प्रयोग करने वाला, स्त्रियों की संगत में तथा कलाकौशल यश की हानि उठाने वाला, मिथ्याभाषी, होता है। विवाह सुखकारक नहीं होता।

८. चन्द्र-बुधशुभयोग– इस शुभयोग से उत्तम बुद्धिमत्ता प्राप्त होती है। समयसूचकता, विभिन्न भाषाओं के ज्ञान प्राप्त करने की रुचि होती है। वक्तृत्व, लेखन, प्रकाशन, आप्तेष्टमित्रों के साथ प्रेमव्यवहार होने से जीवन सुखमय रहता है। किन्तु इस अशुभयोग से बुद्धिमत्ता का दुरुपयोग होता है, अप्रासंगिक भाषण करने की रुचि, असत्यभाषी, दूसरों की संपत्ति का उपयोग करनेवाला, स्मरणशक्ति की कमी, क्षुद्र-बातों से वाद-विवाद करने वाला और निरर्थक परामर्श देनेवाला व्यक्ति होता है।

९. चन्द्र-गुरुशुभयोग– इस योग से बड़ी संस्थाओं को स्थापित करने का अवसर मिलता है। कीर्ति संपन्नता प्राप्त होती है अध्यात्म विद्या में प्रगति होती है। शिक्षण क्षेत्र में प्रभावात्मक कार्य संपन्न करनेवाला होता है। प्रसन्न वृत्ति का होता है। सुख भोगने वाला, भाग्य संम्पन्न, दूरदर्शी, आशावादी, खुले मन का, शरीर प्रकृति से सशक्त, गंभीर, और उच्च विचारों का होता है। किन्तु इसके अशुभयोग से निश्चिन्त, उदरविकार, अपचन से त्रस्त रहनेवाला व्यक्ति होता है। सट्टा-लॉटरी से हानि होती है। ऐसे व्यक्ति ने बड़े-बड़े सार्वजनिक कार्य नहीं करने चाहिये।

१०. चन्द्र-शुक्र शुभयोग– इस योग से मनुष्य उत्तम कलाकौशल संपन्न होता है। सुस्वभाव का व्यवस्थित और स्वच्छ रहने वाला होता है। विवाह से भाग्योदय प्राप्तकरनेवाला होता है। आराम करने की वृत्ति का, ललित कलाओं में रुचि रखनेवाला मनुष्य होता है। उसके सुस्वभाव के कारण उसे मित्र वर्ग में प्रतिष्ठा प्राप्त होती है। इस योग से स्त्री की पत्रिका में उसका सौन्दर्य वृद्धावस्थातक रहता है। इस अशुभयोग से अधिक व्यय करने वाला, मूर्ख, दुर्बल प्रकृतिका, मलीन रहने वाला, जीवन में सुख

न प्राप्त करनेवाला, स्वेच्छाचारी, चंचल मनोवृत्ति का होने से दुःखी रहने वाला होता है।

११. चन्द्र-शनि शुभयोग– इस शुभयोग से मनुष्य दीर्घोद्योगी, विचारशील शरीर प्रकृति संपन्न, धन संचय करनेवाला, निरंतर श्रमकरनेवाला, मित्रवर्ग से लाभ प्राप्त करनेवाला, होता है। इसके **अशुभयोग से–** दुःखी, निर्धन, रोगी, तत्काल क्रोध करनेवाला, संशयग्रस्त मन का होता है। दाम्पत्य सुख का अभाव भोगनेवाला, कुमार्गरत होता है। ऐसे मनुष्य को पूर्वजन्मकृत पापों से इस जन्म में भी दुःख भोगनेवाला होता है।

१२. मंगल-बुध-शुभयोग– इस योग में बुद्धिमत्ता उत्तम रहती है। उत्तम स्मरणशक्ति के कारण विद्याभ्यास में वरिष्ठता प्राप्त होती है। प्रत्येक कार्य में यश मिलता है। रसायनशास्त्र, शिल्पकला, यंत्रकला हस्तकला कौशल्य में निपुणता होती है। अविश्रांत परिश्रम में आनंद मिलता है। उच्च विचार रहते हैं। विधायक कार्य में रुचि, आप्तजनों से उदार व्यवहार, करने वाला होता है। अशुभ-योग के कारण मनुष्य कटुभाषण द्वारा लोगों को दुःख देनेवाला होता है। वादविवाद करने में रुचि होती है। हीनवृत्ति, शीघ्र कोपी, अशुभ कार्यों के प्रति सहज प्रवृत्त होनेवाला होता है। किसी भी प्रकार से आगे बढ़ने की प्रवृत्ति होती है।

१३. मंगल गुरु शुभयोग– इस योग में मनुष्य अत्यन्त चतुर और कल्पक रहता है। विविध प्रकार के खेलों, बड़े-बड़े व्यवसायों-सार्वजनिक कार्यों में कला-कौशल्य में प्रगति होती है। प्रकृति उत्तम होती है। वह सत्यप्रिय, अर्थसंग्रह के विषय में निश्चिन्त, और परोपकारी होता है। उसे राजकीय कार्यों और जनता में भी कर्तृत्व के कारण प्रतिष्ठा प्राप्त होती है। अशुभयोग के कारण मनुष्य जिद्दी, व्यर्थ के कार्यों में औदार्य प्रदर्शित करनेवाला, द्यूत क्रीडा में भाग लेनेवाला होता है। मित्रों के कारण हानि उठानेवाला, प्रकृति से रोगी होता है। सुखहीन रहता है अनेक कार्य उसके हाथों बिगडते हैं।

१४. मंगल-शुक्रशुभयोग– इस योग से मनुष्य अत्यधिक उत्साही होता है। कलाकौशल्य संपन्न होता है। गायन-वादन कला-नाट्यकला और उदारता आदि के गुण प्राप्त होते हैं। उनमें उसे कीर्ति मिलती है। विवाह शीघ्र होकर लाभप्रद होता है। आप्तेष्टजनों में प्रतिष्ठा प्राप्त होती है। जीवन शक्ति उत्तम होती है। अशुभयोग के कारण निर्धन, बड़ी-बड़ी अभिलाषाएँ करनेवाला होता है। बीभत्सरस प्रिय, सुख-

विलास प्रिय होता है निश्चिन्त प्रकृति होने से कार्यों में हानि उठाने वाला, आर्थिक संकटों का सामना करने वाला होता है। असत्य कार्यों में करने वाला, नीच मनोवृत्ति से अपनी प्रतिष्ठा को नष्ट करनेवाला होता है।

१५. मंगल-शनि शुभयोग– इस शुभयोग से मनुष्य अविश्रान्त परिश्रम से बड़े-बड़े कार्यों को पूर्ण करनेवाला, आत्मविश्वासी, शूर, अपने नीचे कार्य करनेवाले लोगों पर प्रभाव रखनेवाला होता है। कीर्ति संपन्न होता है। अशुभयोग के कारण– मनुष्य का स्वभाव खूँसट, दयाहीन, स्वार्थी, मूर्खतापूर्ण कार्य करनेवाला होता है। शारीरिक अपघातों से कष्ट भोंगनेवाला, और राजकीय तथा व्यावसायिक संकटों को दीर्घकाल तक भोगनेवाला होता है। मित्र वर्गों में अप्रिय, चोरों-डाकुओं से लूटा जानेवाला होता है।

द्विग्रह योग

जन्म लग्न पत्रिका में दो ग्रह एकत्र होने पर क्या-क्या फल देते हैं, बताते हैं-ग्रहों में दो ग्रह या तीन ग्रह उच्च के, मित्र क्षेत्र के या स्व क्षेत्र के होने पर उनका फल सदा अच्छा होता है।

रवि चन्द्र– साथ रहने पर कार्यकुशलता, कपटी व्यवहार तथा यन्त्रादि मशीनों के विषय में रुचि ज्ञात होती है। **रवि, मङ्गल** से पुरुषार्थ, उद्‌भटता, साहस तथा शीघ्र कोप ज्ञात होता है। **रवि, बुध** साथ-साथ होने पर वह पुरुष प्रियवक्ता, दास्यवृत्ति करने वाला, शास्त्रज्ञ तथा धनवान् होता है। **रवि, गुरु** साथ-साथ रहने पर वह पुरुष मन्त्री, सम्पन्न, चतुर और परोपकारी होता है। **रवि, शुक्र** पत्रिका में साथ-साथ होने पर पुरुष गायन-वादन पटु और शास्त्राभ्यासी होता है। **रवि, शनि** साथ-साथ होने पर व्यापार में रुचि, गुणज्ञ, श्रद्धावान् और धनसम्पन्न होता है। **चन्द्र, मङ्गल** के योग में मनुष्य कुटिल, पराक्रमी, लढ़ाई करने वाला और माता-पिता का विरोध करने वाला होता है। **चन्द्र, बुध** के योग में मनुष्य वक्ता, सुन्दर, दयालु और नम्र होता है। **चन्द्र, गुरु** के योग में अत्यधिक षडयन्त्री, विद्वान्, निरन्तर कार्यरत तथा लोकोपकारी मनुष्य होता है। **चन्द्र शुक्र** के योग में व्यापार में चतुर, व्यसनी, इत्र का शौकनी होता है। **चन्द्र, शनि** के योग में अनेक स्त्रियों से सम्भोग करने वाला, दुर्वर्तनी, आलसी और दूरदर्शी होता है। **मङ्गल, बुध** के योग में व्यापारी, चिकित्सक का व्यवसाय करने वाला, अनेक स्त्रियों की इच्छा करने वाला होता है। **मङ्गल, गुरु** के योग में मनुष्य मन्त्रशास्त्रार्थ कुशल और गाँव में श्रेष्ठ होता है। **मङ्गल, शुक्र** के योग में स्त्रियों का शौकीन, द्युत क्रीडा

में रुचि रखने वाला, गर्व करने वाला तथा सभी से विरोध करने वाला होता है। **मङ्गल, शनि** के योग में लड़ाई झगड़ा करने वाला, अन्याय से धन कमाने वाला और सुख रहित होता है। **बुध, गुरु** के योग में मनुष्य संगीतज्ञ, नीतिमान, प्रसन्नचित्त और उदार होता है। **बुध, शुक्र** के योग में विवेकी, गुणवान्, कुटुम्बपालक और बोलने वाला होता है। **बुध, शनि** के योग में मनुष्य चंचल वृत्तिका, झगड़ा करने वाला, दयालु होता है। **गुरु, शुक्र** के योग में मनुष्य विद्वान् और सब प्रकार से सुखी होता है। **गुरु, शनि** के योग में मनुष्य शूर, सम्पत्ति युक्त, यशस्वी और गाँव में श्रेष्ठ होता है। **शुक्र, शनि** के योग में मनुष्य कला कुशल और मल्ल होता है।

त्रिग्रहयोग

रवि चन्द्र मङ्गल– एक साथ होने पर मनुष्य शूर, पापी, यन्त्रविद्या में कुशल होता है। **रवि चन्द्र बुध** साथ होने पर, तेजस्वी, साहसी, निडर होता है। **रवि चन्द्र गुरु** होने पर सुबुद्ध, क्रोधी, मायावी और प्रवासी होता है। **रवि, चन्द्र शुक्र** के योग में परधनाभिलाषी, शास्त्रनिपुण होता है। **रवि चन्द्र शनि** के योग में कलहप्रिय, निर्धन, परतन्त्री होता है। **रवि मङ्गल बुध** के योग में धनपुत्रहीन, दयाहीन, साहसी, तथा मल्ल होता है। **रवि मङ्गल गुरु** के योग में-वक्ता, सत्यभाषी, राजमन्त्री होता है। **रवि मङ्गल शुक्र** के योग में नेत्र रोगी, कुलीन, भाग्यशाली होता है। **रवि मङ्गल शनि** के योग में निर्धन, रोगी, अविचारी, विकलाङ्ग होता है। **रवि बुध गुरु** के योग में धनी, नेत्ररोगी, काव्यज्ञ, कुशल होता है। **रवि बुध शुक्र** के योग में प्रवासी, वाचाल, स्त्री से कष्ट होता है। **रवि बुध शनि** के योग में दैवहीन, सभी से पराजित और त्यक्त होता है। **रवि गुरु शुक्र** के योग में राजमन्त्री, शूर, प्राज्ञ, द्रव्यहीन होता है। **रवि गुरु शनि** के योग में पूज्य, स्वजनत्यक्त, निर्भय, स्त्री-पुत्र-मित्र से सुखी। **रवि शुक्र शनि** के योग में दुराचारी, विकलाङ्ग, शत्रुभयत्रस्त होता है। **चन्द्र मङ्गल बुध** के योग में नीचवृत्ति और मित्रहीन होता है। **चन्द्र मङ्गल गुरु** के योग में स्त्रीलंपट, चौर्यवृत्ति का होता है। **चन्द्र मङ्गल शुक्र** के योग में स्त्री-सुख और मातृसुख सामान्य मिलता है, प्रवासी होता है। **चन्द्र मङ्गल शनि** के योग में युवावस्था के पूर्व मातृनाश, स्वभाव खराब, सभी को अप्रिय होता है। **चन्द्र, बुध, गुरु** के योग में व्यक्ति धन-पुत्र-कीर्तिमान् तथा तेजस्वी होता है। **चन्द्र , बुध, शुक्र** के योग में सौम्यस्वभाव, विद्वान्, नीचवृत्ति तथा व्यर्थ के धन का लोभी होता है। **चंद्र, बुध, शनि** के योग में प्राज्ञ, पूज्य, स्वतन्त्र तथा अस्वस्थ होता है। **चन्द्र गुरु, शुक्र** के योग में प्राज्ञ, कलाकुशल, बहुश्रुत, सदाचारी एवं माता

सुशीला होती है। **चन्द्र, गुरु, शनि** के योग में पुरुष शास्त्रज्ञ, निरोगी, ग्रामाध्यक्ष, होता है। **चन्द्र, शुक्र, शनि** के योग में व्यक्ति लेखक, भाग्यवान् होता है। **मङ्गल, बुध, गुरु** के योग में मनुष्य कवि, धनी, सुशील पत्नी का पति होता है। **मङ्गल, बुध, शुक्र,** के योग में मनुष्य विकृताङ्ग, दुष्ट और उत्साही होता है। **मङ्गल, बुध, शनि** के योग में पुरुष सेवक, प्रवासी, मुख, रोगी होता है। **मङ्गल, गुरु, शुक्र के योग में मनुष्य-** राजप्रिय, सुविद्यपुत्र, स्त्री से सुख पाने वाला और सभी को आनन्द देने वाला होता है। **मङ्गल, गुरु, शनि** के योग में व्यक्ति-निर्दय, नीचवृत्ति का और लोगों से तिरस्कृत होता है। **मङ्गल, शुक्र, शनि** के योग में सुखहीन प्रवासी होता है। **बुध गुरु शुक्र** के योग में सत्पुत्रवान्, भाग्यशाली, सत्कीर्तिवान् और सदाचारी होता है। **बुध गुरु शनि** के योग में धन ऐव्यर्य से युक्त प्राज्ञ और साधुवृत्ति का होता है। **बुध, शुक्र, शनि** के योग में व्यक्ति धूर्त, असत्य बोलने वाला, कुशल, स्वदेश भक्त होता है। **गुरु, शुक्र, शनि** के योग में व्यक्ति कीर्तिमान्, सुशील और धन सम्पन्न होता है।

ग्रहों का भावस्थ बलाबल

प्रथम भाव में शनि बलवान् और रवि, चन्द्र, बुध, गुरु और शुक्र हर्षित रहते हैं। द्वितीयभाव में गुरू बलवान् तथा रवि और मंगल बलहीन होते हैं। तृतीय भाव में मंगल बलवान् रहता है तथा चन्द्र हर्षित रहता है। चतुर्थभाव में सूर्य बलवान्, पंचमभाव में शुक्र बलवान् एवं मंगल तथा शनि हीनबली होते हैं। षष्ठभाव में बुध बलवान् और मंगल हर्षित रहता है। सप्तमभाव में चन्द्रबलवान्, शुक्र हर्षित और मंगल तथा शनि हीनबली होते हैं। अष्टमभाव में शनि बलवान् रहता है। नवमभाव में मंगल और गुरूबलवान् तथा सूर्य हर्षित रहता है। दशमभाव में मंगल बलवान् तथा रवि एवं शुक्र हर्षित होते हैं। एकादशभाव में सूर्य बलवान् तथा गुरु हर्षित होता है और द्वादशभाव में शुक्र प्रबल एवं शनि हर्षित रहता है।

कुछ आचार्यों के मत में चतुर्थस्थानगत बुध, पंचमस्थान का गुरू तथा सप्तमस्थानीय शुक्र मनुष्य को सर्वदा सुखप्रदाता होते हैं और अष्टमस्थानगत शनि सर्वदा दुःखदायक होता है।

प्रथमस्थानगत बुध यश एवं बल की वृद्धि करता है और गुरू सम्पत्तिदायक होता है। तृतीयस्थानीय शुक्र शुभफलकारक, चतुर्थस्थानगत चन्द्र बलदायक, गुरू सम्पत्तिदायक तथा शुक्र शुभफलकारक होता है। षष्ठस्थान में शुक्र शुभफलकारक, सप्तम में शनि बलवान् होता है। दशमस्थानीय रवि बलवान्, मंगल सुखदायक, गुरू सम्पत्तिदायक

और राहु बलदायक होता है। द्वादशस्थानगत शुक्र बलवान् होता है- ऐसा कुछ आचार्यों का मत है।

द्वितीय स्थान का मंगल विफल रहता है उसी प्रकार चतुर्थस्थान में बुध, पंचमस्थान का गुरू, षष्ठ का शुक्र और सप्तम का शनि कुछ आचार्यों की दृष्टि में विफल होते हैं।

एवञ्च भावस्थ ग्रहों के विषय में आचार्यों के मत-मतानन्तर हैं। अत: फलादेश करते समय उपर्युक्त सूचनाओं का चातुर्यपूर्वक विचार करना चाहिए।

राजयोग

राजयोग अनेक हैं, किन्तु स्थलसंकोचवश कुछ राजयोगों का उल्लेख करते हैं।

१. जिस जन्म-पत्रिका में तीन अथवा चारग्रह अपने उच्च या मूल त्रिकोण में बली हों तो प्रतापशाली व्यक्ति मन्त्री या राज्यपाल होता है।
२. जिस जातक के पांच अथवा छ: ग्रह उच्च या मूल त्रिकोण में हों तो वह निर्धन कुलोत्पन्न होने पर भी राज्यशासन में प्रमुख अधिकार प्राप्त करता है।
३. शनि, सूर्य और मंगल ये तीन ग्रह उच्च के होने पर और चन्द्र कर्क राशि का होने पर राजयोग होता है।
४. एक-दो ग्रह उच्च के होने पर मनुष्य राजमंत्री होता है।
५. जिस व्यक्ति के जन्म समय के मेष लग्न में चन्द्र, मंगल और गुरु हो अथवा इन तीनों ग्रहों में से दो ग्रह मेष लग्न में हो तो निश्चय ही वह व्यक्ति शासन में अधिकार प्राप्त करता है।
६. मेष लग्न में उच्च का सूर्य हो, दशम भाव में मंगल हो और नवम भाव में गुरु स्थित हो तो व्यक्ति प्रभाव सम्पन्न मंत्री या राज्यपाल होता है।

निर्धन योग (केमद्रुम योग)

१. यदि चन्द्रमा के साथ में या उससे द्वितीय, द्वादशस्थान में तथा लग्न में केन्द्र में सूर्य को छोड़कर अन्य कोई ग्रह न हो तो केमद्रुम योग होता है।
२. केन्द्र अथवा त्रिकोण में शुभ ग्रह न हों अथवा ३।६।१०।११- इन स्थानों को छोड़कर अन्य स्थान में पापग्रह हों तो द्रव्य की हमेशा न्यूनता रहती है।
३. जन्म पत्रिका में एक भी ग्रह उच्च का, मूल त्रिकोण में, या स्वगृह में या मित्रक्षेत्र में न हो तो दरिद्रयोग होता है।

४. दो या तीन ग्रह नीचभाव के, अथवा सभी ग्रह मेष, कर्क, तुला, मकर या चरराशि में हों अथवा केन्द्र में पापग्रह होने पर अथवा ३/९ वें स्थान में मंगल के न होने पर निर्धन योग होता है।

५. धनस्थान में अकेला शनि हो अथवा व्ययभाव में नीच का शनि-रवि के होने पर द्रव्य होने पर भी नष्ट हो जाता है।

बन्धन योग

२।५।६।९।१२– इन स्थानों में से किसी एक स्थान में पापग्रह होने पर बन्धन योग होता है।

द्वितीय स्थान में राहु-शुक्र योग, द्वादश या षष्ठस्थान में रवि-मंगल-शनि, सप्तम में शनि होने पर बन्धन योग होता है। किन्तु शुक्र नीच का होने पर अपराधी होने पर भी बन्धन योग प्रायः नहीं होता।

वैराग्य योग

दशमाधिपति से युक्त दशम में बुध से दृष्ट शनि के होने पर अथवा चन्द्र-बुध (यदि शनि से दृष्ट) हों तो अथवा मेष, धनु या मीनराशि में, १२ और ८ वें स्थान में केतु के होने पर मनुष्य विरक्त होता है। उच्च या स्वगृह का बलिष्ठ गुरु केन्द्र में, त्रिकोण में या ६।८।११।१२ वें स्थान में होने पर मनुष्य वेदान्ती या ब्रह्मज्ञानी होता है।

नीचकर्म योग

षष्ठ में बुध-मंगल, मकर राशि में मंगल, सप्तम में शनि, लग्न में नीच ग्रह, लग्नेश नीच का और पापग्रहों से युक्त या दृष्ट अथवा व्यय में होने पर अथवा तृतीय स्थान का स्वामी नीच का होने पर मनुष्य रिश्वत लेता और अन्याय या चोरी के नीच मार्ग में द्रव्य प्राप्त करता है। पत्रिका में दो से अधिक नीच ग्रहों के होने पर, विशेष रूप से पापग्रह नीच के होने पर मनुष्य को नीच बुद्धि या नीच संगति प्राप्त होती है।

व्यभिचार योग

सप्तम भाव में मंगल होने पर यदि वह शुक्र से दृष्ट हो तो, या, सप्तम या द्वितीय भाव में पाप ग्रहों से युक्त अथवा दृष्ट शुक्र के होने पर, अथवा सप्तम में नीच का शनि, मंगल, राहु या केतु के होने पर अथवा सप्तमेश शनि होने पर या वह शत्रुगृह में अथवा पापग्रहों से युक्त या दृष्ट होने पर मनुष्य व्यभिचारी होता है। तथापि केन्द्र में, त्रिकोण

में और द्वितीय भाव में शुभग्रह या चंद्र-गुरु होने पर और वे यदि पापग्रह से दृष्ट न हो तो मनुष्य सात्विक होता है।

अनफा, सुनफा और दुरुधर योग

चन्द्रमा से द्वादश भाव में समस्त शुभग्रह हों तो अनफा योग होता है। इस योग के होने पर व्यक्ति चुनाव कार्यों में सफलता प्राप्त करता है।

सुनफा योग

सूर्य को छोड़कर चन्द्रमा से द्वितीय स्थान में कोई शुभग्रह हो तो सुनफा योग होता है। उस योग के होने पर जातक सुखी होता है। उसे ऐश्वर्य-धन आदि प्राप्त होता है।

दुरुधर योग

सूर्य को छोड़कर चन्द्र से द्वितीय स्थान में या १२वें स्थान में कोई भी ग्रह होने पर दुरुधर योग होता है। इस योग में जन्म होने पर मनुष्य, धन, धान्य, पशु-दास-दासी-इन से संपन्न होकर पूर्वजों की संपत्ति प्राप्त करता है।

नाभस योग

'सारावली या बृहज्जातक' आदि ग्रंथों में अनेक नाभस योगों का उल्लेख किया गया है उनमें से कुछ प्रधान योगों को बताते हैं—

१. लग्न और सप्तम– इन दो स्थानों में यदि सभी ग्रह हों तो शकट नाम का योग होता है– इसका फल यह है कि जातक गाडी-यान के किराये से जीविका चलाता है। वह रोगी होता है। उसकी पत्नी मानी होती है, मनकी बात नहीं बताती। कृश और कृपण स्वभाव की होती है। पुरुष को उदर-पीडा का विकार होता है।
२. लग्न में और त्रिकोण में १।५।९ इन तीन स्थानों में ही सभी ग्रहों के होने पर शृंगाटक योग होता है। इससे मनुष्य निरन्तर सुखी रहता है, और वृद्धावस्था में अधिक सुखी होता है। उसका स्वभाव उदार और परोपकारी होता है।
३. लग्न से सप्तमस्थान तक सभी ग्रहों के होने पर नौकायोग होता है– इससे मनुष्य कीर्तिमान, कृपण और अस्थिर सुखी होता है वह अपने भुजबल से धन, यश, और प्रभुत्व प्राप्त करता है।
४. चारों केन्द्रों में सभी ग्रहों के होने पर कमलयोग होता है, इससे मनुष्य गुणवान विख्यात, कुशल, प्रसन्न मुखवाला होता है।

५. लग्न में शनि अथवा चन्द्र, तृतीय में उच्चका शनि, अथवा वहीं मंगल होने पर तथा नवम और पंचम में स्वक्षेत्रीय गुरु, मीन लग्न में गुरु अथवा शुक्र, मेष का सूर्य और मकर का मंगल होने पर मनुष्य धनवान होता है। राजा की तरह वैभव संपन्न होता है। गाय और ब्राह्मण को पूज्य मानता है।

६. चतुर्थ और उसके आगे छह स्थानों में ग्रहों के होने पर कूटयोग होता है। इससे मनुष्य असत्यभाषी होता है और बंधन को प्राप्त होता है।

७. चतुर्थ स्थान से सप्तम स्थान तक सभी ग्रहों के होने पर शरयोग होता है, इससे मनुष्य हीन वृत्ति का, निर्धन और सुखहीन होता है।

स्वप्न-विचार

शुभस्वप्न– रोदन, वीणा वादन, नौका में बैठना, अपने शरीर से रक्त बहना, पानी से स्नान, अपनी मृत्यु, दीप, धान्य, कन्या, पक्षी, देखना, गाय, भैंस, शेरनी का दूध पीना, राजदर्शन, तृण, दूर्वायुक्त भूमि पर चलना, पिता, माता, मित्र का दर्शन इत्यादि स्वप्न आनन्द जनक होते हैं। निरभ्र आकाश, स्वयं का चलना, पुल से बिना लडखडाए दूसरी तरफ जाना, प्रेतदर्शन, स्वागत समारोह देखना, स्वयं दौडना, स्वर्गप्राप्ति, दूसरे को फांसी देते हुए देखना, गृहनिर्माण करना, सीढी चढना, गायन-वादन सुनना, पशु समुदाय देखना, इत्यादि स्वप्नों से त्वरित कार्य सिद्धि होती है। चींटी देखना, स्वयं को उत्तम वेश-भूषा में देखना, अपने को पकडा हुआ देखना, अनाज अथवा कपडे को खरीदना, किला आदि स्वप्न में देखना शुभसूचक होते हैं। तालाब, नदी, समुद्र को तैर कर पार करना, अथवा देखना, चन्द्र-सूर्य मण्डल देखना, बडे राज प्रासाद में जाना, अंक में अथवा पर्वत पर आरोहण, मदिरापान, मांसभक्षण, विष्ठा का अंगों पर लेपन, रक्तस्नान, दहीभात का भोजन, खीरपान, श्वेतवस्त्र, गंध, पुष्प, अलंकार देखना इत्यादि स्वप्नों से मान सन्मान प्राप्त होता है। देव, ब्राह्मण, राजा, हरिण, हाथी, घोडा, सुवर्ण, उत्तम अलंकारों से विभूषित श्वेत परिधान पहनी हुई सौभाग्यवती स्त्री देखना, सिंह, घोडा, बैल, पर्वत, ताडवृक्ष इत्यादि पर चढना, दर्पण, मांस, कमल की प्राप्ति होना, श्वेत सर्प से दंश होना, पानी में मछली काटना, बिच्छू काटना, स्वयं को बंधन में देखना, शरीर, घर, पालखी, गाडी इत्यादि को आग लगी देखना, मुर्गी, मेंढक, मयूर आदि देखना, वन में भटकना इत्यादि स्वप्न धनलाभ, स्त्रीलाभ और कार्यसिद्धि देते हैं। किसी की मृत्यु स्वप्न में देखने पर उस व्यक्ति को आरोग्य एवं आयुष्य की वृद्धि प्राप्त होती है।

अशुभस्वप्न– मधुमक्षिकाओं को उड़ता देखना, भूमि पर द्रव्य इकट्ठा करना, कर्ज लेना, बंदूक की आवाज सुनना, हाथ में चाकू लेना इत्यादि स्वप्न दुःखमूलक होते हैं। पलाश, नीम पर चढना, तेल, लोहा, कपास की प्राप्ति होना इत्यादि स्वप्न शरीर को पीडा देते हैं। घडी बन्द देखना किसी की मृत्युवार्ता का सूचक है। कोयला, कषायवस्त्र, कषायपुष्प माला, आकाश से तारों का गिरना, घी-तेल शरीर को लगाना, केश गिरना, दांत गिरना, कुत्ता, गधा, ऊँट, लोमडी, भैंस, सूअर के दर्शन, प्रेत का ऑलिंगन, काला और नंगा पुरुष देखना, नाक और कान टूटना, पानी अथवा दलदल में डूबना, इत्यादि स्वप्न धनहानि, संकट और शरीर को क्लेश कारक होते हैं। हजामत करना, नाखून काटना, अन्न भोजन करना, काले पुरुष देखना, अमंगल और काले परिधान पहनी हुई स्त्री का आलिंगन करना, पत्र आना, कौआ, सियार, मार्जार का दर्शन, ऊँचाई से नीचे गिरना, स्वयं के पास से पुष्प, फल अथवा अलंकारों को छिनते हुए देखना, गरम पानी पीना, श्राद्धपिंडदान, स्वयं गायन करना, हंसना, क्रोध करना, झूले पर झूलना, बादल आते हुए देखना, राजद्वार में दण्डित होना, गुफा अथवा अंधकार में जाना, प्रसूति के कक्ष में जाना इत्यादि स्वप्न हानिकारक होते हैं।

स्वप्न का समय– रात्रि के प्रथम प्रहर के स्वप्न एक वर्ष में फलदायी होते हैं। द्वितीय प्रहर के स्वप्न आठमास में फलित होते हैं। तृतीय प्रहर के स्वप्न तीन मास में फलिभूत होते हैं। चतुर्थप्रहर के स्वप्न एक मास में सिद्ध हो जाते हैं। अरुणोदय के समय आए हुए स्वप्न दस दिन में फल देते हैं और सूर्योदय के समय आए हुए स्वप्न तत्काल फल देते हैं।

भावेश और भावेशों का स्थानगत फल

भावेश का अर्थ– प्रत्येक स्थान में जो राशि होती हैं, उस राशि का अधिपति (स्वामी) जो ग्रह होता है, वह उस स्थान का स्वामी या भावेश कहलाता है। इसे इस प्रकार समझा जा सकता है—

इस पत्रिका में चतुर्थ और पञ्चम स्थान का स्वामी शनि अष्टम भाव में है, अर्थात् पञ्चमेश और चतुर्थेश अष्टम में है। ग्रहों के प्रत्येक स्थानों का परिणाम फल उस ग्रह पर निर्भर रहता है जिसका वह स्वामी होता है और वह किस स्थान में जाकर बैठा है। इस पत्रिका में सप्तम भाव की राशि मेष है और उसका स्वामी मङ्गल सप्तम में ही है। इसी प्रकार इस पत्रिका के चतुर्थ और पञ्चम भाव स्थान का स्वामी शनि है और वह अष्टम में बैठा है। इसका मतलब यह हुआ कि पञ्चमेश और चतुर्थेश अष्टम में है।

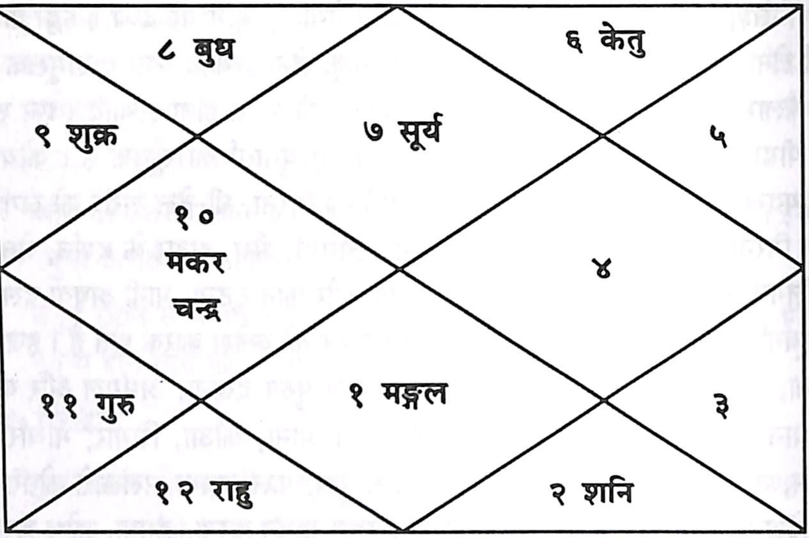

अष्टम स्थान अशुभ तथा मृत्यु स्थान है। अत: चतुर्थस्थान का स्वामी शनि अष्टम में होने से वह गृहसुख, मातृसुख नष्ट करने वाला होगा। इसी प्रकार पञ्चमेश शनि अष्टम में होने से वह गर्भपात, सन्तान सुख कम करने वाला होगा। उस पत्रिका में चतुर्थस्थान में चन्द्र और पञ्चमस्थान में गुरु शुभग्रह होने पर भी, उन दो स्थानों का अधिपति शनि अष्टम में होने के कारण, फल अशुभ होगा। अत: पत्रिका देखते समय प्रत्येक स्थान का अधिपति कौन है और कहाँ बैठा है, यह देखना अत्यन्त आवश्यक होता है। क्योंकि किस स्थान का अधिपति किस स्थान में बैठता है, तदनुसार उस स्थान की वृद्धि या नाश होता है। यथा-चतुर्थस्थान का अधिपति पञ्चम भाव में हो तो पञ्चमस्थान का उत्तम फल उसे मिलेगा और तदनुसार चतुर्थस्थान की वृद्धि अर्थात् शुभ लाभ मिलेगा।

भावेशों के सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण तथ्य

१. भावेश ग्रह में अनेक गुण धर्म होते हैं। भावेश जो ग्रह होता है, उस ग्रह के मूलभूत गुण धर्म, उसकी विशेषताएँ है, वह जिस बात का कारक हाता है वे ही गुणधर्म उसके होते हैं। यथा पञ्चम स्थान से विद्या-शिक्षण, सन्तति आदि का विचार किया जाता है ओर पञ्चमेश से भी ये ही बातें देखी जाती हैं। पञ्चमेश की दृष्टि से शनि का फल, पञ्चमेश की दृष्टि से शुक्र का फल, पञ्चमेश की दृष्टि से गुरु का फल भिन्न-भिन्न होता है। सन्तति का कारक ग्रह गुरु पञ्चमेश होने पर उसका कुछ अलग ही महत्त्व होता है। यह महत्त्व शनि के पास नहीं होगा। सप्तमेश कोई भी ग्रह होने पर वैवाहिक

सौख्य, प्रेम, स्त्री, काम, वीर्य आदि का कारक ग्रह शुक्र सप्तमेश होने पर जो फल मिलेगा वह फल शनि के सप्तमेश में होने पर नहीं मिलेगा।

२. भावेश जिस स्थान में जाता है, उस स्थान का वातावरण प्रभावित करता है। भावेश अपने स्थान से दूसरे स्थान में जाने पर वह दो स्थानों का विशिष्ट फल युक्त होता है। जैसे– पञ्चमेश दशम में जाने पर व्यक्ति के शिक्षक होने की अधिक सम्भावना होगी, इसके विपरीत षष्ठेश दशम में जाने पर व्यक्ति की वैद्य, डॉक्टर होने की अधिक सम्भावना होगी।

३. भावेश जब अपना स्थान छोड़कर दूसरे स्थान में जाता है तब उस दूसरे स्थान का अधिपति किस प्रकार का है, उसकी विशेषता के अनुसार इस के फल में परिवर्तन होगा। जैसे किसी स्थान का भावेश नीचराशि होने पर, यदि उस राशि का स्वामी, भावेश स्वगृही उच्चराशि में अथवा मूल त्रिकोणराशि में होने पर वही नीचराशि में आया हुआ ग्रह भी शुभ फल दे सकता है। जैसे मान लो प्रथम स्थान का अधिपति मंगल नीचराशि कर्क में हो, किन्तु उस राशि का अधिपति वृषभ में उच्च का होने वाला चन्द्र कर्कराशि में स्वगृही यदि हो तो मङ्गल नीचराशि कर्क में होने पर भी शुभ फल दे सकता है।

४. भावेश जब उच्चराशि में होता है और उस स्थान का अधिपति जब उस राशि में स्वगृही होता है, तब अत्यन्त शुभफल मिलता है। जैसे– पञ्चमेश शुक्र मीन राशि में होने पर और मीन राशि का स्वामी गुरु भी वहीं मीन राशि में होने पर अत्यन्त शुभ फल मिलता है। इसी प्रकार वृषभ का चन्द्र और शुक्र, तुला का शनि और शुक्र की जोड़ियों को देखना चाहिए। तात्पर्य यह है कि इस तर्क पद्धति से फल कहना चाहिए।

५. दो शुभग्रहों के कर्तरीयोग में शुभफल और दो अशुभग्रहों के कर्तरीयोग में अशुभ फल मिलता है। जैसे– दूसरे और व्यय स्थानों के मध्यवर्ती ग्रह का फल होता है। षष्ठ में शनि और अष्टम में मङ्गल हो तो सप्तम स्थान दो अशुभ ग्रहों के मध्य में होने से वैवाहिक सुख में कमी आती है। इसके विपरीत यदि शुक्र और गुरु ग्रहों के मध्य में सप्तमभाव हो तो वैवाहिक जीवन में सुखादि युक्त शुभफल मिलता है।

६. भावेश जिस ग्रह के साथ रहता है, उस ग्रह के अनुसार उस भाव का फल होता है। यथा चतुर्थ स्थान का स्वामी राहु युक्त होने पर उस स्थान के फल में वैगुण्य आता है। दशमेश गुरु युक्त होने पर दशम स्थान की दृष्टि से शुभफल मिलता है। कोई भावेश केन्द्र कोण के स्वामी के साथ युक्त होने पर शुभफलदायी होता है। इसके

विपरीत ६, ८, १२ स्थान के स्वामी के साथ युक्त होने पर फल अशुभ होता है।

७. लग्नेश षष्ठ में व षष्ठेश लग्न में होने पर स्वास्थ्य की दृष्टि से अत्यन्त अशुभ होता है। पञ्चमेश अष्टम में, अष्टमेश पञ्चम में सन्तति की दृष्टि से अशुभ होता है। भाग्येश अष्टम में और अष्टमेश भाग्य में होने पर भाग्य की हानि होती है।

८. लाभेश द्वितीय में और द्वितीयेश लाभ में होने पर सांपत्तिक स्थिति उत्कृष्ट होती है। अष्टमेश लाभ में होने पर अचानक धन लाभ होता है। पञ्चमेश धन में और धनेश पञ्चम में शुभ फलदायक होता है। धनेश लाभ में पञ्चमेशयुक्त होने पर या लाभेश धन में पञ्चमेशयुक्त होने पर शुभफल प्राप्त होता है तथा धनलाभ होता है।

९. तृतीयेश, नवमेश और व्ययेशों के अन्योन्ययोग प्रवासयोग प्रदर्शित करते हैं। तृतीयेश लग्न में तथा लग्नेश तृतीय में कर्तव्यनिष्ठा को, पराक्रम को, बन्धुसुख को प्रदर्शित करते हैं।

१०. सप्तमेश का ६, ८ और १२वें स्थान के भावेशों के अन्योन्यसम्बन्ध वैवाहिक सुख को नष्ट करते हैं। जैसे– षष्ठेश सप्तम में और सप्तमेश षष्ठ में, अष्टमेश सप्तम में और सप्तमेश अष्टम में इस प्रकार का योग अत्यन्त अशुभ होता है। इसमें वैधव्य, डायवोर्स और जीवनसाथी का कामवासना से रहित होना फल होता है।

११. सप्तमेश पञ्चमभाव में और पञ्चमेश सप्तमभाव में होने पर वैवाहिक सुख उत्तम होता है। प्रेम विवाह होता है। भाग्येश सप्तमभाव में और सप्तमेश भाग्य में होने पर विवाह के पश्चात् भाग्योदय होता है।

१२. दशमेश-नवमेश युति शुभ होती है। इस प्रकार की युति केन्द्र-कोण में होने पर उत्कृष्ट फल मिलता है। इसके विपरीत व्ययेश-अष्टमेश युति दशम में होने पर व्यवसाय नष्ट होता है। धनेश + व्ययेश, धनेश + षष्ठेश आदि युतियाँ धननाश करती हैं।

१३. लग्नेश राहु युक्त होने पर आरोग्य का नाश होता है। अष्टमेश राहु युक्त आयु की हानि करता है। पञ्चमेश राहु युक्त होने पर पुत्रशोक देता है। मङ्गल + राहु युति बन्धुसुख को नष्ट करती है।

पत्रिका के नवग्रहों और द्वादश भावेशों का बड़ी सावधानी से अध्ययन करना होता है ज्योतिष के प्राचीन संस्कृत ग्रंथों में भावेशों का बहुत सुन्दर अध्ययन किया गया

है। **'सर्वार्थचिन्तामणि'** और श्री महादेव कृत **'जातकतत्त्वम्'** नामक ग्रन्थों में तो लेखकों ने शास्त्रीयदृष्टि से तर्कशास्त्र का तो कमाल किया है। वस्तुतः पत्रिका के अध्ययन में तर्कशास्त्र की यदि कहीं आवश्यकता पडती है तो वह भावेशों को देखने में होती है। भावेशों को समझ लेने का सही मार्ग अवगत होने पर तो व्यक्ति ज्योतिषशास्त्र की आधी मंजिल मानो प्राप्त कर लेता है। द्वितीय स्थान से धन, कुटुम्ब, नेत्र, वाणी, मुख आदि का ज्ञान होता है। इस स्थान के अधिपति से उक्त बातें ज्ञात होती हैं। यथा-धनेश के विषय में **'जातकतत्त्वम्'** ग्रन्थ में निम्नोक्त बातें बताई हैं- (१) धनेश स्थित राशि में स्थिर होने पर व्यक्ति मन्दगति से भोजन करने वाला होता है। (२) धनेश षष्ठ में होने पर शत्रु के द्वारा धननाश या चोरों द्वारा धननाश होता है। (३) धनेश राहु शनि युक्त होने पर व्यक्ति दन्त रोगी होता है। (४) धनेश लाभभाव में होने पर सम्पत्ति का लाभ होता है। (५) धनेश एवं लाभेश का अन्योन्ययोग व्यक्ति को श्रीमन्त बनाता है। (६) धनेश अष्टम में होने पर धनलाभ होता है। (७) धनेश शुभग्रह के साथ होने पर व्यक्ति अपने परिवार पर प्रेम रखने वाला तथा परिवार की सहायता करने वाला होता है। (८) धनेश व्यय में और व्ययेश धन में होने पर व्यक्ति निर्धन रहता है। (९) लाभेश व्यय में, व्ययेश धन में, धनेश षष्ठ में या व्यय में होने पर राजदण्ड का योग होता है। (१०) धनेश और दशमेश की युति केन्द्र में होने पर व्यक्ति धनी श्रीमन्त होता है। (११) धनेश मङ्गल बुध के साथ षष्ठ में यदि हो तो व्यक्ति चोर होता है। (१२) धनेश पापग्रह के साथ होने पर नेत्ररोग होता है। (१३) धनेश षष्ठ में होने पर नेत्ररोग, मुख रोग को उत्पन्न करता है। (१४) धनेष बुध के साथ होने पर व्यक्ति वक्ता होता है। (१५) मङ्गल द्वितीय में होने पर अग्नि के कारण धन का व्यय होता है। व्यक्ति गणितज्ञ भी होता है।

विशेष– केन्द्र और कोण स्थान के (अर्थात् १, ४, ७, १०, ५ और ९) अधिपति शुभफलदायी और बलवान् होते हैं, सप्तम स्थान का अधिपति मारकेश होता है इसलिए प्रायः वह अशुभ फल देता है। ६, ८ और १२ स्थान के अधिपति जिस स्थान में होते हैं, उस स्थान का नाश करते हैं।

भावेशों के स्थानगत फल

लग्नेश का स्थानगत फल

लग्नेश ग्रह जीवनदायी ग्रह होता है। उसकी शक्ति अत्यधिक होती है। आरोग्य की दृष्टि से, रोग के विरुद्ध लड़ने की शक्ति उसमें होती है। वस्तुतः भाग्य, सुख और मानसिकस्थिति की दृष्टि से यह महत्त्वपूर्ण होता है। लग्नेश जिस भाव में रहता है, जिस

भावेश के साथ रहता है उस भाव की ग्रह की वह उन्नति करता है। (६, ८, १२ स्थान भावों को छोड़कर)

१. लग्नेश लग्न में रहने पर आरोग्य अच्छा रहता है। उम्र लंबी रहती है। सुख आनन्द देता है।

२. द्वितीयस्थान में रहने पर लग्नेश धन प्राप्त कराता है। स्वार्थ भावना को जगाता है। परिवार में उसका स्थान महत्त्वपूर्ण रहता है। धन प्राप्त करने के लिए सतत प्रयत्नशील रहता है।

३. तृतीयस्थान में रहने पर–व्यक्ति पराक्रमी, होता है। विचार प्रगल्भ रहते हैं। नौकरी अच्छी मिलती है। जीवन में यश प्राप्त होता है। बन्धु पर प्रेम करता है। प्रवास-योग होता है। इस स्थान में जिस ग्रह के साथ रहता है, उस ग्रह के कारकत्व को बढ़ाता है। बुध के साथ होने पर लेखन वाचन में प्रगति होती है। शुक्र के साथ रहने पर कला के प्रति रुचि होती है।

४. चतुर्थ में लग्नेश रहने पर मातृसुख अच्छा मिलता है। माँ के प्रति लगाव प्रेम रहता है। वाहन, गृहसुख मिलता है। सज्जनता उसमें रहती है। राजयोग की दृष्टि से उत्तमता रहती है।

५. पंचम में लग्नेश रहने पर व्यक्ति अधिक बुद्धिमान् रहता है। विद्याध्ययन पूर्ण होता है। संतति सुख मिलता है। प्रवासयोग रहता है। भाग्यवान् रहता है।

६. षष्ठ में लग्नेश रहने पर स्वास्थ्य खराब रहता है। प्रतिरोधशक्ति कम रहती है। शंका संदेह करने वाला रहता है। चिन्तातुर रहता है। असन्तोष रहता है। अपमान होता है। चिड़चिड़ा स्वभाव रहता है।

७. सप्तमभाव में लग्नेश रहने पर पत्नी के स्त्रियों के अधीन रहता है। विवाह सुख अच्छा मिलता है। शक्तिशाली रहता है। उद्योग में पार्टनर अच्छे मिलते हैं। स्पर्धा में विजयी होता है। प्रवासयोग रहते हैं।

८. अष्टमभाव में लग्नेश के रहने पर बीमार रहता है, उम्र कम रहती है। भाग्योदय नहीं होता। मूत्राशय की बीमारी होती है।

९. नवमभाव में लग्नेश के रहने पर भाग्यवान् रहता है। कीर्ति यश की प्राप्ति होती है तीर्थयात्रा होती है। धर्म के प्रति रुचि रहती है। नम्रता रहती है।

१०. दशम में लग्नेश रहने पर प्रगति उत्कर्ष होता है। उद्योग धन्दे में प्रगति होती है। उच्चस्थान अधिकार मिलता है। मान-सम्मान, यश, कीर्ति लाभ होता है।

व्यक्ति कर्मयोगी रहता है। शीघ्र प्रमोशन मिलता है। दशमेश या गुरु के साथ रहने पर विशेष प्रगति होती है। भाग्येश दशम में, दशमेश लग्न में या भाग्य में रहने पर राजयोगकारक रहता है।

११. लाभ में लग्नेश के रहने पर–उत्कृष्ट लाभ होता है मित्र अच्छे मिलते हैं। इच्छाएँ पूर्ण होता है।

१२. व्यय में रहने पर सुख नहीं मिलता, व्यवहार ज्ञान नहीं रहता। पापग्रह के साथ रहने पर बन्धनयोग रहता है। शुभग्रह के साथ रहने पर अध्यात्मिक प्रगति होती है।

धनेश का स्थानगत फल

१. धनेश से अथवा द्वितीयेश सांपत्तिक विचार किया जाता है। धनेश से परिवार या उसके कुल के पाप-पुण्य की बातें ज्ञात हो सकती है। परिवार के सम्बन्ध में कई अनुमान लगाये जा सकते हैं। धनेश पंचम, अष्टम, लाभ और द्वितीय इन चार आर्थिक स्थानों में उत्कृष्ट लाभ देता है। धनेश लग्न में होने पर व्यक्ति धन प्राप्त करने के लिये कोई भी कष्ट सहन करने के लिए तैयार रहता है। व्यक्ति का परिवार पर अधिक प्रेम रहता है।

२. धनेश धनभाव में रहने पर व्यक्ति अत्यधिक स्वार्थी होता है। उसमें सेवावृत्ति रहती है। त्याग की वृत्ति रहती है। आर्थिक स्थिरता रहती है। उसे पूर्वार्जित इस्टेट प्राप्त होता है। जीवन में आर्थिक लाभ होता है। खाने-पीने में विशेष पसंद, नापंसद करने की वृत्ति रहती है।

३. तृतीय में धनेश रहने पर व्यक्ति अधिक बोलने वाला होता है। लेखन-कार्य से आर्थिक लाभ होता है। तृतीयेश धन में रहने पर भाई की आर्थिक स्थिति उत्कृष्ट रहती है। धनेश तृतीय में पापग्रह के साथ रहने पर आर्थिक-विषय में भाई के साथ मतभेद रहता है। धनेश तृतीयभाव में रहने पर व्यक्ति कष्ट से पैसा कमाता है।

४. धनेश चतुर्थभाव में रहने पर परिवार के लिये अधिक पैसा खर्च करना पड़ता है। पूर्वजों से धनलाभ होता है।

५. धनेश पंचमभाव में रहने पर व्यक्ति जीवनोपयोगी विद्या पढ़ता है। द्यूत, रेस आदि में धनलाभ होता है। पुत्र के लिए पैसा बचाता है।

६. षष्ठ में धनेश होने पर चोरी आदि में पैसा जाता है। मामा की ओर से धनलाभ होता है। बीमारी से आर्थिक हानि होती है।

७. सप्तम में धनेश रहने पर भार्या सुख नहीं मिलता। पत्नी खर्चीली होती है। व्यवसाय में पार्टनर से बेबनाव होता है।

८. अष्टम में धनेश के रहने पर अचानक धनलाभ होता है। किन्तु पैसा अन्त में नहीं रहता। धोके से अर्जित किया हुआ पैसा परिवार का नाश करता है।

९. भाग्य में धनेश के रहने पर आर्थिक लाभ होता है। भाग्येश के साथ रहने पर आर्थिक लाभ होता है।

१०. दशम में धनेश के रहने पर नौकरी से आर्थिक लाभ होता है। आर्थिकक्षेत्र में व्यवसाय होता है। पिता से पैसा मिलता है।

११. लाभ में धनेश के रहने पर आर्थिकस्थिति ठीक रहती है। स्वकष्टार्जित आर्थिक-लाभ होता है।

१२. व्यय में धनेश के रहने पर प्रवास में जेब कटती है। आर्थिक नुकसान होता है। पापग्रह के साथ रहने पर नेत्ररोग, मुख रोग होते हैं। शुभग्रह के साथ रहने पर दानधर्म में व्यय होता है।

तृतीयेश का स्थानगत फल

तृतीयस्थान का अधिपति पराक्रमेश के रूप में पहचाना जाता है। यह जिस ग्रह के साथ रहता है, उसके अनुसार उस व्यक्ति का मानसिक दृष्टिकोण समझा जा सकता है। भाइयों का विचार तृतीयेश पर से ही किया जाता है।

१. तृतीयेश लग्न में होने पर व्यक्ति पराक्रमी होता है। यह लग्नेश के साथ रहने पर व्यक्ति भाग्योदय अपने पराक्रम पर करता है। वह अनेक कार्य अच्छी तरह कर लेता है। उसे महत्त्वाकांक्षा अधिक होती है। वह मानी स्वभाव का होता है। बन्धुसुख मिलता है।

२. धनभाव में रहने पर बन्धुओं की जबाबदारी उस पर आती है। बुध-शुक्र के साथ रहने पर उसे गायन में रुचि होती है। अच्छा वक्ता होता है। पापग्रह के साथ बन्धुओं में मतभेद उत्पन्न होता है।

३. तृतीयेश तृतीयभाव में रहने पर व्यक्ति साहसी पराक्रमी, वाचन में प्रवास में रुचि होती है। नवीन विचार उसमें आते रहते हैं। भाइयों की संख्या अधिक होती

है। पापग्रह के साथ रहने पर कर्णपीड़ा होती है। बन्धु की मृत्यु मानसिक अस्थिरता रहती है। बुध, शुक्र के साथ रहने पर लेखन कार्य होता है। पंचमेश तृतीयभाव में रहने पर उत्कृष्ट लेखक होता है। तृतीयेश राहु-शनि के साथ रहने पर भाई को एक्सीडेण्ट में मृत्यु होती है।

४. चतुर्थभाव में रहने पर घर में आनन्द का वातावरण रहता है। बन्धु-सुख, गृह-सुख मिलता है। उत्तर आयु सुखकारक होती है। अभ्यास अध्ययन में प्रगति होती है।

५. पंचम में होने से विद्यावाचन का संस्कार रहता है। उत्तम लेखन होता है। तृतीयेश बुध, गुरु, शुक्र, शुभग्रह के साथ रहने पर उच्च बुद्धिमत्ता रहती है। संतति योग्य होती है।

६. षष्ठ में होने पर आरोग्य के लिए ठीक नहीं रहता। अष्टमेश के साथ रहने पर उम्र कम होती है। भाइयों से शत्रुता होती है। लेखन के कारण आलोचना होती है। प्रवास में बीमार होता है।

७. सप्तम में रहने पर संघर्ष प्रिय होता है, वादविवाद में पटु रहता है।

८. अष्टम में रहने पर भाइयों से शत्रुता होती है। बन्धु-सुख नहीं मिलता। पापग्रह के साथ रहने पर भाई की मृत्यु होती है। लग्नेश के साथ अष्टम में होने पर उम्र कम करता है।

९. नवम में रहने पर उत्कृष्ट बुद्धिमत्ता होती है। भाई भाग्यवान् होते हैं। सत्कर्म होते हैं। लेखन से प्रसिद्धि मिलती है।

१०. दशम में तृतीयेश रहने पर नौकरी में भाग्योदय होता है। दशमेश तृतीय में रहने पर कीर्ति मिलती है। अधिकार मिलता है।

११. व्यय मे रहने पर तथा लाभ में रहने पर मित्र मिलते है। स्वपराक्रम से धनलाभ होता है।

१२. शयनसुख मिलता है। पापग्रह के साथ रहने पर चिन्ता रहती है। भाइयों की अपमृत्यु होती है।

चतुर्थेश का स्थानगत फल

१. चतुर्थस्थान महत्त्वपूर्ण केन्द्र स्थान है। चतुर्थस्थान का अधिपति, राजयोग की दृष्टि से आत्मिकसुख शान्ति की दृष्टि से गृहसुख की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण होता है। चतुर्थेश व्यक्ति के प्रयत्न का अंतिम मूल्यमापन करता है। चतुर्थेश १, ५, ९, १० के भावेशों के साथ होने पर सभी प्रकार से भाग्य को देने वाला होता

है। चतुर्थेश जिस ग्रह के साथ रहता है, वह ग्रह अत्यन्त महत्त्व का होता है। चतुर्थ में चन्द्र शुक्र इस चतुर्थस्थान के कारक ग्रह के साथ होने पर अत्यन्त सौख्यदायक होता है। शनि, राहु के पापग्रह के साथ रहने पर अधिक अशुभ होता है। व्यक्ति का स्वभाव चतुर्थेश पर से जाना जा सकता है। चतुर्थेश प्रथम स्थान में रहने पर व्यक्ति आनंदी, मिलनसार, मातृप्रेम, शरीरसौष्ठव और स्वयं घर का निर्माण करता है। वाहनसुख उत्तम रहता है। यह व्यक्ति जीवन में उत्कृष्ट प्रगति करता है।

२. द्वितीयस्थान में रहने पर आर्थिकस्थिति उत्तम रहती है। परिवार के प्रति प्रेम रहता है। बोलने में मधुर होता है। उसकी विद्यापूर्ण होती है।

३. तृतीय में रहने पर बन्धुसुख उत्तम मिलता है।

४. चतुर्थ में रहने पर राजयोग कारक होता है। गृहसुख, मातृसुख उत्तम, शिक्षण पदवी मिलती है। निद्रासुख उत्तम रहता है। पंचम में रहने पर उच्चशिक्षण उत्तम मिलता है।

५. पंचमेश के साथ, गुरु के साथ रहने पर शिक्षण में स्कॉलर-शिप मिलती है। शोधपरक बुद्धि होती है। चतुर्थेश पंचम में रहने पर गायन कला, सिनेमा, नाटक तथा कपड़ों के प्रति अधिक रुचि रहती है। लग्नेश के साथ रहने पर उत्कृष्ट नाम, कीर्ति भाग्योदय होता है। स्त्रियों की पत्रिका में लग्नेश के साथ चतुर्थेश पंचम में रहने पर फेशन के प्रति अधिक लगाव, भाग्येश के साथ होने पर संततिसुख उत्तम रहता है। ईश्वरोपासना, देवभक्ति उत्तम होती है।

६. षष्ठ में रहने पर माँ से बे बनाव रहता है। षष्ठेश के साथ या शनि के साथ रहने पर सौतेली माँ, माँ को बड़ी बीमारी होती है। राहु के साथ षष्ठ में रहने पर माँ के दुर्वर्त्तन के कारण मानसिक कष्ट होता है। गृह कलह होता है। चतुर्थेश षष्ठ में होने पर मातुल घराने का सुख मिलता है।

७. सप्तमभाव में रहने पर पत्नीसुख, वैवाहिकसुख उत्तम मिलता है। सप्तमेश यदि शुक्र के साथ हो तो पत्नी उत्तम मिलती है। पति-पत्नी में प्रेम रहता है। मातृ-सुख उत्तम मिलता है।

८. अष्टम में रहने पर सुख नहीं मिलता, कर्ज अदा करना पड़ता है। परिवार के मुखिया का सुख नहीं मिलता। चतुर्थेश अष्टम में होने पर मातृसुख नहीं मिलता। पापग्रह के साथ रहने पर वाहन एक्सीडेन्ट, निद्रा-विकार, जल में

डूबकर मृत्यु होती है। निर्धनता रहती है। नवम में अत्यंत शुभयोग होता है। भाग्योदय उत्कृष्ट होता है। सभी सुख मिलते हैं। व्यवसाय में उत्कर्ष होता है। व्यक्ति धार्मिक होता है।

९. दशम में रहने पर पितृसुख मिलता है। स्वकष्ट से घर निर्माण होता है। चतुर्थेश, भाग्येश, दशमेश, लग्नेश इनमें से किसी के भी साथ दशमेश रहने पर समाज प्रियता बढ़ती है। मित्र मिलते हैं। आर्थिकलाभ होते हैं। वाहनसुख मिलता है।

१०. व्यय में रहने पर आध्यात्मिक प्रगति होती है। प्रवास होते हैं। व्ययेश या अष्टमेश के साथ होने पर कर्ज होता है। गृहसुख नष्ट होता है।

पंचमेश का स्थानगत फल

१. पंचमेश त्रिकोणाधिपति होने से अत्यधिक शुभ परिणाम करने वाला ग्रह है। पंचमेश लग्न में होने पर संतति सुख उत्कृष्ट प्राप्त होता है। संतति बुद्धिमान् होती है। व्यक्ति पर संतान का अन्यन्य साधारण प्रेम रहता है। यह व्यक्ति प्रसन्न स्वभाव का रहता है। शरीर भी ठीक रहता है।

२. द्वितीयभाव में रहने पर जीवनोपयोगी विद्या मिलती है। आर्थिक उन्नति होती है। पंचमेश द्वितीयभाव में रहने पर अपने स्थान से दसवाँ रहता है अत:विद्या से कीर्ति, यश मिलता है। लेखनकार्य से पैसा मिलता है। संतति सुख भी मिलता है।

३. तृतीयस्थान में रहने पर कल्पनाशक्ति अच्छी होती है। विचार उत्कृष्ट रहते हैं। वाचनलेखन में रुचि होती है। बन्धुसुख मिलता है। तृतीयेश तृतीय में, पंचमेश तृतीय में होने पर पाण्डित्य बढ़ता है। लेखनकार्य में प्रगति होती है।

४. चतुर्थेश पंचम में और पंचमेश चतुर्थ में रहने पर, चंद्र, बुध, गुरु, शुक्र चतुर्थ में रहने पर उच्चपदवी पी-एच.डी. मिलती है। घर निर्माण होता है, पैसा मिलता है।

५. पंचमभाव में शुभग्रह के साथ रहने पर बुद्धिमत्ता अधिक रहती है। संततिसुख मिलता है।

६. षष्ठ में रहने पर विद्याध्ययन में विलंब होता है, रुकावटे आती है। अस्वस्थता रहती है। संतति बीमार रहती है। संतति के दुर्वर्तन से चिन्ता बढ़ती है।

७. सप्तमभाव में पंचमेश रहने पर स्त्रियों से मित्रता होती है। प्रेमविवाह में अधिक रुचि होती है। पंचमेश सप्तमेश के साथ या शुक्र के साथ या सप्तमेश पंचम

भाव में रहने पर प्रेमविवाह, सहवासोत्तर विवाह होता है। पत्नी उच्चकुल की होती है। पत्नी का स्वभाव अच्छा रहता है। वैवाहिक जीवन उत्तम रहता है। विवाह भी शीघ्र होता है।

८. पंचमेश अष्टम में रहने पर अशुभफल मिलता है। पंचमेश वक्री बुध के साथ रहने पर बुद्धिभ्रंश होता है। व्यक्ति पागल होता है। पंचमेश अष्टम में रहने पर पुत्र की मृत्यु होती है। गर्भपात होता है। संतति विलंब से होती है।

९. पंचमेश भाग्य में रहने पर शिक्षण में स्कॉलर शिप मिलती है। भाग्योदय होता है। आध्यात्मिक प्रगति होती है। पंचमेश नवमेश के साथ नवम में रहने पर राजयोग बनाता है। धर्म में रुचि। यशकीर्ति मिलती है।

१०. पंचमेश दशम में होने पर व्यवसाय में प्रगति, नौकरी में प्रमोशन होगा। शिक्षा विभाग में शिक्षक के पद पर नौकरी मिलती है। नवमेश के साथ दशम में होने पर यश कीर्ति लाभ प्राप्त होता है।

११. लाभ में पंचमेश के होने पर आर्थिक लाभ, अच्छे मित्र और संतति सुख मिलता है।

१२. व्यय में पंचमेश के होने पर बार बार गर्भपात, संतान चिंता रहती है।

षष्ठेश का स्थानगत फल

षष्ठेश लग्न में रहने पर स्वास्थ्य कमजोर रहता है। आयु के लिए अशुभ होता है। बार बार स्वास्थ्य खराब होता है। व्यक्ति का स्वभाव खुला हुआ नहीं रहता, मत्सरी रहता है।

१. धन में रहने पर पैसा डूबता है। नेत्र दन्तविकार होता है। विश्वासघात होता है। गले का विकार होता है। षष्ठेश धन में रहने पर मामा की ओर से आर्थिक लाभ होता है। भोजन में विष प्रयोग होने की संभावना रहती है। जीवन के अन्तिम समय में पैसा नहीं रहता। व्यक्ति असत्यभाषी होता है। चौर्यकर्म भी करता है।

२. तृतीय में रहने पर मानसिक चंचलता अधिक रहती है। भाइयों से बेबनाव रहता है। द्वेष भावना अधिक रहती है।

३. चतुर्थ में रहने पर आत्मीयता का अभाव रहता है। माँ से बेबनाव रहता है। गृहसुख नहीं मिलता। वाहन से एक्सीडेंट होता है। माँ को विचित्र बीमारी होती है।

४. पंचम में रहने पर व्यक्ति की कुबुद्धि होती है। शिक्षण में बाधा होती है। संतति सदा बीमार रहती है। पिता से बेबनाव।

५. षष्ठेष षष्ठ में रहने पर नौकर अच्छे मिलते हैं। मामा का सुख मिलता है। स्वास्थ्य ठीक रहता है। नौकरी में भाग्योदय होता है। डॉक्टर अथवा वैद्य बनता है।

६. सप्तम में रहने पर पत्नी से बेबनाव रहता है। सप्तमेश षष्ठ में रहने पर डायवोर्स तलाक होता है या पत्नी सदा बीमार रहती है। जीवन में असफलता मिलती है।

७. षष्ठेश अष्टम में रहने पर आय कम होती है। अनेक रोग होते हैं। मामा का सुख नहीं मिलता।

९. और १० दशम में षष्ठेश के होने पर व्यवसाय में घाटा रहता है। पिता से नहीं बनती। देवधर्म में अविश्वास रहता है पर धर्म स्वीकार करता है।

११. लाभ में रहने पर विश्वास घातक मित्र मिलते हैं। स्वभाव चिड़चिड़ा रहता है। संतति सुख मिलता है। पुत्र की पत्नी से बेबनाव रहता है।

१२. षष्ठेश व्यय में रहने पर झगडालु स्वभाव रहता है। शत्रु बहुत होते हैं। स्वास्थ्य की दृष्टि से चिन्ताग्रस्तता रहती है। निद्रा विकार रहता है। चारों ओर से कष्ट रहता है।

सप्तमेश का स्थानगत फल

सप्तमेश से व्यक्ति दूसरे से किस प्रकार व्यवहार करता है, इसका ज्ञान होता है। इस स्थान का अधिपति सप्तमेश मारकेश के रूप में जाना जाता है।

१. सप्तमेश लग्न में होने पर पत्नी का वर्चस्व प्रभुत्व रहता है। पत्नी की सलाह के अनुसार कार्य करने वाले पत्नी के सामने नतमस्तक पति होते हैं और यदि लग्नेश सप्तम में हो तो भी यही योग रहता है। लग्नेश सप्तम में होने पर या केन्द्र कोण में रहने पर व्यक्ति बलवान् होता है।

२. सप्तमेश धनभाव में रहने पर स्त्रियों द्वारा धनलाभ होता है। पापग्रह के साथ रहने पर वैवाहिक जीवन में वैगुण्य उत्पन्न करता है। पत्नी सदा बीमार रहती है। कोर्ट मुकदमें में धन का व्यय होता है। सप्तमेश के साथ व्ययेश अष्टमेश होने पर द्विभार्यायोग होता है।

३. तृतीयभाव में रहने पर शुभग्रह के साथ होने से पत्नी भाग्यवान् मिलती है। पापग्रह के साथ रहने पर भाइयों से बे-बनाव होता है। मानसिक चंचलता रहती है। शत्रु से पराजय होती है।

४. चतुर्थ में सप्तमेश होने पर वैवाहिक सुख मिलता है। पत्नी धनी कुल की होती है। ससुराल से धन मिलता है। स्त्रियों की पत्रिका में सप्तमेश शुक्र के साथ, चतुर्थेश के साथ रहने पर उत्तम गृह सुख मिलता है, पति-प्रेम करता है। पाप ग्रह के साथ रहने पर सास श्वसुर के साथ झगड़ा होता है।

५. पंचम में सप्तेश रहने पर प्रेमविवाह या पूर्व परिचित कन्या से विवाह होता है। पति पत्नी में प्रेम रहता है। पत्नी को कला, नाटक आदि देखने में रुचि होती है। शुक्र के साथ रहने पर अनेक प्रेमसंबंध होते हैं।

६. षष्ठ में सप्तमेश के रहने पर पति-पत्नी में गलत विचार धारणा उत्पन्न होती है। पापग्रह के साथ रहने पर पत्नी का आचरण अच्छा नहीं होता। पत्नी की बीमारी से वैवाहिक सुख नहीं मिलता। सप्तमेश शुक्र के साथ रहने पर अनैतिक आचरण करने वाले, कामांध रहते हैं।

७. अष्टम में सप्तमेश के रहने पर वैवाहिक सुख नहीं मिलता पत्नी की बीमारी त्रासदायक रहती है। स्त्रियों की पत्रिका में सप्तमेश पापग्रह होकर यदि अष्टम में या अष्टमेश सप्तम में रहने पर वैधव्य प्राप्त होता है।

९. भाग्य में सप्तमेश के रहने पर विवाह के बाद स्थिरता आती है। भाग्योदय होता है। प्रवास, यात्रा होती है। विवाह सुख मिलता है। श्वसुर या साले से मदद मिलती है।

१०. दशम में रहने पर पत्नी मानी स्वभाव की होती है। कर्तव्यनिष्ठ होती है। सांसारिक कार्य में मदद करती है।

११. लाभ में रहने पर स्त्रियों से मदद मिलती है। स्त्री समाज में लोकप्रिय रहता है।

१२. व्यय में रहने पर स्त्रियों के कारण झगड़ा होता है। सप्तमेश पापग्रह के साथ अथवा व्ययेश अष्टमेश के साथ रहने पर पत्नी सदा बीमार रहती है। स्त्री चिंता रहती है गुप्तरोग होते हैं।

अष्टमेश का स्थानगत फल

इस स्थान से मृत्यु दु:ख और दैन्य का ज्ञान होता है। इस स्थान का अधिपति चतुर्थ में रहने पर व्यक्ति का सुख नष्ट करता है। माँ से बे-बनाव रहता है। अष्टमेश

मंगल, राहु, हर्षल, शनि जैसे ग्रह के साथ रहने पर माँ को अंधत्व होता है। पागलपन होता है, लंबी बीमारी होती है। चतुर्थस्थान से जलाशय देखा जाता है, चतुर्थ में जलराशि होने पर, अष्टमेश पापग्रह के साथ होने पर और चतुर्थेश अष्टम में रहने पर परिवार के व्यक्ति की मृत्यु जल में डूबने से होती है। माँ की मृत्यु पानी में डूबने से होती है। अष्टमेश मंगल, शनि जैसे पापग्रह होने पर चतुर्थ में अग्निराशि होने पर घर में वास्तुदोष रहता है। पिशाच बाधा रहती है। परिवार के सदस्यों की मृत्यु अकस्मात होती है। अष्टमेश चतुर्थ में रहने पर व्यक्ति विरक्त होकर घर से निकल जाता है। छोटे बच्चों की पत्रिका में यह योग होने पर वे प्राय: घर से भाग जाते हैं।

१. अष्टमेश लग्न में रहने पर–अशक्तता, प्रकृति अस्वस्थ रहती है। आयु कम होती है। बवासीर, हार्नीया, स्त्री को मासिक धर्म में त्रास उत्पन्न होता है। शरीर में अपंगता आती है।

२. द्वितीयस्थान में रहने पर पैसा टिकता नहीं है, कर्ज होता है। नेत्रपीड़ा होती है। मुखरोग, दन्तरोग होता है। बुध के साथ रहने पर बोलने में दोष उत्पन्न होता है। लग्नेश लाभेश के साथ रहने पर अचानक बड़ा लाभ होता है। आर्थिक लाभ होता है। पापग्रह के साथ, षष्ठेश के साथ, व्ययेश के साथ रहने पर खाने पीने की तंगाई होती है।

३. तृतीय में रहने पर भाइयों का सुख नष्ट होता है। बहिन विधवा होती है, मानसिक कामुकता होती है, पापग्रह के साथ रहने पर आयु कम होती है आत्म हत्या के विचार आते हैं। कर्ण रोग होता है।

४. इसका फल सर्व प्रथम बताया है।

५. पंचम में होने पर बार बार गर्भपात होता है। गर्भाशय में विकृति पैदा होती है। पुत्रशोक, पुत्र चिंता होती है। संतति में अपंगता आती है।

६. षष्ठ में रहने पर आरोग्य विघातक होता है मंगल, राहु होने पर दमा, क्षयरोग, सर्पदंश का भय होता है। यदि षष्ठेष अष्टम में हो तो सप्तमभाव दो पाप ग्रहों के बीच में आने से वैवाहिक सुख नष्ट होता है।

७. सप्तमभाव में रहने पर वैवाहिकसुख की दृष्टि से सब प्रकार से अशुभ रहता है।

८. अष्टम में अष्टमेश के रहने पर दीर्घायु प्राप्त होती है। अचानक धन लाभ होता है।

९. भाग्येश यदि अष्टम में हो तो जीवन में योग्यसंधि नहीं मिलती। भाग्योदय नहीं होता है।

११ श्री योग.

१०. दशम में होने पर पितृसुख नष्ट करता है। पिता से बेबनाव रहता है। अधिकारी से भी बेबनाव रहता है।

११. लाभ में होने पर अचानक धनलाभ होता है। मित्र से बेबनाव रहता है।

१२. व्यय में रहने पर चिंता, आर्थिकहानि होती है। चोरी होती है। नेत्रपीड़ा, काका की मृत्यु होती है। पंचमेश के साथ रहने पर पुत्रशोक होता है। सप्तमेश के साथ रहने पर द्विभार्यायोग, तलाक डायवर्स होता है।

नवमेश (भाग्येश) का स्थानगत फल

नवमेश भाग्य अथवा धर्मस्थान का अधिपति है। व्यक्ति का भाग्योदय नवमेश की स्थिति पर निर्भर रहता है। भाग्येश केन्द्र कोण में अत्यन्त शुभ फलदायी होता है। दशमेश के साथ रहने पर महत्त्वपूर्ण राजयोग बनता है। भाग्येश से व्यक्ति का पूर्व कर्म, आध्यात्मिक रुचि का ज्ञान होता है।

१. भाग्येश प्रथमस्थान में रहने पर व्यक्ति सज्जन, स्नेही, सदाचरणी होता है शरीर संपदा अच्छी होती है। धर्म में रुचि होती है।

२. नवमेश द्वितीय में रहने पर आर्थिकलाभ अच्छे होते हैं। धर्म में पैसा खर्च होता है।

३. तृतीय में होने पर बन्धुसुख उत्तम रहता है। लेखन से यश मिलता है।

४. चतुर्थ में रहने पर गृहसुख अच्छा मिलता है। चतुर्थेश भाग्य में होने पर थोड़े समय में ही लक्ष्य की प्राप्ति होती है। मन:शान्ति रहती है।

५. पञ्चम में रहने पर शिक्षण में अच्छी प्रगति होती है। शिक्षण में नाम होता है। शिक्षक होने पर सत्कार होता है।

६. षष्ठ में रहने पर दूसरे की सलाह से हानि होती है। मामा भाग्यवान् होते हैं।

७. सप्तम में रहने पर विवाह के बाद भाग्योदय होता है। पत्नी सुशीला होती है।

८. अष्टम में रहने पर सब प्रकार से हानि होती है।

९. नवम में रहने पर भाग्योदय उत्कृष्ट होता है। दशमेश के साथ, लग्नेश के साथ, पंचमेश के साथ रहने पर सर्वोत्तम राजयोग होता है।

१०. दशम में रहने पर नौकरी में उत्तम पद मिलता है। पितृभक्त होता है। रवि के साथ रहने पर कीर्ति लाभ होता है। दशमेश के साथ दशम के रहने पर उच्च प्रकार का राजयोग होता है।

११. लाभ में रहने पर वाहनसुख मिलता है। आर्थिकलाभ अच्छे होते हैं।

१२. व्यय में रहने पर आध्यात्मिक उन्नति होती है। पापग्रह के साथ होने पर अतिशय बनावटीपन रहता है।

दशमेश का स्थानागत फल

इस स्थान से चैतन्य, जीवनोपयोगी बुद्धि, शक्ति, कर्म-कार्य के विषय में जाना जाता है। इस भाव से नौकरी के स्वरूप के विषय में ज्ञान होता है।

१. दशमेश लग्न में होने पर व्यक्ति अत्यन्त कर्तव्य तत्पर रहता है। लग्नेश के साथ रहने पर व्यक्ति उत्तम प्रशासक होता है। यह योग भाग्योदय कारक होता है। व्यक्ति की महत्वाकांक्षाएँ रहती है। व्यक्ति दीर्घोद्योगी रहता है।

२. दशमेश धनस्थान में रहने पर वेतन उत्तम मिलता है। व्यवसाय में उत्तम लाभ होता है।

३. दशमेश तृतीयभाव में रहने पर व्यक्ति स्वपराक्रम से बढ़ता है। पराक्रमी रहता है।

४. चतुर्थ में रहने पर भाग्योदय जीवन के उत्तर समय में होता है। गृहसुख उत्तम मिलता है। सभी सुख सुविधाएँ मिलती हैं।

५. पंचम में रहने पर विद्याभ्यास में अच्छी प्रगति होती है। व्यक्ति उत्तम शिक्षक होता है।

६. षष्ठ में शुभग्रह के साथ रहने पर व्यवसाय में भाग्योदय होता है। प्रतिस्पर्धा में विजय मिलती है।

८. अष्टम में रहने पर पितृसुख नहीं मिलता, नौकरी में बहुत धीरे प्रगति होती है। लाभेश के साथ, धनेश के साथ, अष्टमेश के साथ, दशमेश अष्टम में रहने पर रिश्वत लेने में प्रवीण होता है। कुमार्ग से धन लाभ होता है। रिश्वत के कारण बन्धनयोग होता है।

९. दशमेश भाग्य में होने पर नौकरी व्यवसाय में अच्छी प्रगति होती है। कीर्ति, यश मिलता है। राजयोग कारक योग होता है। परोपुकारी बुद्धि होती है।

१०. दशमभाव में रहने पर पितृसुख उत्तम मिलता है। दशमेश दशम में रवि गुरु के साथ रहने पर उत्तम भाग्योदय होता है। दशमेश दशम में रहने पर षष्ठेश, अष्टमेश दशम में नहीं होना चाहिए क्योंकि ऐसा होने पर व्यवसाय में स्थिरता नहीं रहती।

११. दशमेश लाभ में होने पर व्यवसाय में अधिक लाभ होता है।

१२. दशमेश व्ययभाव में रहने पर व्यवसाय में हानि होती है। चिंता रहती है।

लाभेश का स्थानगत फल

एकादशभाव लाभेश से धन के विषय में जाना जाता है। यह व्यक्ति के स्वकष्ट से मिलने वाले धन को दिखाता है। लाभेश सद्धर्म से मिलने वाले धन का द्योतक है। पत्रिका में अन्य भाव भी धन दिखाते हैं उदाहरण– द्वितीयस्थान पूर्वजों से मिलने वाले धन को, दिखाता है, पंचमस्थान–सट्टा लॉटरी, द्यूत क्रीडा आदि से मिलने वाले धन को दिखाता है। अष्टमस्थान अचानक धन लाभ को दिखाता है। रिश्वत से मिलने वाले धन को, मृत व्यक्ति से मिलने वाले धन को दिखाता है। किन्तु लाभेश स्वयं के कष्ट से मिलने वाले धन को दिखाता है।

१. लाभेश प्रथमस्थान में होने पर कष्ट से पैसा मिलता है।

२. द्वितीय में रहने पर उत्कृष्ट आर्थिकलाभ होता है। खाने-पीने में विशेष स्थान की रुचि का इस स्थान से ज्ञान होता है।

३. तृतीयस्थान में होने पर स्वराक्रम से पैसा मिलता है, बन्धुओं को मदद करता है।

४. चतुर्थस्थान में होने पर अच्छे मित्र मिलते हैं। स्थावर इस्टेट का लाभ होता है। वाहन, गृहसुख मिलता है। चतुर्थेश यदि लाभ में हो तो या गुरु शुक्र चतुर्थ में होने पर वाहनलाभ निश्चित होता है।

५. पंचम में लाभेश के होने पर संततिसुख मिलता है मित्रसुख और स्त्री सहवास योग घटित होता है। सट्टा लाँटरी आदि से लाभ होता है।

६. षष्ठ में होने पर मित्र अच्छे नहीं मिलते, धोका देते हैं। बीमारी आदि से आर्थिक हानि होती है। उधार दिये हुए रुपये वापिस नहीं मिलते। सेवक चोरी करते हैं।

७. सप्तम में होने पर स्त्री-समाज से लाभ होता है। पत्नी नौकरी करने वाली म्लिती है। लाभेश सप्तम में, सप्तमेश लाभ में होने पर और पंचमेश या शुक्र यदि किसी के योग में हो तो किसी स्त्री से बहुत बड़ा लाभ होता है।

८. अष्टम में लाभेश के होने पर अचानक धनलाभ होता है। पापग्रह के साथ होने पर रेस आदि में पूरी कमाई जाती है।

९. भाग्य में होने पर उत्कृष्ट लाभ होता है, लग्नेश अथवा गुरु, शुक्र, चन्द्र के,

साथ होने पर अच्छा लाभ होता है। केवल लाभेश भाग्य में रहने पर पैसे की कमी कभी नहीं होती।

१०. दशम में होने पर व्यवसाय में आर्थिकलाभ होता है।

११. लाभ में लाभेश के रहने पर वाहन सुख, संतति से सुख मिलता है।

१२. व्यय में रहने पर पैसा कमाने पर पूरा नहीं पड़ता।

व्ययेश का स्थानगत फल

व्ययेश द्वादश १२वें स्थान का अधिपति है। ६, ८वें स्थान के अधिपति की तरह यह जिस स्थान में रहता है, उसमें वैगुण्य लाता है। यह चिन्ता, दुःख उत्पन्न करता है ? यह संन्यासीवृत्ति का है।

१. यह प्रथमस्थान में रहने पर स्वास्थ्य ठीक नहीं रहता, चिन्ता उत्पन्न करताप है। लग्नेश व्यय में जाने पर साथ में पापग्रह के होने पर निर्धनता का योग होता है। बन्धनयोग बनता है।

२. धन में होने पर कर्ज अदा करना पड़ता है। निर्धनता आती है। नेत्ररोग होता है।

३. तृतीय में होने पर दूर के प्रवास होते हैं। निराशा होती है। बन्धु दूर रहते हैं।

४. चतुर्थ में होने पर सुख नहीं मिलता। षष्ठेश पापग्रह साथ में रहने पर अत्यन्त अशुभयोग होता है। गृहसुख नहीं मिलता।

५. पंचमभाव में रहने पर विद्या में रुकावटें आती हैं। आर्थिक कष्ट से शिक्षण नहीं होने पाता। संतति कष्टदायक होती है।

६. षष्ठ में रहने पर मानसिक त्रास होता है। बीमारी होती है। शरीर में अपंगता आती है।

७. पत्नी से बेबनाव रहता है। स्त्रियों के कारण झगड़ा होता है। प्रेमभावना नष्ट होती है।

८. अष्टम में रहने पर स्वास्थ्य ठीक नहीं रहता। जीवन दुःख में बीतता है।

९. भाग्य में होने पर विरक्ति भावना आती है। यात्रा होती है। सत्संग होता है।

१०. दशम में रहने पर व्यवसाय में प्रगति नहीं होती। मानहानि होती है।

११. लाभ में होने पर पैसे की कमी रहती है। धोका देने वाले मिलते हैं।

१२. व्यय में रहने पर शुभ ग्रह के साथ रहने से दान धर्म होता है। सेवा यात्रा होती

है। त्याग की भावना होती है। पापग्रह के साथ होने पर नेत्र रोग होता है। काका के लिए अशुभ रहता है। चोरी होती है।

ग्रह योग

ग्रहों की एक दूसरे से जो स्थिति होती है, तदनुसार ग्रहों के परिणाम होते हैं। कुछ महत्त्वपूर्ण ग्रहयोगो को यहाँ बताते हैं।

नवम पञ्चम अथवा त्रिकोण योग

ग्रह एक दूसरे से पाँचवें और नवें स्थान पर होने से यह योग होता है। यथा– रवि मेष राशि का और अन्य ग्रह सिंह राशि का होने पर यह पञ्चम और नवम स्थिति बनती है। मेष से सिंह तक गणना पाँच होती है और सिंह से मेष तक गणना नौ होती है, इसलिए इसे नवपञ्चम योग कहते हैं। यह योग शुभयोग माना जाता है। बुध गुरु का नवम पंचम योग कारकत्व की दृष्टि से बौद्धिक कार्य के लिए शुभ माना जाता है।

केन्द्रयोग

दो ग्रह एक दूसरे से चौथे और दसवें स्थान पर होने पर यह योग होता है। यथा- मेष का मङ्गल और कर्क राशि का शनि होने पर यह योग होगा, केन्द्र योग अशुभ गुण धर्म का होता है। इस योग में दो ग्रहों के कारकत्व में विरोध होता है फलतः इससे संघर्ष निर्मित होता है। यथा– शनि और शुक्र के केन्द्रयोग में, शुक्र के फल में कमी आती है। वैगुण्य उत्पन्न होता है। वैवाहिक जीवन में कष्टानुभव होगा, किन्तु दो शुभ ग्रहों के केन्द्रयोग इतने अशुभ नहीं होते हैं।

प्रतियोग

ग्रह एक दूसरे से सप्तम भाव में होने पर यह योग होता है। यह अशुभयोग माना जाता है। इन दो ग्रहों के कारकत्व में संघर्ष, विसंगतता होती है। पापग्रहों के प्रतियोग अत्यन्त अशुभ फलदायी होते हैं। दोनों शुभ ग्रह होने पर अशुभ फल नहीं मिलता। यथा– रवि मङ्गल का प्रतियोग व्यक्ति को अत्यधिक गरम स्वभाव का, लहरी, अत्यधिक अपना अधिकार, वर्चस्व रखने वाला बनाता है। कठिन स्वभाव का बनाता है। एक्सीडेंट का भय होता है। शुक्रशनि के प्रतियोग में विवाह में विलम्ब, वैचित्र्य, वैवाहिक जीवन में कष्ट उत्पन्न करता है।

युति– दो ग्रह एक ही राशि में समान अंशों में होने पर यह युतियोग होता है। यह योग एक ही राशि में और स्थान में होने पर फलित की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण

होता है। यथा– चन्द्र और शुक्र की युति शुक्र के कारकत्व में प्रोत्साहन प्राप्त होकर व्यक्ति को सुखी और आनन्द के स्वभाव का बनाता है। कला में रुचि उत्पन्न करता है। उसके विपरीत मङ्गल + शुक्र की युति में शुक्र के कारकत्व में अधिक प्रोत्साहन मिलता है। व्यक्ति अधिक कामुक होता है। दो पापग्रहों की युति अत्यन्त अशुभ होती है। जैसे– मङ्गल हर्षल की युति में व्यक्ति को अग्नि से या विद्युत् से भय रहता है। क्रोधी बनाता है। व्यक्ति अविचारी होता है।

षडाष्टक योग– यह योग तब होता है जब दो ग्रह एक दूसरे से छः तथा आठ वें स्थान पर होते हैं। यह योग अत्यन्त अशुभ होता है। पापग्रहों का यह योग स्वास्थ्य के लिए ठीक नहीं होता।

लाभ योग– ग्रह एक दूसरे से तीसरे स्थान से होने पर यह योग होता है।

शुभकर्तरी और पापकर्तरी योग

दो शुभ ग्रहों के मध्य में स्थित ग्रह शुभकर्तरी योग से कहा जाता है, इसी प्रकार दो अशुभ ग्रहों के मध्य में स्थित ग्रह अशुभकर्तरी योग से कहा जाता है। जैसे– तृतीय और पञ्चम स्थान में पाप ग्रहों के होने पर मध्य में स्थित चतुर्थ स्थान पापकर्तरी योग में है, माना जायगा। इसका फल अशुभ प्राप्त होगा। माता को कष्ट, शुक्र और शनि, राहु के पाप कर्तरीयोग में वैवाहिकसुख नष्ट होता है। इसके विपरीत शुभग्रहों के कर्तरीयोग में शुभ फल मिलता है।

षडष्टक, द्विर्द्वादशक, नवमपञ्चम आदि जानने का चित्र

षडष्टक दो प्रकार का है। (१) प्रीतिषडष्टक और (२) मृत्युषडष्टक। शुभद्विर्द्वादशक और अशुभ द्विर्दादशक यह भी दो प्रकार का है। नवमपञ्चम भी दो प्रकार का है। (१) शुभ नवमपञ्चम और (२) नेष्टनवपञ्चम। इन सभी को राशियों से जाना जाता है। यथा गोपाल की राशि सिंह और राम की राशि मीन है तो दोनों में प्रीतिषडष्टक योग बनेगा क्योंकि सिंह से आठवी राशि मीन है और मीन से सिंह छटी राशि होता है, इसी प्रकार सभी राशियों के विषय में जान लेना चाहिए।

प्रीतिषडष्टक

सिं	तु.	कु.	मि.	मे.	ध.
५	७	११	३	१	९
मीन	वृ.	क.	म.	वृ.	कर्क
१२	२	६	१०	८	४

मृत्युषडष्टक

मेष	तुला	मिथुन	मकर	कुम्भ	धनु
१	७	३	१०	११	९
कन्या	मीन	वश्चिक	सिंह	कर्क	वृषभ
६	१२	८	५	४	२

शुभ द्विर्द्वादशक

मीन	कर्क	सिह	मकर	तुला	धनु
१२	४	५	१०	७	९
मेष	सिंह	कन्या	कुम्भ	कन्या	वृश्चिक
१	५	६	११	६	८

अशुभ द्विर्द्वादशक

वृषभ	कुम्भ	मेष	मिथुन	तुला	धनु
२	११	१	३	७	९
मिथुन	मीन	वृषभ	कर्क	वृश्चिक	मकर
३	१२	२	४	८	१०

शुभ नवम पञ्चम

मेष	वृषभ	मिथुन	सिंह	तुला	वृश्चिक
१	२	३	५	७	८
सिंह	कन्या	तुला	धनु	कुम्भ	मीन
५	६	७	९	११	१२

नेष्ट नव पञ्चम

धनु	मकर	कर्क	कन्या	कुम्भ	मीन
९	१०	४	६	११	१२
मेष	वृषभ	वृश्चिक	मकर	मिथुन	कर्क
१	२	८	१०	३	४

जन्मपत्रिका का पञ्चमस्थान

पञ्चमस्थान से–बुद्धि, विद्या, शिक्षण, उपासना, प्रबन्ध, पुत्र, मन्त्रविद्या, विनय, गर्भ, नीति आदि का विचार किया जाता है। इस स्थान को सुतस्थान भी कहा जाता है। किसी स्थान विशेष का अध्ययन करते समय उस स्थान से सम्बन्धित ज्योतिषशास्त्रोक्त कुछ मूलभूत नियमों तथा बातों को जान लेना आवश्यक होता है। सन्तति सुख के विचार में राशि, नक्षत्र, ग्रह, उनके गुणधर्म को जानलेना आवश्यक होता है। इनके विषय में पूर्व में बता चुके हैं। राशि– लग्न की राशि का नाम, सन्तति का कारक गुरु जिस राशि में हो उसका नाम, रवि तथा चन्द्र की राशि, इन सब बातों का विचार करना आवश्यक होता है।

१. पञ्चमस्थान में शुभग्रह होने पर शुभफल और पापग्रह होने पर अशुभफल मिलता है। शुभफल का तात्पर्य सन्तति का आज्ञाधारक, माँ-बाप को सुख देने वाली, निरोगी होना है और अशुभफल का तात्पर्य शुभफल के विपरीत होने से है। दीर्घकाल के पश्चात् सन्तति होना, गर्भपात, सन्तति का रोगी होना, अल्पायु होना, सन्तति से सुख की प्राप्ति न होना आदि अशुभ फल हैं।

२. पञ्चमस्थान शुभग्रहों की कर्तरी स्थिति में होने पर शुभफल तथा पापग्रहों की कर्तरी की स्थिति में होने पर अशुभफल मिलता है। जैसे चतुर्थ और षष्ठस्थान में पापग्रह शनि, मङ्गल आदि होने पर पञ्चमस्थान कर्तरी स्थान रहता है और उससे अशुभफल मिलता है।

३. शुभस्थान के अधिपति पञ्चमस्थान में होने पर पञ्चमस्थान का शुभफल मिलता है। जैसे– केन्द्र कोणाधिपति विशेषतः लग्नेश, भाग्येश, ग्रह पञ्चम स्थान में होने पर शुभफल मिलता है।

४. पञ्चम स्थान में षष्ठेश, अष्टमेश और व्ययेश होने पर अशुभफल मिलता है।

५. पञ्चमेश शुभस्थान में होने पर शुभफल मिलता है। इसके विपरीत पञ्चमेश ६, ८, १२वें स्थान में होने पर या षष्ठेश, अष्टमेश और व्ययेश के साथ होने पर अशुभफल मिलता है।

६. पञ्चमेश अपने स्थान से ६, ८, १२वें स्थान में होने पर अर्थात् दशम, व्यय और चतुर्थ में होने पर अशुभ फलदायी होता है।

७. पञ्चमेश स्तम्भी, वक्री या राहु केतु के साथ होने पर संततिसुख के लिए घातक होता है।

सामान्यतः फलित ज्योतिष का यह एक नियम है कि जिस स्थान के विषय में विचार करना हो, उस स्थान को लग्न स्थान मानकर उससे सम्बन्धित होने वाले अन्य स्थानों का विचार करना चाहिए। यहाँ उक्त पत्रिका में पञ्चम स्थान की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण स्थानों को दर्शाया गया है।

१. पञ्चम स्थान में रवि होने पर सन्तान की हानि होती है कहा गया है। पञ्चम स्थान में पापग्रह या उसकी दृष्टि होने पर गर्भपात होता है। 'सुते राहुकेतु कुपुत्रः' पञ्चम में राहु अथवा केतु होने पर कुपुत्र होता है। सुते मन्दे पुत्रसुखं न। पञ्चम में शनि होने पर पुत्रसुख नहीं मिलता। पापा पञ्चमे जात जात म्रियते। पञ्चमस्थान में अनेक पापग्रह होने पर अनेक पुत्र होकर मरते हैं। पञ्चमे पापा वंशविच्छेदः पञ्चम में पापग्रह होने पर वंशविच्छेद होता है।

२. स्त्रियों की कुण्डली में पञ्चमस्थान में मङ्गल के होने पर या अन्यग्रहों की युति में या अशुभयोग में होने पर गर्भपात, शस्त्रक्रिया से प्रसूति, सन्तति होकर मरती है, ऐसे अशुभफल मिलते हैं।

३. पञ्चमस्थान का शनि सन्तति की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण अशुभफल दिये बिना नहीं रहता। इस प्रकार का शनि विलम्ब से सन्तति होने देता है। २ या ३ कन्याओं के बाद पुत्रजन्म, पुत्र होकर मरना या दो पुत्रों के मध्य में अधिक अन्तराल का होना आदि फल मिलते हैं।

४. पञ्चमस्थान का शुक्र सुन्दर सन्तति देता है। बुध, शनि जैसे ग्रहों के साथ होने पर अथवा स्त्रीराशि में होने पर कन्या सन्तति की अधिकता होती है। सामान्यतः पञ्चमस्थान के शुक्र के कारण विशेषतः कन्या सन्तति से सुख मिलता है। शुक्र के बलवान् होने पर सन्तति सुन्दर होती है, कलाकार होने की सम्भावना होती है।

५. जिस स्थान से ६-८-१२ वें स्थान में पापग्रह होते हैं, वे उस स्थान का नाश करते हैं। पञ्चमस्थान की दृष्टि से यह नियम अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। पञ्चम स्थान से छटा स्थान, दशमस्थान होता है। आठवाँ स्थान, व्ययस्थान होता है और १२ वाँ स्थान चतुर्थस्थान होता है, इन स्थानों में पापग्रह होने पर सन्तति से सुख लाभ नहीं होता। **व्यय स्थान**– कुण्डली का १२ वाँ स्थान मूलतः दुःख,

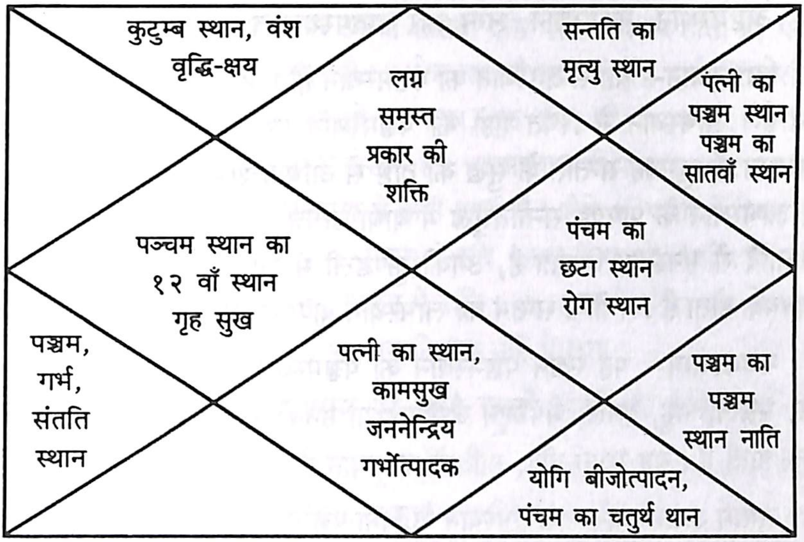

चिन्ता, शोक का स्थान होता है। अब पञ्चमस्थान से वह (१२ वाँ) स्थान आठवाँ स्थान होता है अर्थात् वह स्थान सन्तति का मृत्यु स्थान होता है। ऐसे स्थान में एक या अधिक पापग्रह होने पर सन्तति के सम्बन्ध में दुःख, कष्ट आदि का निर्माण न करें तो आश्चर्य है, व्ययस्थान में पापग्रह होने पर नेत्रविकार होता है।

६. पञ्चमेश व्यय में, व्ययेश पञ्चम में, पञ्चमेश-व्ययेश युति, ६-८-१० और १२ वें स्थान में व्ययेश गुरु की युति में रहने पर सन्तति से चिन्ता रहती है।

७. **चतुर्थस्थान–** मूल कुण्डली में चतुर्थस्थान सुख का होता है। यह एक महत्त्वपूर्ण केन्द्र स्थान होने से शुभफलदायी होता है, किन्तु पञ्चमस्थान के दृष्टिकोण से वह पञ्चम का व्ययस्थान होता है, अतः चतुर्थस्थान में शनि, मङ्गल, राहु जैसे ग्रह सन्तति के स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होते हैं।

८. **दशमस्थान–** यह पञ्चम का षष्ठस्थान होता है, यह सन्तति का रोग स्थान होता है। इस स्थान में पापग्रह होने पर सन्तति का स्वास्थ्य ठीक नहीं रहता। सुख की हानि होती है। चतुर्थ दशमभाव के पापग्रह अत्यन्त तीव्रफल देते देखे गये हैं। जिन्हें पुत्र शोक हुआ, जिनकी सन्तति मूर्ख या पागल हुई हैं, ऐसी कुछ कुण्डलियों में मङ्गल चतुर्थ में, दशम में शनि-रवि आदि जैसे–ग्रहयोग देखने को मिलते हैं। पञ्चमस्थान की दृष्टि से अन्य स्थान भी महत्त्वपूर्ण हैं–लाभस्थान,

अष्टमस्थान, नवमस्थान, लग्न और सप्तमस्थान तथा धनस्थान।

लाभस्थान– यह सप्तमस्थान का पञ्चमस्थान होता है, अर्थात् पत्नी का पञ्चम स्थान है। लाभस्थान में स्थित ग्रहों की पञ्चमस्थान पर पूर्णदृष्टि होती है। अतः लाभस्थान के शुभग्रह सन्तति के सुख की दृष्टि से अधिक शुभफल देने वाले होते हैं और लाभस्थान के पापग्रह सन्ततिसुख में बाधा उत्पन्न करते हैं। जिन्हें पुत्र-वधुएँ, जामातादि से मनस्ताप मिलता है, उनकी कुण्डली में लाभस्थान का विचार करना आवश्यक होता है। क्योंकि सप्तम का लाभस्थान कुण्डली का पञ्चमस्थान होता है।

नवमस्थान– यह स्थान पञ्चमस्थान का पञ्चमस्थान है। इस स्थान में स्थित शनि, मङ्गल, राहु, हर्षल, नेपच्यून जैसे ग्रह या उनकी युतियाँ सन्तति के सुख में बाधक होती हैं। यह स्थान पौत्र, नातियों का स्थान है।

सप्तम अष्टमस्थान– सप्तमस्थान के बिना पञ्चमस्थान का विचार करना सम्भव नहीं। सप्तम-अष्टम स्थान जनर्नेन्द्रिय के निदर्शक है। स्त्रियों की कुण्डली में अष्टम स्थान भी योनिदर्शक है। सप्तमस्थान कामसौख्य का स्थान है। सप्तमस्थान पञ्चमस्थान का तृतीयस्थान होने से द्वितीय संतति का विचार इसी स्थान से किया जाता है। स्त्रियों की कुण्डली में सप्तमस्थान में पापग्रह होने पर गर्भपात, अकाल प्रसूती की सम्भावना तथा अन्य रोगों का जन्म होता है। संस्कृत ग्रन्थकारों के विचार में सप्तम में रवि-राहु होने पर सन्तति होकर बचती नहीं है। चन्द्र-बुध होने पर कन्या सन्तति होने की संभावना होती है। सप्तमस्थान में रवि, शनि या राहु से दृष्ट होने पर मृत सन्तति होती है। अष्टम के पापग्रह सन्तति की दृष्टि से चिन्ता जनक होते हैं। अष्टम में मङ्गल-शनि, रविमङ्गल, रवि-शनि, मङ्गल-गुरु, गुरु-राहु, शनि-राहु ग्रहों की जोडी सन्ततिसुख में बाधक होती है।

लग्नस्थान– यह स्थान शक्ति का निदर्शक है। जननक्षमता, वीर्यशक्ति का विचार लग्न, लग्नेश, शुक्र आदि ग्रहों के साथ करना होता है। निर्बल लग्नेश पञ्चम स्थान की दृष्टि से प्रतिकूल फलदायी होता है।

धनस्थान– धनस्थान के पापग्रह वंशविच्छेद कर सकते हैं।

ग्रहों की दृष्टियाँ और पञ्चमस्थान

ज्योतिषशास्त्र के नियमानुसार जिस स्थान पर शुभग्रह की दृष्टि होती है, उस स्थान का शुभफल और अशुभग्रह की दृष्टि अशुभ फल देती है। चन्द्र, शुक्र, गुरु ये शुभग्रह

हैं ऐसे ग्रह लाभस्थान में होने पर उनकी सातवीं दृष्टि पञ्चमभाव पर होती है, फलत: सन्ततिसुख रूप शुभफल मिलता है। प्रत्येक ग्रह की सातवीं दृष्टि पूर्णदृष्टि होती है। मङ्गल अपने स्थान से ४ तथा आठवें स्थान पर, गुरु पांच, नौ, स्थान पर, शनी तीन और दसवें स्थान पर पूर्णदृष्टि से देखते हैं। पञ्चमस्थान में पापग्रह और पञ्चम पर पापग्रहों की दृष्टि होने पर संततिसुख में कमी आती है। जैसे १. पञ्चम में स्थित राहु, धन में मङ्गल, अष्टम में शनि। २. पञ्चम में रवि, लाभ में मङ्गल, तृतीय में शनि। ३. पञ्चम में मङ्गल, लाभ में रवि, अष्टम में शनि। ४. पञ्चम में शनि, धन में मङ्गल, लाभ में राहु रवि, ऐसे ग्रह होने पर सन्ततिसुख नहीं मिलता।

पञ्चमस्थान और लाभस्थान से होने वाले ग्रहों के प्रतियोग

१. सन्तति के विषय में संकटपूर्ण होते है। २. पञ्चम व्ययस्थान से होने वाले पापग्रहों के षडाष्टक योग अत्यधिक अशुभ फल देने वाले होते हैं। ३. पञ्चम अष्टम स्थान के पापग्रहों के केन्द्रयोग सन्ततिसुख प्राप्त नहीं करने देते। इनके विपरीत शुभ ग्रहों के कुछ शुभयोग सन्तति के शिक्षण, उसकी कीर्ति आदि दृष्टि से शुभफलदायी होते हैं। जैस–पञ्चम में चन्द्र नवपञ्चम योग, भाग्यस्थ गुरु, पञ्चम में शुक्र नवमपञ्चम, लग्न गुरु, पञ्चमेश नवपञ्चम गुरु, शुक्र आदि।

गुरु को सन्ततिकारक ग्रह कहा गया है। गुरु विद्या, पाण्डित्य, बुद्धि और सन्तति की दृष्टि से अत्यधिक महत्त्वपूर्ण ग्रह है। साधारणत: शुक्र, शनि, बुध के लग्नों को गुरु शुभफलदायी नहीं होता। सिंह, कर्क, वृश्चिक, मीन, धनु लग्नों को गुरु के शुभफल मिलते हैं। शुक्र के लग्न में यदि गुरु को राशिगत बल न हो तो अनेक कुण्डलियों में वह अशुभ फलदायी दिखाई देता है।

स्थानहानिः करोति जीवः– इस सूत्र का अधिक अनुभव बुध, शुक्र तथा कन्या, तुला, वृषभ राशि में गुरु होने पर विशेष रूप से मिलता है। गुरु की केवल दृष्टि शुभ होती है। गुरु से पाँचवें तथा नवमस्थान तथा उसमें स्थित ग्रह गुरु की दृष्टि के कारण अधिक शुभफल देते हैं। विद्या और सन्तति की दृष्टि से गुरु का भिन्न-भिन्न महत्त्व है। **कुम्भ** राशि में गुरु के होने पर वह सामान्यत: बौद्धिक राशि होने के कारण व्यक्ति अत्यधिक प्रतिभावान् हो सकता है, किन्तु सन्तति की दृष्टि से शनि की राशि होने से सामान्य फल मिलेंगे। व्ययेश व्यय में, धनु या मीन राशि का गुरु व्यक्ति को शिक्षण में यां आध्यात्मिक, पारमार्थिक विषयों में अधिक शुभफल देगा, किन्तु सन्तति के विषय में वह वैसा फल नहीं दे सकता।

गुरु के राशिगत फल– कर्क-वृश्चिक और **मीन** जल राशियों का गुरु सामान्यतः अधिक सन्तति देने वाला होता है। **वृश्चिक** राशि के गुरु में कन्या सन्तति अधिक होती है। **मीन** राशि का गुरु पुत्र और कन्या दोनों देता है। **कर्क** राशि के गुरु का फल कहते समय नक्षत्र का भी विचार करना आवश्यकता है। **कर्क** का गुरु सन्तति देता है, किन्तु आश्लेषा नक्षत्र में होने पर सन्तति से दुःख भी मिलता है। **मेष, सिंह** और **धनु** इन अग्नि राशियो का गुरु सन्तति कम देता है। **मेष, धनु** राशि में पुत्र सन्तति होती है, किन्तु **सिंह** राशिगत विकृत गुरु पुत्र सन्तति नहीं देता। **वृषभ, मकर** और **तुला, कुम्भ** इन शुक्र, शनि राशि का गुरु सन्तति की दृष्टि से ठीक नहीं होता। शुक्र की राशि में अशुभ फल देता है। शनि की राशि में सन्तति कम और देर से होती है। बुध की राशि में सन्तति सुख हो सकता है। **कन्या** राशि में कन्या सन्तति होती है।

गुरोः पञ्चमतः पुत्रः– गुरु से पञ्चमस्थान में शुभग्रह होने पर सन्तति सुख उत्तम होता है, किन्तु गुरु से पञ्चमस्थान में पापग्रह या पापग्रहों की युतियाँ जैसे– शनि, मङ्गल, रवि, रविराहु, मङ्गल, मङ्गलहर्षल, शनिहर्षल होने पर सन्तति सुख नहीं मिलता। गुरु पापग्रहों की कर्तरि में होने पर सन्तति सुख नहीं मिलता। गुरु स्तम्भी या वक्री होने पर पञ्चमस्थान की दृष्टि से अशुभफल मिलता है। स्त्रियों की कुण्डली में यदि गुरु वक्री हो तो बार बार गर्भपात या गर्भाशय में दोष होते हैं। सन्तति के विषय में चिन्ता होती है। सामान्यतः गुरु लग्नेश, भाग्येश या लाभेश या धनेश की युति में होने पर सन्तति सुख के लिए उत्तम होता है। गुरु षष्ठेश, अष्टमेश, व्ययेश युक्त होने पर सन्तति से दुःख होता है। गुरु ८, १२ वें स्थान में होने पर अशुभफल मिलता है। गुरु, राहु की युति का होना एक महत्त्वपूर्ण कुयोग है। पञ्चमथान के सम्बन्ध में कुछ विशिष्ट नियम जो संस्कृतग्रन्थों सारावली, जातकतत्त्वम्, फलदीपिका, सर्वार्थचिन्तामणि, बृहत्पाराशरी में दिये गये हैं वे निम्नानुसार है–

१. पञ्चमस्थान में चन्द्र, शुक्र, बुध इन ग्रहों की युतियाँ होने पर कन्या सन्तति होती है। २. चन्द्र, शुक्र पञ्चमभाव होने पर और यदि पापग्रह लाभ में हो तो प्रथम कन्या सन्तति होती है। ३. चन्द्र शुक्र की राशि पञ्चम, नवम स्थान में होने पर एक ही पुत्र होता है। ४. बुध, शनि लग्न में होने पर और यदि गुरु, शुक्र वृश्चिकराशि में हो तो सन्तति से सुख नहीं मिलता। ५. बुध, केतु पञ्चम में हो तो पुत्रसुख देर से मिलता है। ६. पञ्चमेश उच्चराशि का केन्द्रकोण में यदि हो और गुरु की युति या दृष्टि भी हो

तो सुपुत्र होता है। ७. पञ्चमेश भाग्येश के साथ होने पर पुत्रसुख मिलता है। ८. पञ्चमेश, लग्नेश केन्द्र में होने पर और वह शुभग्रहों की युति में अथवा दृष्टि में हों तो सन्तति सुख मिलता है। ९. पञ्चमेश यदि बलवान् हो और गुरु लग्न में हो तथा धनेश दशमभाव में हो तो सन्तति अधिक होती है। १०. पञ्चमेश यदि षष्ठेश, अष्टमेश, व्ययेश युक्त हो तो पुत्रनाश होता है। ११. पञ्चमेश और धनेश दोनों ही निर्बली हों तथा पापग्रह पञ्चमस्थान को देखते हों तो अनेक स्त्रियाँ होने पर भी सन्तति प्राप्त नहीं होती। १२. पञ्चमेश लाभस्थान में होने पर और पापग्रह से दृष्ट न हो तो सन्तति होती है। १३. पञ्चमेश अष्टम में या धन में हो तो कन्या होती है। १४. पञ्चमेश अष्टम में, शनि राहु युक्त पञ्चम में होने पर, जाति बाह्य अथवा अनौरस सन्तति होती है। १५. लग्न पर पञ्चमेश की दृष्टि और लग्नेश की पञ्चमभाव पर यदि दृष्टि हो तो सन्तति आज्ञाधारक होती है और पिता को सुख देती है। १६. पञ्चमेश षष्ठ में हो या व्ययभाव में हो तो पुत्रों से शत्रुता होती है। १७. गुरु से पञ्चमभाव में पापग्रह होने पर सन्तति से सुख नहीं मिलता। १८. गुरु पञ्चम में होने पर भाग्य में यदि पापग्रह हो तो पुत्र सन्तति नहीं होती। १९. गुरु पञ्चम में, रवि नवम में और राहु शनि से पांचवाँ होने पर पुत्रसुख नहीं मिलता। २१. चतुर्थ में पापग्रह होने पर वंशविच्छेद होता है। २२. पापग्रह पञ्चम में, लग्न में, अष्टम में और व्यय में होने पर वंशविच्छेद होता है। २३. मङ्गल, शनि दशम में या नवम में होने पर वे अपुत्रता को बताते हैं। २४. शनि, मङ्गल चतुर्थभाव में होने पर दत्तक पुत्र होता है। २५. चन्द्र के अष्टम में पापग्रह होने पर वंशविच्छेद होता है।

दाम्पत्य प्रारब्धयोग के विषय में कुछ महत्त्वपूर्ण तथ्य

इसके पूर्व हम ज्योतिषशास्त्र की उपयोगिता के विषय में बता चुके हैं। संक्षेप में उसकी उपयोगिता इस प्रकार है–वस्तुतः ज्योतिषशास्त्र मनुष्य के जीवन में पूर्व में (भूतकाल) में घटित, वर्तमानकाल में जो घटित हो रही हो और भविष्यकाल में घटित होने वाली विविध घटनाओं के स्वरूप, उनका निश्चित समय का ज्ञान कराने वाला एक अद्वितीय शास्त्र है। इसलिए मनुष्यजीवन में यह शास्त्र अत्यधिक उपयोगी है। स्त्री-पुरुष यौवनारम्भ में कामवासना के कारण एक दूसरे की ओर आकृष्ट होते हैं और ऐसा होना स्वाभाविक भी है। प्रत्येक पुरुष की इच्छा होती है कि कोई स्त्री उसके प्रेम की प्रथम और अन्तिम विषय बने और प्रत्येक स्त्री को भी इच्छा होती है कि कोई पुरुष उसके प्रेम का प्रथम और अन्तिम विषय बने अर्थात् बाद में दूसरा कोई नहीं। इस नैसर्गिक कामवासना को योग्यरीति से नियन्त्रित कर उसके दुष्परिणाम को रोकने के लिए जनहित

कर्ताओं ने विवाहपद्धति प्रारम्भ की है। ज्योतिषशास्त्रानुसार रवि आदि ग्रह भिन्न-भिन्न बातों के कारक होते हैं। यथा–रवि आत्मा का, चन्द्र मन का और जन्म लग्न (पूर्वक्षितिज पर इष्टकाल पर और इष्टस्थान पर उदित होने वाली राशि) जातक का शरीर होता है। मङ्गल, बुध, गुरु, शुक्र और शनि ये पाँच ग्रह क्रमशः वाक्, हाथ, पैर, पायु और लिङ्ग इन पाँच कर्मेन्द्रियों के और श्रोत्र, त्वक्, नेत्र, जिह्वा (जीभ) और घ्राण इन पाँच ज्ञानेन्द्रियों के कारक होते हैं। ये पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ विविध क्रियाओं को सम्पादित करती हैं और मानव शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध इन पाँच विषयों का सेवन करता है। इन विविध विषयों का सेवन कर मानव सुखानुभव करता है। धर्म अर्थात् नैतिक बन्धन और उनके पालन का तात्पर्य है धर्माचरण– **धर्मे च अर्थेच कामे च नातिचरामि। नाति चरितव्यं त्वया।** इस प्रकार की शपथ ग्रहण कर पति पत्नी धर्म, अर्थ और काम इन तीन पुरुषार्थों को प्राप्त करने के लिए विवाहबद्ध होकर एक दूसरे के साथ होते हैं। वे दोनों उक्त शपथ का पालन करने का अथक प्रयत्न करते हैं, किन्तु जब किसी पुरुष या स्त्री को शारीरिकसुख और मानसिकसन्तोष प्राप्त नहीं होता तभी स्त्री या पुरुष धर्मबन्धन को तोड़कर ग्रहण की हुई शपथ का त्यागकर स्वैराचरण करना प्रारम्भ करते हैं। वास्तव में कोई भी स्त्री या पुरुष स्वैराचरण करना मनसे नहीं चाहता, किन्तु शारीरिकसुख और मानसिकसन्तोष प्राप्ति के लिए उन्हें स्वैराचरण के लिए विवश होना पड़ता है और पतित होने पर वह स्त्री या पुरुष अपने शीलरक्षण के विचार से परावृत्त हो जाता है।

योग्य पति, पत्नी का वरण

यह सार्वजनीन और सार्वभौमिक तथ्य है कि विवाह यदि अधोलिखित शास्त्रानुमोदित बिन्दुओं को दृष्टिगत रखकर सम्पन्न हों तो दाम्पत्य की विसंगतियों से बचा जा सकता है। वे बिन्दु है– (१) समान शक्ति के (२) समान रति (प्रेम) के (३) समान रूप सौन्दर्य के (४) समान गुणों के (५) समान शिक्षण के (६) समान आचार-विचारों के (७) समान स्वभाव के (८) समान आर्थिक स्तर के वधूवरों का ज्योतिषशास्त्रानुसार चुनाव कर यदि उन्हें विवाह बद्ध किया जाए तो निश्चित ही उन्हें शारीरिक सुख और मानसिक सन्तोष प्राप्त होता है। पति-पत्नी की जन्म पत्रिका में रवि, चन्द्र और लग्न में इस प्रकार साम्य होना चाहिए–एक की रवि राशि तो दूसरे की चन्द्र राशि या लग्न राशि हो, एक की चन्द्रराशि तो दूसरे की रवि राशि या लग्न राशि हो, एक की लग्न राशि तो दूसरे की रवि राशि या चन्द्र राशि हो। तात्पर्य यह है कि कम से कम रवि,

चन्द्र और लग्न में षडाष्टक योग नहीं होना चाहिए। इसके अतिरिक्त पति-पत्नी की पत्रिका में (१) सप्तमेश (२) सप्तम भाव कारक शुक्र (३) सप्तमपर पूर्ण दृष्टि रखने वाले ग्रहों की पूर्ण अनुकूलता या पूरकता का होना विशेष उत्तम हैं, क्योंकि सप्तमेश से रति प्रेम, सप्तमभाव पर पूर्णदृष्टि रखने वाले ग्रहों से विचारों की साम्यता, सप्तमभाव से शारीरिक स्वास्थ्य और सप्तमेश तथा शुक्र पर पूर्णदृष्टि रखने वाले ग्रहों से वैवाहिक जीवन की कुशलता का ज्ञान होता है।

किस कन्या से विवाह न करना चाहिए ?– क) मेष, सिंह और धनु इनमें से किसी अग्नि तत्त्व प्रधान राशि के जन्म लग्नवाली से, ख) जन्मकाल में अग्नितत्त्व प्रधान राशि (मेष, सिंह और धनु) में चन्द्र की (राशि वाली से), ग) लग्नेश अग्नि तत्त्व प्रधान राशि में होने पर, घ) अग्नि तत्त्व प्रधान राशि में ग्रहों की अधिकता होने पर, ङ) रवि, मङ्गल और गुरु ये पुरुष ग्रह और पुरुष भाव (विषम भाव) बलिष्ठ होने पर स्त्री पति की मर्जी से नहीं रहती।

किस पुरुष का चयन नहीं करना चाहिए ?– जिस पुरुष की कुण्डली के (१) समराशि (स्त्री राशि में) में ग्रहों की अधिकता होने पर (२) समभाव में (स्त्रीभाव में) ग्रहाधिक्य हो तो (३) समराशि का लग्न होने पर, चन्द्र और शुक्र ये स्त्रीग्रह और बुध, शनि ये नपुंसक ग्रह बलिष्ठ होने पर (४) रवि, मङ्गल और गुरु ये पुरुष ग्रह तथा विषमराशि (पुरुषराशि) बलहीन होने पर उसका चयन नहीं करना चाहिए, क्योंकि ऐसे पुरुष ढीले होते हैं।

मनोवृत्ति का विचार

जब किसी व्यक्ति की जन्म पत्रिका में– १. मेष, वृषभ, मिथुन और कर्क–ये आधिभौतिक राशियाँ बलिष्ठ होती हैं। (२) प्रथम, द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ ये आधिभौतिकभाव बलिष्ठ होते हैं और (३) शनि, मङ्गल ये तमोगुण प्रधान पापग्रह बलहीन होते हैं, तब वे राशियाँ, वे भाव और वे ग्रह तमोगुण के वृद्धि के कारण होते हैं। ऐसी तमोगुणप्रधान कुण्डली जिस व्यक्ति की होती है, वह तमोगुणी होता है। खाओ, पीओ, मोज करो, इस संसार के इन्द्रियजन्य समस्त सुखों का उपभोग करो, यह उस व्यक्ति की मनोवृत्ति होती है और वह व्यक्ति नास्तिक होता है। २. जब किसी व्यक्ति की जन्मलग्न कुण्डली में सिंह, कन्या, तुला और वृश्चिक ये आधिदैविक राशियाँ बलिष्ठ होती हैं (क) पञ्चम, षष्ठ, सप्तम और अष्टम ये आधिदैविकभाव बलिष्ठ होते हैं और बुध, शुक्र और नैसर्गिक पापग्रह चन्द्र–ये रजोगुणप्रधान ग्रह जब बलिष्ठ होते

हैं तब वे राशियाँ, वे भाव और वे ग्रह रजोगुण की वृद्धि के कारण होते हैं। ऐसी रजोगुणप्रधान जन्मलग्न वाली पत्रिका जिस व्यक्ति की होती है, वह इस संसार में समस्त सुखोपभोग प्राप्त कर और संसार के कार्यों को करके, यथाशक्ति परमार्थ करते हैं।
३. जब किसी व्यक्ति के जन्मलग्न में धनु, मकर, कुम्भ और मीन ये आध्यात्मिक राशियाँ, नवम, दशम, एकादश और द्वादश ये आध्यात्मिकभाव तथा रवि, गुरु और नैसर्गिक शुभग्रह तथा चन्द्र सत्वप्रधान ग्रह बलिष्ठ होते हैं तब वे राशियाँ, वे भाव और वे ग्रह सत्वगुण के प्रकर्ष में कारण होते हैं। तब वह सत्वगुणप्रधान जन्मपत्रिका जिसकी होती है, वह मोक्ष मार्ग प्राप्त करने वाली होती है। वैराग्य सम्पन्नता के कारण इस संसार के इन्द्रियजन्य सुखों की उसे विरक्ति होती है। परमेश्वर प्राप्ति ही उसका उद्देश्य होता है और उसके लिये वह सदा प्रयत्नशील रहता है। जब तमोगुणप्रधान जन्मपत्रिका के व्यक्ति का विवाह सत्त्वगुणप्रधान पत्रिका की स्त्री से होता है तब उन दोनों की विरुद्ध मनोवृत्ति के कारण तथा उन दोनों के भिन्न गुणधर्म के कारण उन दोनों में कभी सामञ्जस्य नहीं होता और अशान्ति रहती है। जब रजोगुणप्रधान पत्रिका के व्यक्ति का विवाह सत्त्वगुण पत्रिका के व्यक्ति के साथ होता है, तब उन दोनों में कभी मेल नहीं रहता और जब रजोगुणप्रधान पत्रिका के व्यक्ति का विवाह तमोगुणप्रधान पत्रिका के व्यक्ति के साथ होता है तब कुछ वर्ष तक तो उन दोनों में मेल रहता है, किन्तु बाद में एक दूसरे के विरुद्ध हो जाते हैं।

प्रकृतिविचार

शनि ग्रह और आद्य नाडी वातप्रकृति को बताती है। मिथुन, तुला और कुम्भ, वायुतत्त्वप्रधान राशियाँ है। रवि और मङ्गल तथा मध्य नाडी पित्तप्रकृति को बताती है। इसी प्रकार मेष, सिंह और धनु अग्नितत्त्वप्रधान है और पित्तप्रकृति को दर्शाती हैं। अन्त्यनाडी तथा गुरु ग्रह कफप्रकृति को बताते हैं, इसी प्रकार कर्क, वृश्चिक और मीन राशियाँ जलतत्त्व प्रधान राशियाँ है और कफप्रकृति को बताती है। चन्द्र और शुक्र ग्रह वातप्रधान/जलतत्त्व को बताते हैं। बुध त्रिदोष प्रकृति को बताता हैं। बुध, वृषभ और कन्या तथा मकर राशियाँ पृथ्वीतत्त्व की राशियाँ हैं। जन्मलग्न, लग्नेश लग्न में स्थित ग्रह, लग्नेश के साथ रहने वाले ग्रह और लग्न पर पूर्णदृष्टि रखने वाले ग्रह, रवि, उसकी राशि और नवमांश का पूर्ण विचार कर व्यक्ति की प्रकृति का विचार करना चाहिए।

सन्ततिहीन होने कारण

जिन पति-पत्नी की समान प्रकृति होती है, उन्हें समागम सुख योग्य प्रमाण में प्राप्त नहीं होता, इसीलिए उन्हें सन्तन्ति नहीं होती। जिन वधू-वरों का चन्द्र एक ही राशि में एक ही नक्षत्र और एक ही नक्षत्र चरण में होता है, ऐसे वधू-वरों का विवाह नहीं करना चाहिए। क्योंकि चन्द्र रक्त का कारक है, पति-पत्नी के चन्द्र के पूर्णांश साम्य अर्थात् उनके रक्त का पूर्ण साम्य होता है, ऐसे रक्त के पूर्णांश साम्य होने पर उस दम्पत्ति को सन्तति नहीं होती। पति-पत्नी के चन्द्र में अंशात्मक अशुभ नवमपञ्चमयोग नहीं होना चाहिए। यह योग संतति प्रतिबन्धक होता है (१) कर्क-वृश्चिक (२) कन्या-मकर (३) कुम्भ-मिथुन (४) मीन-कर्क ये चार अशुभ नवमपञ्चमयोग हैं। सिंह और कन्या ये दो राशियाँ वन्ध्या राशियाँ हैं। मिथुन-राशि भी अल्प प्रसव राशि है। इन तीन राशियों में से किस एक राशि में बलहीन पञ्चमेश हो तो (१) वह बलहीन दुःस्थान के स्वामी पापग्रह से दृष्ट या युक्त होने पर (२) सिंह, कन्या और मिथुन राशियों में से कोई एक राशि पञ्चमभाव में स्थित होने पर और पञ्चमेश बलहीन और दूषित होने पर (३) पञ्चमभाव कारक गुरु सिंह, कन्या और मिथुन राशियों में से किसी एक राशि में बलहीन तथा दूषित होने पर (४) बुध और शनि नपुंसकग्रह जन्मपत्रिका में सभी ग्रहों में बलिष्ठ होने पर (५) वृषभ, कन्या और मकर इन पृथ्वीतत्त्वों की राशियों में वक्री गुरु षष्ठ, अष्टम या द्वादशभावों में से किसी एक भाव में होने पर (६) तीनों नाडियों में से पति-पत्नी की समान नाडी होने पर और पञ्चमेश, पञ्चमभाव और पञ्चमभाव कारक गुरु दूषित और बलहीन होने पर (७) पञ्चमभाव पर या पञ्चमेश पर या गुरु पर दुःस्थान के स्वामी बलहीन शनि या मङ्गल की पूर्णदृष्टि होने पर सन्तति नहीं होती। या जीवित नहीं रहती। ये सात कारण सन्तति प्रतिबन्धक कारण हैं।

आर्तवदोष

जिस स्त्री की जन्म पत्रिका में चन्द्र और मङ्गल ये दो ग्रह बलहीन और दूषित होते हैं उस स्त्री को आर्तवदोष के कारण सन्तति नहीं होती।

वीर्यदोष

जिस पुरुष की जन्मपत्रिका में शुक्र बलहीन और दूषित होता है, विशेषतः वह दुःस्थान के स्वामी पापग्रह शनि से दृष्ट अथवा युक्त हो या दुःस्थान के स्वामी बुध से युक्त होता है इसी प्रकार वह (शुक्र) अग्निराशि में या विषमभाव में होने पर और वह

नवमांश बलहीन होता है तब उस पुरुष में वीर्यदोष होने के कारण सन्तति नहीं होती।

स्त्रीजातक

प्राचीन आचार्यों ने 'स्त्रीजातक' प्रकरण की चर्चा स्वतंत्ररूप से की है उस विषय में कुछ कहना उचित जानकर यहाँ कह रहे हैं। स्त्री की कुण्डली का विचार एक अलग दृष्टि है उसे समझना नितान्त आवश्यक है। स्त्री की कुण्डली के लग्न स्थान से और चन्द्र से उसके शरीर का विचार किया जाना चाहिए। लग्न और चन्द्र में जो बलवान् हो उसके नवम से सम्पत्ति, स्वरूप और पुत्रादिकों का विचार करना चाहिए, सप्तम स्थान से पतिविषयक विचार, पञ्चम स्थान से संतति विचार और अष्टम स्थान से पति की मृत्यु का विचार करना होता है।

प्रकृत प्रकरण में विस्तरश: चर्चा न करते हुए पूर्व के आचार्यों और हमारी परम्परा के अनुसार ज्योतिषाचार्य पुरुषोत्तमशास्त्री एवं महामहोपाध्याय पं. सदाशिव शास्त्री जी द्वारा बताए गए स्त्रियों विषयक इष्टानिष्ट योगों की चर्चा करना प्रस्तुत प्रसंग में योग्य प्रतीत हो रहा है।

जिस स्त्री के सप्तमस्थान में एकाधिक शुभग्रह हों अथवा उस स्थान पर शुभग्रहों की दृष्टियाँ हो उसका पति धनवान् होता है। यदि एक ही शुभग्रह अथवा शुभग्रह की दृष्टि होने पर वह स्त्री पति पर सदा अनुरक्त रहती है। सप्तम स्थान में दो अथवा अधिक पापग्रह हों या उनकी दृष्टि होने पर स्त्री पति को अत्यन्त क्लेशदायक होती है। सप्तमस्थान में शनि, मंगल, राहु अथवा नीचराशि का पापग्रह होना स्त्रियों को अनिष्टकारक होता है। सप्तमस्थान में अथवा सिंहराशि में शनि युक्त मंगल भी अनिष्ट फलकारक होता है।

जिस स्त्री के षष्ठ स्थान में अथवा अष्टम स्थान में चन्द्र हो अथवा चन्द्र की दृष्टि हो उस स्त्री के विवाह में अधिक प्रयास करने पडते हैं। सप्तम स्थान में रवि यदि पापग्रह युक्त अथवा पाप-दृष्ट हो तो उस स्त्री का पर्याप्त काल पतिविरह में व्यतीत होता है। उक्त स्थिति में यदि मंगल हो तो वैधन्य प्राप्त होता है। उक्त स्थिति का शनि विवाह में विलम्ब करता है और वैधव्य देता है। स्त्री की कुण्डली में प्रमुख रूप से चन्द्र, बुध और शुक्र ग्रह पापग्रहों से युक्त, पापग्रहदृष्ट अथवा निर्बल होने पर चरित्रभ्रष्ट होने की संभावना होती है और यदि ५-६-७-८ या १२वें स्थान में यदि उक्त ग्रह हों तो उक्त फलादेश की सत्यता अनुभव में भी आती है। किन्तु उन ग्रहों से अथवा लग्न, चन्द्र से गुरू का शुभदृष्टि योग या साहचर्य होने पर उक्त दोषों का निवारण हो जाता है।

सप्तम स्थान में **रवि** होने पर पति गौरवर्ण, क्रोधी और कामी, **चन्द्र** होने पर रूपवान्, गुणवान्, कृश, भोगी और चञ्चल, **मंगल** होने पर दिखने में नम्र, किन्तु क्रूर, आलसी, वाचाल, **बुध** होने पर विद्वान्, धनवान्, गुणवान्, व्यवहार चतुर, **गुरु** होने पर दीर्घायु, राजयोगी और बालक अवस्था में ही संतति कारक, **शुक्र** होने पर कान्तिमान्, विनोदी, खिलाडी, **शनि** होने पर वृद्धतनु, अल्पायु और पापकर्म में रत, और राहु-केतु होने पर पापवासनासक्त तथा नीच स्वभाव का होता है।

अष्टम स्थान में गुरू-शुक्र होने पर वह स्त्री मृतप्रजायुक्त और पापग्रह होने पर पतिसुख से वंचित होती है। जन्मकाल में अष्टम या द्वादशस्थान में पापग्रहयुक्त मंगल और लग्न में राहु-केतु, अथवा सप्तमेश अष्टमस्थान में और अष्टमेश सप्तमस्थान में होने पर वह कन्या जीवन पर्यन्त दु:खी रहती है।

जिस कन्या के सप्तम स्थान में उच्च का मंगल, बुध या गुरू हो तो वह लावण्यवती होती है। मंगल, गुरू उच्च को हों या पूर्णांशयुक्त स्वगृही हों अथवा चतुर्थस्थान में शुक्र या बुधयुक्त शुक्र हो तो वह कन्या अत्यन्त सम्पन्न वर को प्राप्त करती है। लग्न में चन्द्र, बुध, अथवा शुक्र होने पर कन्या सुख सौभाग्य प्राप्त करती है। तात्पर्य यह है कि लग्न, सप्तम और अष्टम स्थान कन्या सुख हेतु पापग्रह से रहित होना आवश्यक है अथवा उन स्थानों पर पापग्रहों की दृष्टि नहीं होनी चाहिए।

वृषभ, सिंह, कन्या अथवा वृश्चिक लग्न हो और पञ्चम में चन्द्र हो तो अल्पपुत्र होते हैं। चतुर्थ स्थान में पापग्रहों के आधिक्य से बहुसन्तति योग होता है परन्तु पापग्रह यदि तुला अथवा मीन राशि के हों तो संतति दरिद्र होती है। संतति के विचार में केवल पञ्चम स्थान से ही कार्यपूर्ण नहीं होता वरन् १-३-७-९-११ इन स्थानों का भी विचार अपेक्षित होता है।

विषकन्यायोग

शनिवार या रविवार को द्वितीया तिथि और आश्लेषा नक्षत्र होना, शनिवार को सप्तमी तिथि एवं कृत्तिका नक्षत्र होना, मंगलवार को सप्तमी अथवा द्वादशी तिथि और शततारका नक्षत्र होना, अथवा रविवार को द्वादशीयुक्त विशाखा नक्षत्र होना, उत्पन्न कन्या को 'विषकन्या' बनाता है। अथवा लग्न में शनि, पञ्चम में रवि और नवम स्थान में मंगल ग्रह होने पर या लग्न में एक पापग्रह और वहीं दो शत्रुक्षेत्र में शुभग्रह होने पर जात कन्या 'विषकन्या' कहलाती है। विषकन्या योग के कारण स्त्री शोकसन्तप्त, मृतसंतति एवं भाग्यहीन होती है। परन्तु इस योग का एक अपवाद भी है कि यदि

जन्मलग्न से अथवा चन्द्र के स्थान से सप्तम स्थान का स्वामी शुभग्रह होकर सप्तम में हो अथवा स्वक्षेत्री हो तो विषकन्या योग का परिहार हो जाता है।

ग्रहों के स्थानगत फल

प्रत्येक ग्रह का स्वरूप तथा प्रत्येक स्थान का स्वरूप ज्ञात होने पर ग्रह+भाव इन दोनों के एकत्र परिणाम को ज्ञात करना सरल होता है। जैसे–शुक्र सौन्दर्य का कारक ग्रह है और प्रथम स्थान से (अर्थात् जन्म लग्न से) व्यक्ति के स्वरूप, उसका वर्ण (रंग) देखा जाता है। अतः यदि प्रथमस्थान में शुक्र हो तो व्यक्ति दिखने में सुन्दर होने की कल्पना की जा सकती है। अतः इस प्रकरण में प्रत्येक ग्रह का स्वरूप गुण–धर्म और प्रत्येक स्थान का गुणधर्म इन दोनों के एकत्र परिणाम को दिखाया है। एक बात और– उस ग्रह से होने वाले (१) स्थान के अनुसार (२) राशि के अनुसार (३) भावेश के अनुसार और (४) अन्य ग्रहों के सहकार्य या विरोध के अनुसार (५) बलानुसार एकत्र परिणाम होते हैं। वस्तुतः ग्रह प्रत्येक स्थान में प्रत्येक राशि में किस प्रकार परिणाम कारक होता है यह जानना सरल नहीं है। स्थान माहात्म्य प्रत्येक वस्तु का होता है। खदान में गड़ा हुआ हीरा और अंगुठी में जड़ा हुआ, इन दोनों में अंगुठी में जड़ा हुआ हीरा अधिक चमकीला होता है खान के हीरे की अपेक्षा। नटी का अभिनय पडदेपर, वक्ता का वक्तृत्व सभा में, गायक का संगीत रसिकों की सभा में, ज्ञात होता है। इस प्रकार प्रत्येक वस्तु के माहात्म्य को उसके स्थान पर से जाना जा सकता है। यही नियम ग्रहों के विषय में है। **उदाहरणार्थ–** शुक्र ग्रह, काव्य, प्रणय, प्रेम, सौन्दर्य, कलात्मकता, आदि गुणधर्म का कारक है। यही ग्रह प्रणय, समाजप्रियता, कलात्मकता सर्जनशीलता, कल्पनाशक्ति आदि गुणों को जिस प्रकार पञ्चमस्थान से प्रकट कर सकता है, वैसे अन्य स्थान से नहीं। शुक्रग्रह स्त्री वैवाहिक सुख का कारक है, यह सप्तम या विवाह के स्थान में रहकर जिस प्रकार शुभफल दे सकता है। वैसे फल, मङ्गल जो साहस, पराक्रम शौर्य आदि का कारक है, सप्तमस्थान में रहकर नहीं कर सकता। सप्तमस्थान में शुक्र की प्रणयभावना का उत्कर्ष होगा, शुक्र का कवित्व पञ्चमस्थान में कल्पनाशक्ति का उच्च आविष्कार दिखा सकेगा, शुक्र का सौन्दर्य सप्तमस्थान में पत्नीसुख में दिखाई देगा। इसके विपरीत शुक्र षष्ठस्थान में अर्थात् रोगस्थान में स्थित होने पर प्रकृतिसौन्दर्य से मोहित होने वाले व्यक्ति को हॉस्पिटल के वातावरण में रहना पडेगा, उसके गुणों का विकास नहीं होगा, शुक्र का पञ्चमस्थान और सप्तमस्थान में रहने का जो औचित्य है, वह षष्ठ या अष्टमस्थान में नहीं होता। इन दोनों स्थानों में अत्यन्त विसंगति दिखाई देगी। अतः उपर्युक्त दृष्टि

का अवलम्बन करते हुए ग्रहों के स्थानगतफल का निर्धारण करना श्रेयस्कर होता है–

रवि का स्थानगत फल

प्रथमस्थान– का रवि व्यक्ति को मानी, उदार बनाता है। उसमें आत्मविश्वास जाग्रत रहता है। उसका सामाजिक दर्जा ऊँचा होता है।

द्वितीयस्थान– के रवि के कारण व्यक्ति उदार और खर्च करने वाला होता है। बोलने में अहम् की भावना होती है। नेत्र और गले में विकार होता है। रवि के साथ मंगल के होने पर आर्थिकहानि होती है। रवि राहु, रवि शनि का योग व्यक्ति को निर्धन बनाता है। मुखरोग उत्पन्न करता है। रवि-गुरु योग उत्कृष्ट संपत्ति देता है।

तृतीयस्थान– के रवि के कारण व्यक्ति स्वतंत्र विचार का होता है। किसी की सहायता अच्छी नहीं लगती। व्यक्ति में विवेक रहता है। दृढ़ निश्चयी होता है। वह न्यायी होता है तथा प्रसंगानुसार कोमल और कठोर होता है।

चतुर्थस्थान– के रवि के कारण व्यक्ति–यह रवि पापग्रह के साथ रहने पर मातृसुख नहीं देता। गृहसुख भी नहीं देता। हृदय-विकार होता है। वाहन से दुर्घटना होती है। मंगल, शनि, राहु के साथ रहने पर अशुभस्थिति निर्मित होती है। मनः शान्ति नहीं मिलती।

पंचमस्थान– में रवि के कारण व्यक्ति बौद्धिक कार्य का होता है। शुभ ग्रह के साथ रहने पर शिक्षण पूर्ण करता है। संततिसुख अच्छा देता है। उपासना की दृष्टि से यह रवि अच्छा होता है। पंचम, नवम या प्रथमस्थान में गुरु के रहते इस रवि के कारण बौद्धिकक्षेत्र में मान मान्यता मिलती है। रवि-बुध के योग में कुशाग्रह बुद्धि प्राप्त होती है।

षष्ठस्थान– के रवि के कारण व्यक्ति की नौकरी में भाग्योदय होता है। इस व्यक्ति में कार्यक्षमता अच्छी रहती है। सरकारी नौकरी में अधिकारयोग मिलता है। रवि-मंगल का योग इस स्थान के कारण अशुभ होता है। हड्डियों के विकार, हृदयविकार यह निर्माण करता है। व्ययस्थान के पापग्रह इसकी दृष्टि से अशुभ होते हैं। इस योग में मानहानि होती है।

सप्तमस्थान– के रवि के कारण पत्नी का स्वभाव व चेहरा अच्छा होता है। पत्नी स्वभाव से निश्चयी और मान करने वाली होती है। भाग्योदय कारक होता है

अष्टमस्थान– के रवि के कारण व्यक्ति की इच्छाएँ पूर्ण नहीं होती। अपयश

मिलता है। पापग्रह के साथ रहने पर आयु कम होती है। प्रतिरोध-शक्ति कम होती है

नवमस्थान– के रवि के कारण व्यक्ति का आचरण आदर्श होता है। स्वभाव मानी होता है। इस स्थान में रवि और दशम में गुरु के होने पर या, दशम में रवि और नवम में गुरु के होने पर उत्कृष्ट मान, अधिकार मिलता है।

दशमस्थान– का रवि राजयोग कारक होता है। व्यक्ति की आर्थिक और सामाजिक स्थिति उच्च होती है। व्यक्ति मान प्राप्त करने के लिए सतत प्रयत्नशील रहता है। सरकारी नौकरी करने वाले व्यक्ति की पत्रिका में यह रवि उच्चस्थान तथा उच्च अधिकार देता है।

एकादशस्थान– इस स्थान के रवि के कारण आर्थिकलाभ अच्छा होता है। व्यक्ति सम्मान से धन प्राप्त करता है तथा इच्छाएँ पूर्ण होती है। पंचमस्थान में पापग्रह होने पर संतति के लिए अशुभ होता है।

द्वादशस्थान– प्रतिकूल परिस्थिति यह रवि निर्माण करता है। मान भंग करता है। शनि के साथ रहने पर बन्धनयोग देता है। शारीरिक पीड़ा होती है।

चन्द्र का स्थानगत फल

चन्द्र मन का कारक ग्रह होने से अत्यन्त संवेदनशील ग्रह है। चन्द्र जिस राशि में होता है और जिन ग्रहों के योग में होता है, वे ग्रह चन्द्र के फल में बहुत परिवर्तन करते हैं।

प्रथमस्थान– इस स्थान में चन्द्र आरोग्य देता है। शरीर की कान्ति को बढ़ाता है। यह व्यक्ति को प्रेम करने वाला भावनाशील बनाता है। मन की चंचलता को बनाता है। व्यक्ति के ज्ञान को बढ़ाता है। इसके साथ शनि रहने पर स्वास्थ्य ठीक नहीं रहता। मानसिक स्थिति को खराब करता है। निराशा पैदा करता है। शनि के भ्रमणानुसार उम्र के ८, १५, २३, ३० और ४५ वाँ वर्ष कष्ट दायक रहते हैं। मंगल के साथ रहने पर व्यक्ति के दांत आगे बढ़े हुए होते है। राहु के साथ होने पर दृष्टि दोष पैदा होता है। उम्र कम करता है।

द्वितीयस्थान– के चन्द्र के कारण व्यक्ति अधिक बोलने वाला होता है। आवाज में मधुरता होती है। आर्थिकलाभ अच्छा होता है। व्यक्ति मीठा अधिक खाता है। अकेला चन्द्र होने पर आँखे सुन्दर होती है। अशुभग्रह के साथ रहने पर आँखों में

विकार होता है। गायन में प्रगति होती है। शुक्र के साथ रहने पर अभिनय कला आती है। व्यापारियों को द्रव पदार्थों से लाभ होता है।

तृतीयस्थान– का चन्द्र भाई का सुख देता है। स्त्री ग्रह होने से भाई के पीछे बहन होती है। भाइयों में प्रेमभाव रहता है। मानसिक चंचलता पैदा कराता है। अनेक विषयों में रुचि पैदा करता है। ललित साहित्य में रुचि पैदा करता है। इस स्थान के चंद्र के कारण बन्धुवर्ग को साड़ेसाती में कष्ट होता है। राहु का योग बहन के लिये कष्ट कारक होता है।

चतुर्थस्थान– का चन्द्र धनसंपत्ति, मानसिक शान्ति और सुख देने वाला होता है। व्यक्ति की उत्तर आयु सुखकारक होती है। वाहनसौख्य मिलता है। तृतीय में शनि के होने पर माँ को कष्ट होता है। राहु के साथ रहने पर परिवार में अशुभ घटनाएँ होती है।

पंचमस्थान– का चन्द्र शिक्षण ठीक देता है। शुभग्रह के साथ होने पर शिक्षण में प्राविण्य देता है। संतति सुख देता है। शुभग्रह के साथ होने पर यह द्यूत में रुचि बढ़ाता है। चन्द्र राहु-केतु के योग में बुद्धि पर अनिष्ट परिणाम होते हैं। इनके योग से सर्प के शाप से संतति नहीं होती। स्वप्न में सर्प दिखाई देते हैं। गुरु के साथ रहने पर शिक्षण के लिए विदेश जाता है।

षष्ठस्थान– का चन्द्र यह मानसिक स्थिति को खराब करता है। यह व्यक्ति को चिड़चिड़ा बनाता है। इसके कारण आत्मविश्वास का अभाव रहता है। अशुभ ग्रह के साथ रहने पर स्वास्थ्य खराब करता है। शनि के साथ रहने पर कफ पैदा करता है। क्षयरोग, दमा आदि होते हैं। दरिद्रता होती है। दृष्टिदोष भी पैदा करता है।

सप्तमस्थान– का चन्द्र अकेला होने पर सुन्दर पत्नी अच्छे स्वभाव की और उत्तम गृहिणी मिलती है। विवाह शीघ्र होता है। वैवाहिक सुख अच्छा मिलता है। शनि, राहु के साथ होने पर विवाह में देरी होती है। परन्तु जाति में, उम्र में बड़ी स्त्री से विवाह होता है। पुनर्विवाह भी होता है। स्त्रियों की पत्रिका में मंगल के साथ होने पर पति-पत्नी में विचार भिन्नता रहती है। डायवर्स, स्वास्थ्य खराब होता है। प्रवासयोग भी रहता है।

अष्टमस्थान– चन्द्र के कारण कम उम्र रहती है। जल से भय रहता है। शुभग्रह के साथ रहने पर (स्त्रियों की पत्रिका में) सौभाग्य बनाता है। मातृसुख की दृष्टि से यह चन्द्र ठीक नहीं होता। रिश्वत से धनप्राप्ति होती है। मंगल के साथ अकस्मात् मृत्यु होती है। स्त्रियों को रोग होते हैं।

नवमस्थान– के चन्द्र के कारण शिक्षण में प्रगति होती है। पंचमस्थान में शुभग्रह के होने पर यह चंद्र और अधिक लाभदायक होता है। धर्म में रुचि, वेदान्त ज्ञान की और झुकाव करता है। कीर्तियश मिलता है। भाग्य में वृद्धि होती है। शुक्र के साथ रहने पर सांपत्तिकस्तर बढ़ता है। विदेशगमन भी दिखाता है।

दशमस्थान– के चन्द्र के कारण नौकरी में स्थिरता नहीं होती। बार-बार परिवर्तन होता है। शुभग्रह के साथ रहने पर नाम कीर्ति को बढ़ाता है। व्यापारियों को द्रव पदार्थ से लाभ होता है। द्वितीयस्थान में गुरु शनि के रहने पर दशमस्थान का चन्द्र महत्त्वपूर्ण होता है।

एकादशस्थान– का चन्द्र कन्या संतति अधिक देता है। व्यक्ति स्त्रियों में अधिक रहता है। सुख में आसक्ति को बढ़ाता है। यह संपत्ति देता है।

द्वादशस्थान– का चन्द्र मानसिक व्यग्रता देता है। चंचलता, चिन्ता उत्पन्न करता है। जल प्रवास की दृष्टि से यह चंद्र अधिक महत्त्वपूर्ण होता है। राहु, शनि के साथ रहने पर अत्यन्त खराब रोग उत्पन्न करता है। दृष्टिदोष, दरिद्रता, को बढ़ाता है।

मङ्गलग्रह का स्थानगत फल

मङ्गलशक्ति, साहस, शौर्य पराक्रम आदि का कारक ग्रह है। इसे उसके अनुसार स्थान मिलने पर यह फल देता है।

प्रथमस्थान– इस स्थान में मंगल होने पर व्यक्ति लंबा, दृढ़, प्रभावशील, क्रोधी दिखाई देता है। उसकी आँखें लाल, शरीर कान्ति भी कुछ लाल रहती है। पापग्रह युक्त होने पर यह तीव्र फल देता है। इस प्रकार का योग पत्नी के लिए अनिष्टकारक होता है। स्वास्थ्य ठीक नहीं रहता। उष्णता का विकार होता है। यह अधिकार योग शासन करने की कला दिखाता है।

द्वितीयस्थान– इस स्थान का मंगल व्यक्ति को उद्योगी बनाता है। अर्थ प्राप्त करने के लिए भयभीत नहीं होता। यह जीवनोपयोगी विद्या देता है। यांत्रिक तांत्रिक ज्ञान इससे मिलता है। व्यय अधिक होता है। दूरदर्शिता व्यक्ति में नहीं होती। पापग्रह के साथ होने पर आँख का ऑपरेशन, दृष्टिदोष, अंधत्व होता है। स्पष्ट बोलने वाला होता है। इस स्थान में मंगल और अष्टम में शनि के होने पर एक्सीडेंट से मृत्युयोग बनता है। इस स्थान का मंगल, अष्टम में या सप्तम में पापग्रह होने पर द्विभार्यायोग बनाता है।

तृतीयस्थान– साहस, पराक्रम, कर्तृव्य शूरता, धैर्य इस दृष्टि से यह मंगल महत्त्व का है। इस स्थान के मंगल का व्यक्ति मन का चंचल अवश्य रहता है, किन्तु परिस्थिति में न डगमगाने वाला होता है। यह मंगल राहु, शनि के साथ रहने पर हाथ की हड्डी तोड़ता है।

चतुर्थस्थान– यह मङ्गल महत्त्वपूर्ण होता है। केन्द्रस्थान में होने के कारण। किन्तु गृहसुख नष्ट करता है, घर का वातावरण गरम रखता है। स्त्रियों की पत्रिका में शुभग्रह के साथ रहने पर कुछ अच्छा होता है। पापग्रह के साथ रहने पर वैवाहिक सुख नष्ट करता है। शुक्र के साथ रहने पर आर्थिक स्थिति सुधारता है। शनि, हर्षल के साथ रहने पर गृहसुख नष्ट करता है। हृदयरोग की दृष्टि से भी ठीक नहीं होता।

पञ्चमस्थान– यह सन्तति की दृष्टि से ठीक नहीं होता, इसके कारण पेट का ऑपरेशन, गर्भपात होता है। शनि-हर्षल के साथ ठीक नहीं होता। राहु के साथ यह संतति के लिए ठीक नहीं रहता, शारीरिक कुछ खराबी पैदा करता है। पुत्र शोक, पुत्रचिंता, पुत्र से बेबनाव करता है। मंगल-शुक्र मनुष्य को कामी बनाता है। व्यभिचारी बनाता है। अकेला मंगल शिक्षण में विलंब करता है। इसके लिये गणेश की उपासना करनी चाहिए।

षष्ठस्थान– इस स्थान का मङ्गल उष्णता के रोग पैदा करता है। आँखों में जलन, मुँह में छाले आदि होते हैं। बबासीर, रक्तस्राव करता है। बुध के साथ रहने पर ब्रेन में रोग पैदा करता है। त्वचा रोग पैदा करता है। मामा की स्थिति खराब करता है।

सप्तमस्थान– इस स्थान का मंगल स्त्री की पत्रिका में रहने पर पति को तथा पुरुष की पत्रिका में रहने पर स्त्री को जिद्दी बनाता है, मिजाज गरम रखता है। स्वभाव में उग्रता अधिक पैदा करता है। पति-पत्नी के विचारों में भिन्नता, बेबनाव पैदा करता है। विवाह सेटिल होते-होते टूटते हैं, निश्चित तारीख पर नहीं होते, प्रकृति में खराबी पैदा करता है। सप्तम में मंगल और राशि के लग्न में दूसरे स्थान में यह रहने पर या सप्तम में यह शनि, राहु के साथ रहने पर पति-पत्नी में से किसी एक को एक्सीडेंट में चोट आती है। तलाक कराता है। स्त्री की पत्रिका में विधवायोग बनाता है। मंगल हर्षल के साथ रहने पर जलजाने का भय रहता है। मंगल-नेप्चून के रहने पर विवाह में धोका होता है। शुक्र के साथ रहने पर अत्यधिक कामुकता पैदा करता है। पापग्रह के साथ यह मंगल विवाहसुख में खराबी लाता है। किन्तु शासकीय कार्य में प्रवीणता देता है। अधिकार योग होता है।

अष्टमस्थान– इस स्थान का मङ्गल स्त्रियों की पत्रिका में रहने पर अत्यन्त अशुभ होता है। अशुभग्रह के साथ रहने पर वैधव्ययोग बनाता है। स्त्री-रोग पैदा करता है। संतति के लिए अशुभ होता है। दूसरे, प्रथमस्थान में पापग्रह रहने पर आयु कम करता है। पत्नी अधिक खर्च करती है। विवाह के बाद आर्थिकस्थिति खराब करता है। पापग्रह के साथ रहने पर भाई का सुख नहीं देता।

नवमस्थान– इस स्थान का मङ्गल, पराक्रम, स्वकर्तृत्व, कीर्ति, भाग्य दिखाता है। यह व्यक्ति अपने परिश्रम से भाग्य को प्राप्त करता है। किन्तु इस मंगल के साथ पापग्रह और तृतीयग्रह में पापग्रह होने पर प्रवास में दुर्घटना होती है। प्रथम, पंचमस्थान में गुरु, बुध होने पर नवमस्थान का मंगल यांत्रिक-तांत्रिक ज्ञान को बढ़ाता है। इस मंगल में बहुत शक्ति होती है। वैद्यकीय व्यवसाय में प्रगति होती है। पापग्रह से युक्त होने पर पत्नी के घरवालों से कष्ट होता है। शक्ति की उपासना व्यक्ति करता है।

दशमस्थान– इस स्थान के मंगल, गुरु हर्शल, शनि आदि ग्रह बहुत महत्त्व के होते हैं। व्यक्ति के जीवन को निश्चित करने में इनका योग होता है। मंगल उच्चप्रकार की कार्यशक्ति भौतिक महत्त्वाकांक्षा उत्पन्न करता है। उच्चस्थान प्राप्त करने के लिए व्यक्ति निरंतर प्रयत्न करता है। नौकरी में बार-बार परिवर्तन करता है। वरिष्ठ व्यक्तियों से नहीं बनती इस मंगल से पोलिस अधिकारी, सर्जन, केमिस्ट ऐसे व्यवसाय मिलते हैं। यह दशमस्थान का मंगल, पंचम, लग्न, नवमस्थान में गुरु के होने पर अत्यन्त भाग्यकारक होता है। केन्द्रकोण का मंगल विशिष्ट योग देता है।

एकादशस्थान– इस स्थान का मङ्गल संतति के लिए अशुभ होता है। अर्थप्राप्ति के लिए बहुत प्रयत्न करते पड़ते है। किसी से मेल जोल नहीं होने देता। मंगल के साथ शनि आदि पापग्रह होने पर कान की पीड़ा होती है। मंगल-गुरु आर्थिकस्थिति कमजोर करते हैं। मंगल-शुक्र आर्थिकस्थितिं ठीक बनाता है। स्त्री के प्रति अधिक झुकाव रहता है।

द्वादशस्थान– यह सप्तमस्थान की दृष्टि से अशुभ रहता है। पापग्रह के साथ होने पर स्त्रियों के कारण लढ़ाई झगड़े होते हैं। बंधनयोग होता है। मंगल-शनि बंधन-योग दिखाता है। टायफाईड, बीमारी देता है। द्विभार्यायोग, कर्जदारी होती है। मंगल-बुध त्वचारोग, ब्रेनविकार दिखाता है। षष्ठस्थान की दृष्टि से यह मंगल अधिक अशुभ होता है। पापग्रह के साथ होने पर नेत्र पीड़ा, दृष्टिदोष, बायीं आँख में अंधत्व उत्पन्न

करता है। इस स्थान का मंगल गुरु के साथ होने पर, पापग्रह युक्त होने पर केवल कन्यासंतति देता है और पुत्रशोक भी।

बुध का स्थानगत फल

बुधग्रह बुद्धि का ग्रह है, यह अन्य ग्रहों के साथ रहने पर तदनुसार फल देता है। पत्रिका में इसके प्रथम, तृतीय, नवम और दशम स्थान महत्वपूर्ण होते हैं। यह रवि तथा शुक्र के साथ प्राय: रहता है।

प्रथमस्थान– में स्थित बुध होने पर व्यक्ति श्याम वर्ण का, हंसमुख होता है। व्यक्ति तीव्रबुद्धि का होता है। स्मरणशक्ति अच्छी होती है। हाजिर जबाबी होता है। प्रथमस्थान का बुध, पंचम और नवमस्थान में मंगल के होने पर व्यक्ति यांत्रिक ज्ञान संपन्न होता है। बुध के साथ मंगल होने पर अथवा दशम अथवा चतुर्थ में मंगल के होने पर व्यक्ति असत्य भाषी होता है। बुध के साथ शुक्र के होने पर वाणी में मधुरता रहती है। प्रथमस्थान में बुध के साथ हर्षल होने पर व्यक्ति विक्षिप्त होता है।

द्वितीयस्थान– इस स्थान का बुध व्यक्ति को अधिक वाचाल बनाता है। बुध के साथ राहु होने पर छोटे बच्चे देर से बोलते हैं। इस योग में बोलने में रुकावट उत्पन्न होती है। शुक्र के साथ रहने पर आर्थिकस्थिति सुदृढ़ होती है। इस स्थान के बुध के कारण व्यक्ति व्यवहार कुशल होता है।

तृतीयस्थान– इस स्थान में बुध के कारण व्यक्ति सभी विषयों में चोकस होता हैं। उसे ज्ञान प्राप्त होता है, उसकी तर्क बुद्धि उत्कृष्ट होती है। वह उत्कृष्ट वक्ता होता है। उसका लेखन उत्तम होता है। ज्योतिषशास्त्र, साहित्य में उसकी प्रगति होती है। तृतीय में बुध, पंचम और सप्तम में गुरु-हर्षल होने से व्यक्ति अत्यन्त बुद्धिमान् होता है। यह बुध अंक गणित, शॉर्ट हैण्ड, टाईपिंग, प्रेस, पुस्तक प्रकाशन आदि की दृष्टि से बहुत महत्त्व का होता है इसके कारण हस्ताक्षर उत्तम होता है।

चतुर्थस्थान– इस स्थान के बुध से व्यक्ति स्नेह, प्रेम करने वाला होता है। इस व्यक्ति के मित्र बहुत होते हैं। इस व्यक्ति को मातृसुख, गृहसुख अच्छा मिलता है। बुध के साथ मंगल होने पर इसका घर में किसी से मेल जोल नहीं रहता। गुरु, शुक्र के साथ रहने पर शिक्षण में प्रगति होती है।

पंचमस्थान– इस स्थान में बुध शुभग्रह के साथ रहने पर उच्च शिक्षण पूर्ण होता है। ज्योतिषी, ग्रंथ लेखक, गणितज्ञों के लिये अच्छा होता है। शनि, हर्षल नेपच्यून के साथ रहने पर उत्कृष्ट बुद्धिमता देता है। इस स्थान में बुध अकेला रहने पर संतति

कम होती है। बुध-शनि संतति नहीं देते। बुध-मंगल योग इंजीनियरिंग के लिये अच्छा होता है। किन्तु यह योग खोटे कामों को भी दिखाता है। असत्य भाषी होते हैं। राहु के साथ रहने पर मस्तिष्क विकार उत्पन्न करता है।

षष्ठस्थान– इस स्थान में बुध के कारण व्यक्ति को बिनाकारण लढ़ाई झगड़ा करने की आदत होती है। यह अविश्वासी होता है। असत्य बोलने वाला होता है। बुध-मंगल का योग उपर्युक्त बातें अधिक कराता है। बुध-राहु योग मस्तिष्क के लिए अशुभ होता है। बुध, शनि योग तथा राहु योग व्यक्ति को गूंगा, बधीर भी बनाता है।

सप्तमस्थान– इस स्थान का बुध तृतीय में शुक्र, चंद्र के होने पर बुद्धि के लिए बलवान् होता है। यह व्यक्ति व्यवहार कुशल, सुस्वभाव का होता है। पत्नी सुशिक्षित होती है। इस स्थान में बुध के होने पर और प्रथमस्थान में हर्षल होने पर व्यक्ति विक्षिप्त होता है ? वैवाहिक जीवन भी ठीक नहीं रहता। सप्तमस्थान का बुध व्यापार के लिए ठीक रहता है।

अष्टमस्थान– इस स्थान का बुध पाप ग्रह युक्त होने पर कफ विकार उत्पन्न करता है। मस्तिष्क विकार से मृत्यु होती है। भाइयों को बीमारी देता है। इस स्थान में बुध वक्री होने पर व्यक्ति की बुद्धिभ्रंश होती है। पंचम में पापग्रह होने पर यह बात निश्चित होती है।

नवमस्थान– इस स्थान में बुध के होने पर व्यक्ति की प्रसिद्धि लेखन से होती है। व्यक्ति व्यवहार कुशल होते हैं। उनकी कल्पना शक्ति उत्कृष्ट होती है।

दशमस्थान– इस स्थान का बुध अकेला व्यक्ति को अत्यन्त व्यवहारकुशल बनाता है। व्यापार का ज्ञान अच्छा होता है। इस स्थान के बुध से व्यक्ति अध्यापक, पत्रकार, अकाउन्टेटेन्ट होता है। रवि साथ में होने पर व्यापार में अधिक लाभ, अधिकार योग होता है।

एकादशस्थान– इस स्थान में बुध के होने पर व्यक्ति की मित्रता तरुण लोगों से होती है। शनि साथ में होने पर मित्र झूठ बोलने वाले मिलते हैं। मंगल साथ में होने पर मित्रों से बराबर झगड़ा होता है। व्यापार में आर्थिकलाभ होता है।

द्वादशस्थान– इस स्थान में बुध के कारण व्यक्ति असत्यभाषी बनाता है। झूठे काम कराता है। इससे जमीन से हानि, आर्थिकहानि होती है। प्रवास में रुचि पैदा करता है।

गुरु का स्थानगत फल

विद्या, संतति, मान, सम्मान, कीर्ति आदि का कारकग्रह गुरु का पत्रिका में महत्वपूर्ण स्थान है।

प्रथमस्थान– इस स्थान का गुरु आयु की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। छोटे बच्चों की पत्रिका में बालारिष्ट दोष को नष्ट करता है। यह व्यक्ति को प्रसन्न रखता है। आशावादी बनाता है। शान्तस्वभाव का बनाता है। व्यक्ति शरीर से सुगठित होता है। इस स्थान का गुरु-रवि, चंद्र, शुक्र के साथ यदि हो तो कीर्ति, भाग्य अच्छा होता है। या ये ग्रह पंचमस्थान में हो तो अधिक शुभ फल मिलता है।

द्वितीयस्थान– का गुरु होने पर व्यक्ति का जन्म अच्छे कुल में होता है। व्यक्ति की संपत्ति अच्छी होती है। शुक्र के साथ रहने पर अधिक धन लाभ होता है। गुरु-शनि, गुरु-मंगल, गुरु-केतु का योग धन नष्ट करता है। इस स्थान का गुरु वक्री होने पर व्यक्ति का जन्म मध्यवर्ग में होता है। इस स्थान का गुरु सेवारत व्यक्ति को अच्छा धन वेतन देने वाला होता है। व्यापारी को अच्छा धनलाभ होता है।

तृतीयस्थान– इस स्थान का गुरू व्यक्ति को स्वभाव से सज्जन बनाता है। वह परोपकारी होता है। शिक्षण में अच्छी प्रगति होती है। चार पाँच भाई होते हैं। कला में रुचि होती है। गुरु-राहु अधिकार प्राप्त कराता है। चन्द्र-गुरु भाग्य अनुकूल बनाता है। गुरु-केतु भाइयों के सुख को नष्ट करता है।

चतुर्थस्थान– इस स्थान का गुरू जीवन के उत्तरकाल में सुख शान्ति देता है। गुरु से सुख मिलता है। अशुभ ग्रह के साथ रहने पर युवावस्था में माँ बाप में से किसी एक को सुख शान्ति देता है। अशुभ ग्रह के साथ रहने पर युवावस्था में माँ बाप में से किसी एक का सुख नष्ट करता है। गुरु मंगल योग माँ से बेबनाव करता है। चतुर्थस्थान में रहने वाला गुरु स्त्री की पत्रिका में उत्तम सुख देता है। ऐसी स्त्रियाँ उत्तम गृहिणी होती है। शुक्र के साथ रहने पर वाहन सुख मिलता है।

पंचमस्थान– इस स्थान का गुरू संतति, विद्या का कारक होने के कारण विशेष महत्त्व का है। यह व्यक्ति को तर्कनिष्ठ बुद्धि प्रदान करता है। उच्च शिक्षण पूर्ण करता है। उसे पुरस्कार मिलते हैं। यह व्यक्ति को कीर्ति मान-सम्मान देता है। मंगल के साथ होने पर यह मर्दानी खेलों में यश देता है। शुक्र के साथ होने पर स्त्री दाक्षिण्य देता है। वेदान्त में रुचि पैदा करता है। शनि, राहू और मंगल के साथ रहने पर परीक्षा के

समय बीमारी, आर्थिक रुकावट, शिक्षण में दीर्घसूत्रता। विलंब से संतति देता है। गुरु-मंगल के कारण आर्थिक विचारों में बच्चों से मतभेद होता है। उम्र की २८ वें वर्ष से भाग्योदय होता है।

षष्ठस्थान– का गुरु उदरविकार अपचन देता है। मंगल के साथ होने पर पेट का ऑपरेशन होता है। रक्तविकार, गुरु के कारण मामा की आर्थिक स्थिति उत्तम होती है। गुरु-राहु के कारण मामा को संतानहीनता रहती है। इस स्थान का गुरु दशमस्थान में रवि-चंद्र के होने पर उत्कृष्ट भाग्योदय करता है। दशमस्थान की दृष्टि से यह गुरु कीर्ति एवं मान सम्मान के लिये अच्छा होता है।

सप्तमस्थान– इस स्थान का गुरु वैवाहिकसुख के लिये उत्तम रहता है। स्त्रियों की पत्रिका में चंद्र-गुरु, रवि-गुरु यह योग आर्थिक स्थिति अच्छी दिखाता है। उच्च पदवीधर पति होता है। पुरुष पत्रिका में गुरु सुशिक्षित, सुस्वभावी पत्नी का होना दिखता है। गुरु-शनि का योग विलंब से विवाह कराता है। विवाह का न होना। पति-पत्नी की उम्र में अधिक अन्तर रहता है। स्त्रियों की पत्रिका में गुरु-मंगल, गुरु, हर्षल योग वैधव्य, मतभेद निर्माण करता है। गुरु-शनि का योग पुनर्विवाह दिखाता है। प्रथमस्थान में अशुभ ग्रह होने पर गुरु विवाह संबंधी व्यक्ति की अपेक्षा को पूर्ण नहीं करता।

अष्टमस्थान– इस स्थान का गुरु आर्थिकलाभ कराता है। अचानक धन लाभ। यह व्यक्ति को लोभी बनता है। व्यक्ति कंजूस होता है। पापग्रह से युक्त होने पर संतति को अपाय करता है। राहु तथा मंगल से युक्त होने पर कन्या संतति देता है। इस स्थान के गुरु से व्यक्ति की पत्नी शान्त और सुस्वभावी होती है। इस स्थान में गोचरी का गुरु आने पर परिवार में प्रति १२ वर्ष में अशुभ घटना होती है। गुरु-शनि का योग गरीबी दिखाता है।

नवमस्थान– इस स्थान का गुरु अत्यधिक उत्कृष्ट होता है। कोई भी ग्रह इस स्थान में होने से भाग्य की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण होता है। यह ग्रह उच्च शिक्षण देता है। शिक्षण कीर्ति देने वाला होता है। यह ग्रह भाग्योदय करता है। लेखन उत्तम होता है। धार्मिक ग्रंथों का वाचन कराता है। धर्म तथा राजकारण की दृष्टि से यह गुरु उत्तम होता है। प्रथमस्थान में रवि, चन्द्र होने पर व्यक्ति परोपकारी होता है। राहु के साथ गुरु होने पर विदेश गमन कराता है। तृतीय स्थान में बुध, शुक्र के होने पर यह गुरु लेखन में कीर्ति लाभ करता है। उम्र के २८वें वर्ष से भाग्योदय होता है। ३६ से ४८ वर्ष जीवन में उत्तम होते हैं।

दशमस्थान– यह गुरु रवि के साथ होने पर राजयोग कारक होता है। उच्च मान,. कीर्ति यश देता है। व्यवसाय में प्रगति होती है। उम्र के ४८वें वर्ष के बाद कीर्ति मिलती है। स्त्रियों की पत्रिका में यह गुरु भाग्यवान् पति देता है। धनस्थान में शुक्र के होने पर यह गुरु अधिक संपत्ति देता है।

एकादशस्थान– इस स्थान के गुरु से अच्छे मित्र मिलते है। आर्थिक लाभ देता है। द्वितीयस्थान में शुक्र के होने पर आर्थिक लाभ देता है। द्वितीयस्थान में शुक्र के होने पर आर्थिकस्थिति सुधारता है। गुरु-मंगल के योग में आर्थिक लाभ नहीं होते। गुरु-शनि का योग मंदगति से आर्थिकस्थिति सुधारता है। संतति में विलंब होता है। रवि + शुक्र के साथ का गुरु वाहनसुख देता है।

द्वादशस्थान– इस स्थान का गुरु शिक्षण तथा धर्म की दृष्टि से अच्छा होता है। आर्थिक दृष्टि से अच्छा नहीं होता। मंगल-गुरु योग शिक्षण पूर्ण नहीं होने देता। गुरु-केतु विरक्ति संन्यास की ओर झुकाव करता है। मंगल-गुरु, शनि-गुरु आर्थिक कष्ट कराता है। बन्धनयोग होता है।

शुक्र का स्थानगत फल

प्रथमस्थान– प्रथमस्थान में शुक्र होने पर व्यक्ति सुन्दर होता है। उसका शरीरसौष्ठव उत्तम होता है, आँखे आकर्षक होती हैं। व्यक्ति प्रसन्न रहने वाला होता है, फेशन, साफ सुथरा रहने की इच्छा उसकी होती है। ललितकला, काव्य, संगीत, साहित्य आदि की विशेष रुचि उसकी होती है। भाग्य की दृष्टि से, सुख की दृष्टि से शुक्र उत्तम फल देता है। विवाह सुख की दृष्टि से भी शुक्र उत्तम रहता है। इसी प्रथम स्थान में इसके साथ मङ्गल, हर्षल ग्रह होने पर व्यक्ति कामी, विवाह में वैचित्र्य, परजाति की कन्या से विवाह, माँ-बाप की इच्छा के विरुद्ध कार्य करने वाला होता है। चन्द्र, रवि, गुरु ग्रह शुक्र के स्वरूप को बढ़ाते हैं। राहु युक्त शुक्र होने पर आयु में बडी विधवा, दूसरी जाति की कन्या से विवाह होता है। पत्नी बीमार रहती है। बुध युक्त शुक्र होने पर आवाज में मिठास रहती है। शुक्र, शनि का योग शान्तप्रेम का द्योतक रहता है। इस योग में विवाह देर से होता है, किन्तु पत्नी का स्वभाव अच्छा होता है, स्त्रियों की पत्रिका में प्रथमस्थान में शुक्र होने पर उसके बाल लंबे होते हैं, दांत शुभ्र होते हैं, प्रथमस्थान में स्थित चन्द्र, शुक्र, गुरु स्त्रियों को भाग्यशाली बनाते हैं। स्त्रियों की पत्रिका में जलराशि में स्थित चन्द्र, शुक्र, शुक्र, मङ्गल उसके सौन्दर्य की वृद्धि करते

हैं, मादकता लाते हैं, शुक्र के साथ शुभग्रह होने पर वाहनसुख मिलता है।

द्वितीयस्थान– द्वितीयस्थान में शुक्र होने पर व्यक्ति की आँखें सुन्दर होती है। दृष्टि में एक विशेष प्रकार का आकर्षण होता है। आवाज में मिठास होती है बोलने पर दूसरे पर प्रभाव पड़ता है। पारिवारिक सुख मिलता है। आर्थिकस्थिरता रहती है। किसी बात की कमी नहीं रहती। गायन में प्रगति होती है। गायक लोगों के लिये द्वितीय तथा तृतीयस्थान का शुक्र उत्तम होता है। संगीत, कला, समानकार्य, ऐशो आराम की वस्तुओं, अलंकारों, खाद्य पदार्थों से लाभ होता है और व्यय भी इन्हीं वस्तुओं पर होता है। मङ्गल-शुक्र का योग स्त्रियों की पत्रिका में उत्तम साम्पत्तिक स्थिति को दिखाता है। उन्हें पति भी अच्छी स्थिति का मिलता है। गुरु, शुक्र का योग बडे लोगों से परिचय कराता है। उनसे लाभ भी होता है। शनि के योग में, ऐसे ही गुरु के शुभयोग में शुक्र उत्कृष्ट साम्पत्तिक लाभ दिखाता है। बुध, शुक्र का योग व्यापार के लिये उत्तम होता है। दूसरे स्थान का शुक्र प्रति ७-८ वर्षों के बाद सम्पत्ति का उत्कर्ष दिखाता है। द्वितीयस्थान में शुक्र-चन्द्र का योग व्यक्ति की वाणी में मधुरता लाता है। द्वितीयस्थान का गुरु, चन्द्र, शुक्र का योग सम्पत्ति का स्तर अच्छा रखता है।

तृतीयस्थान– का शुक्र भाई बहन का सुख देता है। बहन की स्थिति अच्छी होती है। बन्धु-बान्धवों से सम्बन्ध उत्तम रहते हैं। यह शुक्र प्रसन्न रखता है। व्यक्ति के हस्ताक्षर सुन्दर होते हैं। वाचन लेखन में रुचि, चित्रकला, प्रकृति प्रेम, यात्रा प्रेम, कवि की भावना रहती है। कल्पना शक्ति उत्तम। तृतीयस्थान में शुक्र-चन्द्र का योग कला की दृष्टि से उत्तम रहता है। शुक्र, राहु का योग बहिन के लिए अशुभ रहता है।

चतुर्थ स्थान– चतुर्थस्थान का शुक्र उत्तम परिस्थिति निर्माण करता है। घर में उत्तम वातावरण रहता है। सर्वत्र सुख संपदा रहती है। व्यक्ति को संतोष रहता है। घर सभी सुख साधनों से भरा रहता है। व्यक्ति का खुद का घर बन जाता है। मातृसुख मिलता है। व्यक्ति मातृभक्त रहता है। मातुल (मामा) की स्थिति अच्छी रहती है। शुक्र चन्द्र, गुरु-शुक्र का योग भाग्योदय कारक रहता है। उत्तम गृहिणी की पत्रिका में ऐसे शुभ ग्रह होते हैं। शनि-राहु का योग दूध में नमक के समान अशुभ रहता है।

पञ्चमस्थान– इस स्थान के शुक्र में सर्जनशीलता अधिक रहती है। पञ्चमस्थान का शुक्र कला के लिए पोषक रहता है। उत्कृष्ट वाद्य वादक, गायक इस शुक्र से बनते हैं। उत्कृष्ट कवित्व, शीघ्र कवित्व, यह ग्रह देता है। स्त्रियों की पत्रिका में पञ्चमस्थ शुक्र स्त्रियों को सीने की कला में प्रवीणता देता है। कढाई, बुनाई, कला में निपुणता शुक्र

से मिलती है। पञ्चमस्थ शुक्र के कारण प्रेम विवाह, सहवासोत्तर विवाह होता है। इस शुक्र के कारण स्त्रियों से परिचय अधिक होता है। शुक्र-मङ्गल, शुक्र-राहु, शुक्र-हर्षल का योग व्यक्ति को विषयासक्त बनाता है। स्त्रियों की पत्रिका में शुक्र-रवि, शुक्र-हर्षल योग दिखाऊ प्रेम का द्योतक होता है। शुक्र-मङ्गल, शुक्र-हर्षल का योग होने पर लड़कियों का विवाह यथाशीघ्र कर देना चाहिए। कभी प्रेम कार्य में धोखा भी होता है। पञ्चमस्थान के शुक्र से कन्या सन्तति अधिक होती है।

षष्ठस्थान— इस स्थान का शुक्र निस्तेज रहता है। इस स्थान के शुक्र के कारण व्यक्ति आलसी होता है। ऐष आराम अधिक होता है। मामा से धन लाभ होता है। मूत्र-रोग, गुह्यरोग, क्षयरोग होते हैं।

सप्तमस्थान— का शुक्र विवाह, कामसुख देता है। पत्नी सुन्दर, सुस्वभावी होती है, कर्तव्यदक्ष होती है। इस शुक्र से विवाह शीघ्र होता है। पुरुष की पत्रिका में २४ वर्ष की आयु में तथा स्त्री की पत्रिका में १९ वर्ष की आयु में विवाह होता है। विवाह के बाद भाग्योदय होता है। शुक्र, रवि या चन्द्र का योग होने पर पत्नी सुन्दर, कला में निपुण होती है। शनि-शुक्र से देर से विवाह होता है। पत्नी शांत स्वभाव की होती है। प्रथमस्थान में मङ्गल, राहु, हर्षल के होने पर वैवाहिक सुख में कमी आती है। शुक्र-राहु, शुक्र-केतु के योग से दो विवाह, दूसरी जाति की स्त्री से विवाह होता है। पति-पत्नी की आयु में अधिक अन्तर रहता है। शुक्र के साथ तृतीय तथा एकादशस्थान से होने वाले शुभयोग से शुक्र का फल अच्छा मिलता है। दूसरे और व्ययस्थान से होने वाले अशुभयोग शुक्र के कारकत्व में कमी लाते हैं। प्रेम विवाह की दृष्टि से सप्तमस्थान का शुक्र अधिक महत्त्वपूर्ण होता है।

अष्टमस्थान— इस स्थान के शुक्र से आर्थिकलाभ अच्छा होता है। शुक्र-रवि, गुरु, चन्द्र इन शुभ ग्रहों के कारण आर्थिक स्थिति उत्तम रहती है। अचानक धन लाभ सट्टा आदि होता है। शुक्र-राहु, शुक्र-केतु, शुक्र-शनि का योग जीवन के उत्तरार्ध में कष्टदायक रहता है। शुभग्रह के योग में विवाह के बाद आर्थिक स्थिति में सुधार होता है। अष्टम के शुक्र से मूत्राशय में विकार उत्पन्न होता है। स्त्रीरोग भी होते हैं।

नवमस्थान— इस स्थान का शुक्र कीर्ति, भाग्य, उत्कृष्ट प्रकार के संसार का सुख देने वाला होता है। व्यक्ति परोपकारी तथा धार्मिकवृत्ति का होता है। पञ्चमस्थान की तरह ही इस स्थान का शुक्र किसी भी कला के लिए पोषक होता है। काव्य, गायन, वादन आदि तृतीयस्थान की तरह यह शुक्र वाचन में रुचि उत्पन्न करता है। इस शुक्र

के साथ चन्द्र, गुरु, बुध ग्रह हो तो व्यक्ति उत्कृष्ट लेखक होता है। रवि के साथ शुक्र होने पर उच्चशिक्षण पूर्ण कराता है। इस शुक्र से आयु के २४, ३२, ३३, ४०-४२, ४८ वर्ष उत्तम होते हैं। इस स्थान का शुक्र तीसरी कन्या देता है। सन्तति से उत्तमसुख मिलता है।

दशमस्थान– इस स्थान का शुक्र आर्थिक स्थिति उत्तम बताता है। उद्योग में प्रगति होती है। नौकरी में अच्छा स्थान मिलता है। थोड़े समय में ही अच्छी प्रगति होती है। यह शुक्र कपड़ा, खाद्य पदार्थ, ऐशोआराम की वस्तुओं, सौन्दर्य प्रसाधान की वस्तुओं के व्यवसाय के लिए अच्छा होता है। सोना-चांदी के व्यापार से सभी लाभ होता है। चन्द्र-शुक्र से व्यक्ति भाग्यशाली होता है। व्यक्ति का स्वभाव अच्छा होता है, स्त्री को भाग्यवान् पति मिलता है। दशमस्थान का शुक्र और द्वितीयस्थान का गुरु अच्छे भाग्य को बताता है।

एकादशस्थान– यह स्थान आर्थिक लाभ का है। यहाँ शुक्र होने पर आर्थिक लाभ अच्छा होता है। सर्विस उत्तम मिलती है। समाजप्रियता बढ़ती है। वाहन सुख मिलता है। सन्ततिसुख मिलता है। कन्या सन्तति अधिक रहती है। व्यक्ति कामी होता है।

द्वादशस्थान– इस स्थान के शुक्र के कारण व्यक्ति की प्रेमभावना शुद्ध नहीं होती। गुप्तप्रेम की ओर अधिक झुकाव रहता है। शुक्र-राहु का योग अन्य जाति की कन्या से विवाह सम्बन्ध कराता है। विवाह के बाद भी परस्त्री सम्बन्ध होता है। कन्या की पत्रिकाओं में इस स्थान के शुक्र के साथ मङ्गल, शनि, राहु होने पर उसका विवाह यथासमय कर देना चाहिए। पापग्रह युक्त शुक्र नेत्रपीड़ा देता है। पापग्रह युक्त शुक्र के होने पर पति संशयी, तलाक पति से वियोग आदि फल मिलते हैं।

शनि का स्थानगत फल

प्रथमस्थान–में शनि के कारण व्यक्ति प्रौढ़विचारों के होते हैं। इसके कारण जीवन में निराशा जल्दी आती है। यह शनि अधिक विलंब से उम्र के ३६ वें वर्ष में भाग्योदय करता है। विवाह देर से होता है। रवि-चन्द्र के साथ का शनि अनेक रुकावटों को उत्पन्न करता है। शनि भ्रमण के अनुसार उम्र के वर्ष ३, ८, १७, २७, ३२ अधिक कष्टदायक होते हैं। शनि के साथ का मंगल दुर्घटना कराता है। दुर्घटना से ही मृत्यु होती है।

द्वितीयस्थान– का शनि दशमभाव में स्थित गुरु के होने पर धनसंपत्ति उत्कृष्ट

दिखाता है। शुक्र के साथ होने पर धनलाभ देता है। द्वितीय में शुभग्रह के साथ रहने पर स्थायी इस्टेट, घर की अच्छी माली हालत दिखाता है। इस स्थान के शनि के कारण व्यक्ति विचार कर धन खर्च करता है। व्यवहारी बनाता है। व्यक्ति कम बोलने वाला होता है। व्यक्ति शान्त स्वभाव का होता है। लोहे का, कोयले का व्यापार लाभदायक रहता है।

तृतीयस्थान– का शनि भाई का सुख नहीं देता। व्यक्ति गंभीर विचारशील रहता है। धैर्यशील रहता है। पाप ग्रह के साथ रहने पर भाई के संसार को बिगाड़ता है। नेत्ररोग, गले में विकार उत्पन्न करता है। राहु, मंगल के साथ रहने पर भाई के लिए अशुभ रहता है। तृतीयस्थान, अष्टमस्थान का अष्टमस्थान होने के कारण पापग्रह के साथ का शनि आयु देता है।

चतुर्थस्थान– का शनि मातृसुख नष्ट करता है। माता से बेबनाव रहता है। उम्र के ३७ वें वर्ष में भाग्योदय होता है। इस शनि के कारण गृहसुख नहीं मिलता।

पंचमस्थान– में शनि के कारण व्यक्ति बुद्धिमान् होता है। व्यक्ति स्वार्थी और व्यवहारकुशल होता है। विश्वास करने लायक नहीं होता। लॉ कायदा शास्त्र के लिये पंचम और एकादश स्थान का शनि महत्त्वपूर्ण होता है। बुध, गुरु के साथ रहने पर यह शनि उच्चस्तर का, बुद्धिमान बनाता है, यदि ये ग्रह ३, १ और ९ वें स्थान में हो तो। संतति विलंब से होती है। पापग्रह के साथ रहने पर संतति नहीं होती।

षष्ठस्थान– के शनि के कारण शत्रु उत्पन्न होते हैं, मनःस्ताप होता है। जीवन में कष्ट होते हैं। रोग की दृष्टि से यह शनि अशुभ होता है। खांसी, लकवा, दमा, क्षय आदि रोग उत्पन्न होते हैं। पैरों के रोग, सूजन आदि होते हैं। संधिवात, आदि होते हैं। पापग्रह के साथ रहने पर रोग की तीव्रता रहती है। दशम में रवि, गुरु के रहने पर नौकरी में भाग्योदय करता है। व्यय स्थान में पापग्रह के कारण व्यक्ति को पंगुत्व देता है।

सप्तमस्थान– पुरुष की पत्रिका में यह शनि उम्र के ३० वर्ष तक विवाह नहीं होने देता। यह शनि शान्तस्वभाव का होने के कारण पत्नी शान्तस्वभाव, दिखाई देने में प्रौढ़ और शामवर्ण की होती है। इस स्थान में शनि रहने पर–प्रथम, द्वितीय, व्यय और अष्टमस्थान में मंगल के रहने पर द्विभार्या योग होता है।

अष्टमस्थान– में शनि रहने पर दीर्घायु प्राप्त होती है। दुःख दीनता देने वाला यह शनि होता है। लंबी बीमारी देता है। निर्धन कुल की पत्नी मिलती है। यह शनि

रवि, मंगल, राहु के साथ रहने पर शरीर में विचित्र रोग उत्पन्न करता हैं। मृत्यु दुर्घटना में होती है।

नवमस्थान– में शनि के कारण व्यक्ति परम्परागत विचारोंवाला कर्मठ होता है। दशम में चंद्र एवं रवि के होने पर यह पितृसुख नहीं देता। यह व्यक्ति को प्रौढ़विचार देता है। उसकी वृत्ति न्यायी होती है। इसके कारण व्यक्ति लॉ कायदे का शास्त्र, तत्त्वज्ञान आदि का अभ्यास करता है।

दशमस्थान– के शनि के कारण व्यक्ति को उच्चपद प्राप्त होता है। पिता के विचारों से मेल नहीं रहता।

एकादशस्थान– के शनि के कारण कानूनशास्त्र का अभ्यास अधिक होता है। व्यक्ति के मित्र कम होते हैं। विलंब से संतति होती है। पंचम में पापग्रह के होने पर यह शनि संतति नहीं देता। अकेला शनि रहने पर विलंब से संतति होती है।

द्वादशस्थान– के शनि के कारण व्यक्ति को प्रतिकूल वातावरण मिलता है। जीवन में योग्यसन्धि या भाग्य-प्राप्त नहीं होता। हर चीज विलंब से होती है। निराशा होती है। पापग्रह के साथ यह शनि होने पर बन्धनयोग होता है। धन की हानि होती है। चिन्ता अधिक होती है।

सामान्यत: लोगों की धारणा है कि ज्योतिषशास्त्र का उपयोग केवल विवाह के समय वर-वधू की कुण्डली मिलान में ही होता है, किन्तु ऐसा नहीं है। इसका उपयोग जीवन की विभिन्न समस्याओं को जानने में, उनके हल ढूँढने में भी होता है। जैसे, बीमार व्यक्ति कब स्वस्थ होगा ? अध्ययन के लिए कौन सा विषय लेना अधिक उपयुक्त होगा। नौकरी कब मिलेगी। प्रमोशन कब होगा ? स्थानान्तरण होगा या नहीं। सन्तान विषयक प्रश्न-कन्या होगी या पुत्र ? रुका हुआ धन कब मिलेगा ? परीक्षा में उत्तीर्ण होऊँगा या नहीं ? खोया हुआ व्यक्ति कब लौटेगा या नहीं ? वह जीवित है या नहीं ? विवाह करने पर आने वाली वधू परिवार में मिल कर रहेगी या नहीं ? उसका स्वभाव मिलनासार रहेगा या नहीं। आदि-आदि।

ज्योतिषशास्त्र के द्वारा रोगनिवारण सरलता से किया जा सकता है। इसीलिए प्राचीन वैद्य आयुर्वेद के साथ-साथ ज्योतिष का भी ज्ञान रखते थे। जिससे वे बीमारी का परीक्षण ग्रहों की स्थिति के अनुसार सरलता से कर लेते थे। इसी प्रकार ज्योतिषियों को भी मानवशरीरविज्ञान का ज्ञान होना आवश्यक है। यथा जन्मपत्रिका में जो राशि या

ग्रह छठे, आठवें या बारहवें स्थान में पीडित हों या इन स्थानों के स्वामी होकर पीडित हों तो उनसे सम्बन्धित बीमारी की सम्भावना रहती है। इस शास्त्र द्वारा बीमारियों का पूर्वानुमान लगाया जा सकता है और बीमारी से बचा जा सकता है। यदि कोई ग्रह बुरे प्रभाव में हों तो वह निम्न बीमारी दे सकता है, यदि वह ३, ६ या ८ वें घर में हो या उनसे सम्बन्ध रखता है यथा—

१. **सूर्य–** हृदय, उदर, दांई आँख, पैर जलने का भाव, गिरना, रक्त प्रवाह में बाधा आदि।
२. **चन्द्र–** शरीर के तरलपदार्थ, रक्त, बांई आँख, छाती, दिमागी परेशानी महिलाओं में मासिक चक्र।
३. **मङ्गल–** सिर, जानवर का काटना, दुर्घटना, जलना, घाव, सर्जकिल ऑपरेशन, उच्च रक्तचाप, गर्भपात आदि।
४. **बुध–** गला, कान, फेफडे, आवाज, बुरे सपने।
५. **गुरु–** लीवर, गालब्लेडर, शरीर में चर्बी, कान इत्यादि।
६. **शुक्र–** मूत्र जलन, गुप्त अंग, गुप्तरोग, आँख, आंते, अपेण्डिक्स, मधुमेह, पथरी आदि।
७. **शनि–** पैर, पंजों की नसें, लकवा उदासी, थकान।
८. **राहु–** हड्डियाँ, जहर फैलना, सर्पदंश, क्रॉनिक बीमारियाँ, भय आदि।
९. **केतु–** हकलाना, पहचान में दिक्कत, आन्त, परजीवि आदि। ज्योतिषी को ३,६, व ८ वें घर के स्वामी ग्रह की ताकत (डिग्री) देखनी चाहिए।

ग्रहों के द्वारा रोग से बचने का उपाय

१. **सूर्य के लिए–** गेहूँ, गुड, एवं तांबा, धर्म स्थान में दें।
२. **चन्द्र के लिए–** मोती, चांवल, चांदी का दान करें।
३. **मङ्गलके लिए–** देसी खांड, मसूर दान करें।
४. **बुध के लिए–** मूंग दान करें।
५. **गुरु के लिए–** चनादाल, केसर, हल्दी दान करें।
६. **शुक्र के लिए–** ज्वार, दही, हीरा दान करें।
७. **शनि के लिए–** लोहा, अथवा पीतल दान करें।
८. **राहु के लिए–** जौ, गोमेद, सरसों का दान करें।
९. **केतु के लिए–** तिल का दान करें।

लाल किताब के अनुसार ग्रहों के योग से होने वाले रोग

१. जब सूर्य से शुक्र बुध या गुरु मिलते हैं तो जातक को सांस एवं दमा होता है।
२. चन्द्र और राहु के सम्बन्ध से निमोनिया या पागलपन।
३. शुक्र एवं राहु सम्बन्ध से नामर्दी होती है।
४. चन्द्र और बुध या मङ्गल के टकराव से ग्रन्थियाँ प्रभावित होती है।
५. गुरु और राहु के योग से दमा क्षय आदि की सम्भावना होती है।

शनि की साढेसाती

एक राशि पर शनि ढाई वर्ष तक रहता है। जब शनि जन्म राशि में १२, १ और २ स्थानों में हो तो साढेसाती होती है। शनि साढेसात वर्ष तक चलता है, अतएव इसे शनि साढेसाती कहते हैं। यह प्रायः कष्टदायक रहता है। यथा द्वादशे जन्मने राशौ द्वितीये च शनैश्चरः अर्थात् शनि गोचर से बारहवे स्थान पर हो तो सिर पर, जन्मराशि में हो तो हृदय पर, द्वितीय में हो तो पैर पर उतरता हुआ अपना प्रभाव डालता है। जन्म राशि से शनि चतुर्थ, अष्टम हो तो ढैया होती है, जो ढाई वर्ष चलती है। यह भी जातक के लिए कष्टकारक होती है। शनि के राशि परिवर्तन के समय यदि चन्द्रमा १, ६, ११वें स्थान में हो तो स्वर्णपाद, २, ५, ९वें स्थान में हो तो रजतपाद होता है, ३, ७, १०वें स्थान में हो तो ताम्रपाद तथा ४, ८, १२वें स्थान में हो तो, लोहपाद होता है। स्वर्णपाद सभी प्रकार के सुखों को देनेवाला, रजतपाद सुख सौभाग्य देने वाला, ताम्रपाद मध्यम फल देने वाला तथा लोहपाद धन धान्य का नाशक होता है।

नक्षत्र के अनुसार शनि का वास्तविक विचार

शनि जिस नक्षत्र पर हो उससे अपने नक्षत्र तक गिनें। यदि वही नक्षत्र हो तो ३ माह, ९० दिन तक, अनेक प्रकार की हानि होती है। दूसरे से पाँचवें नक्षत्र तक हो तो १३ माह १० दिन तक कार्य में सफलता एवं विजय की प्राप्ति होती है, ६ से ११ नक्षत्र तक हों तो १ वर्ष ८ महीने का समय वायुरोग, हृदयरोग एवं देशान्तर भ्रमण आदि होता है। १२ से १५ नक्षत्र तक हो तो १३ माह १० दिन तक शारीरिक कष्ट, मानसिक कष्ट, व्यवसाय में अवरोध एवं पारिवारिक उलझने बनी रहती है, १६ से १८ नक्षत्र तक हो तो १० माह का समय उत्तम होता है, १९ से २० नक्षत्र तक हो

तो ६ माह २० दिन का समय उन्नतिकारक एवं सुखदायक होता है। २१, २२ नक्षत्र तक हो तो ६ माह २० दिन का समय अत्यन्त कष्टकारक होता है, २३ से २७ नक्षत्र तक हो तो १६ माह २० दिन तक धन धान्य एवं व्यापार आदि में लाभ होता है।

परिहार उपाय– साढेसाती एवं ढैया युक्त राशि वाले जातक को शनि का जप, शनिस्तोत्र का पाठ, हनुमद् आराधना, सुन्दरकाण्ड का पाठ, पीपल की जड़ में जलदान, तिल के तेल से अथवा सरसों के तेल से दीपक जलाना आदि करना चाहिये।

शनिस्तोत्रम्

श्रीगणेशाय नमः। अस्य श्रीशनैश्चरस्तोत्रस्य दशरथ ऋषिः। शनैश्चरो देवता त्रिष्टुप् छन्दः, शनैश्चरप्रीत्यर्थं जपे विनियोगः।

दशरथ उवाच

कोणोऽन्तको रौद्रयमोऽथ बभ्रुः कृष्णः शनिः पिंगलमन्दसौरिः।
नित्यं स्मृतो यो हरते च पीडां तस्मै नमः श्रीरविनन्दनाय ॥१॥
सुरासुराः किंपुरुषोरगेन्द्राः गन्धर्वविद्याधरपन्नगाश्च।
पीड्यन्ति सर्वे विषमस्थितेन तस्मै नमः श्रीरविनन्दनाय ॥२॥
नरा नरेन्द्राः पशवो मृगेन्द्राः वन्याश्च ये कीटपतङ्गभृङ्गाः।
पीड्यन्ति सर्वे विषमस्थितेन तस्मै नमः श्रीरविनन्दनाय ॥३॥
देशाश्च दुर्गाणि वनानि यत्र सेनानिवेशाः पुरपत्तनानि।
पीड्यन्ति सर्वे विषमस्थितेन तस्मै नमः श्रीरविनन्दनाय ॥४॥
तिलैर्यवैर्माषगुडान्नदानैर्लोहेन नीलाम्बरदानतो वा।
प्रीणाति मन्त्रैर्निजवासरे च तस्मै नमः श्रीरविनन्दनाय ॥५॥
प्रयागकूले यमुनातटे च सरस्वतीपुण्यजले गुहायाम्।
यो योगिनां ध्यानगतोऽपि सूक्ष्मस्तस्मै नमः श्रीरविनन्दनाय ॥६॥
अन्यप्रदेशात्स्वगृहं प्रविष्टस्तदीयवारे स नरः सुखी स्यात्।
गृहाद्गतो यो न पुनः प्रयाति तस्मै नमः श्रीरविनन्दनाय ॥७॥
स्रष्टा स्वयम्भूर्भुवनत्रयस्य त्राता हरीशो हरते पिनाकी।
एकस्त्रिधा ऋग्यजुसाममूर्तिस्तस्मै नमः श्रीरविन्दनाय ॥८॥
शन्यष्टकं यः प्रयतः प्रभाते नित्यं सुपुत्रैः पशुबान्धवैश्च।
पठेत्तु सौख्यं भुवि भोगयुक्तः प्राप्नोति निर्वाणपदं तदन्ते ॥९॥

कोणस्थः पिङ्गलो बभ्रुः कृष्णो रौद्रोऽन्तको यमः।
सौरिः शनैश्चरो मन्दः पिप्पलादेन संस्तुतः॥
एतानि दशनामानि प्रातरुत्थाय यः पठेत्।
शनैश्चरकृता पीडा न कदाचिद्भविष्यति॥

शनि का पुराणोक्त मन्त्र

नीलाञ्जनसमाभासं रविपुत्रं यमाग्रजम्।
छायामार्तण्डसंभूतं तं नमामि शनैश्चरम्॥

जन्म राशि से १, २, ४, ५, ७, ८, ९ और १२वें स्थान में शनि पीडाकारक होता है। शनि की मूर्ति की पूजन का और दान का संकल्प, इस प्रकार है–**मम जन्मराशेः सकाशात् अनिष्टस्थानस्थित–शनेः पीडा परिहारार्थं एकादश स्थानवत् शुभफलप्राप्त्यर्थं लोहप्रतिमायां शनैश्चरपूजनं तत्प्रीतिकरं (अमुक) दानं च करिष्ये।**

ध्यान–

अहो सौराष्ट्रसंजात छायापुत्र चतुर्भुज।
कृष्ण वर्णार्कगोत्रीय बाणहस्त धनुर्धर॥
त्रिशूलिश्च समागच्छ वरदो गृध्रवाहन।
प्रजापते तु संपूज्यः सरोजे पश्चिमे दले॥

दान का श्लोक–

शनैश्चरप्रीतिकरं दानं पीडानिवारकम्।
सर्वापत्ति विनाशाय द्विजाग्याय ददाम्यहम॥

अथ शनिस्तोत्रम्

कोणस्थः पिंगलो बभ्रुः कृष्णो रौद्रोऽन्तको यमः।
सौरिः शनैश्चरो मन्दः पिप्लादेन संस्तुतः॥
एतानि दशनामानि प्रातरुत्थाय यः पठेत्।
शनैश्चरकृता पीड़ा न कदाचित् भविष्यति॥

पिप्पलाद उवाच

नमस्ते कोणसंस्थाय पिङ्गलाय नमोऽस्तुते।
नमस्ते बभ्रुरूपाय कृष्णाय च नमोऽस्तुते॥१॥

नमस्ते रौद्रदेहाय नमस्ते चान्तकाय च।
नमस्ते यमसंज्ञाय नमस्ते सौरये विभो।।२।।
नमस्ते मन्दसंज्ञाय शनैश्चर नमोऽस्तुते।
प्रसादं कुरु देवेश दीनस्य प्रणतस्य च।।३।।

इस स्तोत्र का पाठ रोज करना चाहिए।

वेदोक्त सबीज नवग्रह के मन्त्र

१. आदित्यमन्त्र-विनियोग– आकृष्णेति मन्त्रस्य हिरण्यस्तूपाङ्गिरसऋषिः, सूर्यो देवता, त्रिष्टुप् छन्दः । सूर्यमन्त्रजपे विनियोगः–

ॐ ह्राँ, ह्रीँ ह्रौँ सः ॐ भूर्भुवः स्वः ॐ आ कृष्णेन रजसा वर्तमानो निवेशयन्नमृतम्यमर्त्यञ्च। हिरण्येन सविता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन्। ॐ स्वः भुवः, भूः ॐ सः ह्रौँ, ह्रीँ, ह्राँ ॐ सूर्याय नमः।

२. चन्द्रमन्त्र-विनियोग– इमन्देवा इति मन्त्रस्य वरुणऋषिः, सोमो देवता, त्रिष्टुप् छन्दः, सोममन्त्रजपे विनियोगः ।

ॐ श्राँ, श्रीँ, श्रौँ, सः ॐ भूर्भुवः स्वः ॐ इमन्देवाऽअसपत्नं सुवद्ध्वम्महते क्षत्राय महते ज्यैष्ठ्याय महते जानराज्यायेन्द्रस्येन्द्रियाय। इमममुष्य पुत्रममुष्यै पुत्रमस्यै विशऽएष वोमी राजा सोमोस्माकम्ब्राह्मणानां राजा ॐ स्वः भुवः भूः ॐ सः श्रौँ, श्रीँ, श्राँ, ॐ सोमाय नमः।

३. मङ्गलमन्त्र-विनियोग– अग्निर्मूर्धा इति मन्त्रस्य विरूपाङ्गरसऋषिः अग्निर्देवता, गायत्रीछन्दः, भौममन्त्रजप विनियोगः ।

ॐ क्राँ, क्रीँ, क्रौँ, सः ॐ भूर्भुवः स्वः ॐ अग्निर्मूर्द्धा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्याऽअयम्। अपाँ रेताँसि जिन्वति ॐ स्वः भुवः भूः ॐ सः क्रौँ, क्रीँ, क्राँ ॐ भौमाय नमः।।

४. बुधमन्त्र-विनियोग– उद्‌बुध्य इति मन्त्रस्य परमेष्ठीऋषिः, बुधो देवता, त्रिष्टुप् छन्दः, सौम्यमन्त्रजपे विनियोगः ।

ॐ, ब्राँ, ब्रीँ, ब्रौँ, सः ॐ भूर्भुवः स्वः, ॐ उद्बुद्ध्यस्वाग्ने प्रतिजागृहि त्वमिष्टापूर्त्ते संसृजेथामयञ्च। अस्मिन्त्सधस्त्येऽअद्ध्युत्तरस्मिन्विश्वेदेवा

यजमानश्च सीदत ॐ स्वः भुवः भूः ॐ सः द्रौं, द्रीं, द्रां ॐ सौम्यायनमः ।।

५. बृहस्पतिमन्त्र-विनियोग— बृहस्पत इति मन्त्रस्य गृत्समदऋषिः, ब्रह्मा देवता, त्रिष्टुप् छन्दः, बार्हस्पत्यमन्त्रजपे विनियोगः ।

ॐ ह्रां, ह्रीं, ह्रौं, सः ॐ भूर्भुवः स्वः ॐ बृहस्पतेऽअतियदर्योऽअर्हाद्दयुमद्विभाति क्रतुमज्जनेषु । यद्दीदयच्छवसऽऋतप्रजात तदस्मासु द्रविणन्धेहि चित्रम् । ॐ स्वः भुवः भूः ॐ सः ह्रौं, ह्रीं, हां ॐ बृहस्पतये नमः ।।

६. शुक्रमन्त्र-विनियोग— अन्नात्पुरिस्रुत इति मन्त्रस्य प्रजापतिर्ऋषिः, अश्विसरस्वतीन्द्रा देवताः जगतीच्छन्दः, शुक्रमन्त्रजपे विनियोगः

ॐ द्रां, द्रीं द्रौं, सः ॐ भूर्भुवः स्व ॐ अन्नात्परिस्रुतो रसम्ब्रह्मणा व्यपिबत्क्षत्रम्पयः सोमम्प्रजापतिः, ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानं शुक्रमन्धसऽइन्द्रस्येन्द्रियमिदम्पयोमृतम्मधु ॐ स्वः भुवः भूः ॐ सः द्रौं, द्रीं, द्रां ॐ शुक्राय नमः ।।

७. शनिमन्त्र-विनियोग— शन्नो देवी इति मन्त्रस्य दध्यङ्ङाथर्वणऋषिः आपोदेवता गयात्रीछन्दः शनिमन्त्रजपे विनियोगः-

ॐ खां, खीं, खौं सः ॐ भूर्भुवः स्वः ॐ शन्नो देवीरभिष्टयऽआपो भवन्तु पीतये । शं योरभिस्रवन्तु नः ॐ स्वः भुवः भूः ॐ सः खौं, खीं, खां ॐ शनैश्चराय नमः ।।

८. राहुमन्त्र-विनियोग— कयानश्चित्र इति मन्त्रस्य वामदेवऋषिः राहुर्देवता गायत्रीछन्दः राहुमन्त्रजपे विनियोगः-

ॐ भ्रां भ्रीं भ्रौं सः ॐ भूर्भुवः स्वः ॐ कया नश्चित्रऽआभुवदूती सदावृधः सखा । कया शचिष्ठयावृता ॐ स्वः भुवः भूः ॐ सः भ्रौं भ्रीं भ्रां ॐ राहवे नमः ।।

९. केतुमन्त्र-विनियोग— केतुं कृण्वन्निति मन्त्रस्य मधुच्छन्दा ऋषिः, केतुर्देवता, गायत्रीछन्दः, केतुमन्त्रजपे विनियोगः-

ॐ प्राँ, प्रीँ प्रौँ सः ॐ भूर्भुवः स्वः ॐ केतुङ्कृण्वन्नकेतवे पेशो मर्याऽअपेशसे। समुषद्भिरजायथाः ॐ स्वः भुवः भूः ॐ सः प्रौँ, प्रीँ, प्राँ ॐ केतवे नमः।

अर्पण– अनेन अमुकग्रहमन्त्रजपकर्मणाऽमुकग्रहरूपी परमेश्वरः प्रीयतां न मम।

पुराणोक्त नवग्रहस्तोत्र

रवि का मंत्र–

जपाकुसुमसंकाशं काश्यपेयं महद्युतिम्।
तमोऽरिं सर्वपापघ्नं प्रणतोऽस्मि दिवाकरम्॥

चंद्र का मंत्र–

दधिशङ्खतुषाराभं क्षीरोदार्णवसम्भवम्।
नमामि शशिनं सोमं शम्भोर्मुकुटभूषणम्॥

मंगल का मंत्र–

धरणीगर्भसम्भूतं विद्युत्कान्तिसमप्रभम्।
कुमारं शक्तिहस्तं च मङ्गलं प्रणमाम्यहम्॥

बुध का मंत्र–

प्रियंगुकलिकाश्यामं रूपेणाप्रतिमं बुधम्।
सौम्यं सौम्यगुणोपेतं तं बुधं प्रणमाम्यहम्॥

गुरु का मंत्र–

देवानां च ऋषीणां च गुरुं काञ्चनसन्निभम्।
बुद्धिभूतं त्रिलोकेशं तं नमामि बृहस्पतिम्॥

शुक्र का मंत्र–

हिमकुन्दमृणालाभं दैत्यानां परमं गुरुम्।
सर्वशास्त्रप्रवक्तारं भार्गवं प्रणमाम्यहम्॥

शनि का मंत्र–

नीलाञ्जनसमाभासं रविपुत्रं यमाग्रजम्।
छायामार्तण्डसम्भूतं तं नमामि शनैश्चरम्॥

राहु का मंत्र—

अर्धकायं महावीर्यं चन्द्रादित्यविमर्दनम् ।
सिंहिकागर्भसम्भूतं तं राहुं प्रणमाम्यहम् ।।

केतु का मंत्र—

पलाशपुष्पसंकाशं तारकाग्रहमस्तकम् ।
रौद्रं रौद्रात्मकं घोरं तं केतुं प्रणमाम्यहम् ।।

फलश्रुति—

इति व्यासमुखोद्गीतं यः पठेत्सुसमाहितः ।
दिवा वा यदि वा रात्रौ विघ्नशान्तिर्भविष्यति ।।
नरनारीनृपाणां च भवेद्दुःस्वप्ननाशनम् ।
ऐश्वर्यमतुलं तेषामारोग्यं पुष्टिवर्धनम् ।
ग्रहनक्षत्रजाः पीडास्तस्कराग्निसमुद्भवाः ।
ताः सर्वाः प्रशमं यान्ति व्यासो ब्रूते न संशयः ।।
इति श्रीव्यासविरचितं आदित्यादिनवग्रहस्तोत्रम् सम्पूर्णम् ।।

तन्त्रोक्त नवग्रह मन्त्र

सूर्य— ध्यान

प्रत्यक्षदेवं विषदं सहस्रमरीचिभिः शोभितभूमिदेशम् ।
सप्ताश्वगं सद्ध्वजहस्तं आद्यं देवं भजेऽहं मिहिरं हृदब्जे ।।

मन्त्र—

।। ॐ ह्रौः श्रीं आं ग्रहाधिराजाय आदित्याय स्वाहा ।।

चन्द्र— ध्यान

शंखप्रभम् एणप्रियं शशाङ्कम् ईशानमौलिस्थितम् ईड्यरूपम् ।
तमीपतिमम्बुजयुग्महस्तं ध्याये हृदब्जे शशिनं ग्रहेशम् ।।

मन्त्र—

।। ॐ श्रीं क्रीं ह्रां चं चन्द्राय नमः ।।

मंगल— ध्यान

प्रतप्तगांगेयनिभं ग्रहेशं सिंहासनस्थं कमलासिहस्तम् ।

सुरासुरैः पूजितपादपद्मं भौमं दयालुं हृदये स्मरामि ॥

मन्त्र–

॥ ऐं ह्सौः श्रीं द्रां कं ग्रहाधिपतये भौमाय स्वाहा ॥

बुध–ध्यान

सोमात्मजं हंसगतं द्विबाहुं शंखेन्दुरूपं ह्यसिपाशहस्तं ।
दयानिधिं भूषणभूषिताङ्गं बुधं स्मरे मानसपंकजेऽहम् ॥

मन्त्र–

॥ ॐ ह्रां क्रीं डं ग्रहनाथाय बुधाय स्वाहा ॥

गुरू–

तेजोमयं शक्तित्रिशूलहस्तं सुरेन्द्रज्येष्ठस्तुतपादपद्मम् ।
मेधानिधिं मत्स्यगतं द्विबाहुं गुरुं स्मरे मानसपङ्कजेऽहम् ॥

मन्त्र–

॥ ॐ ह्रीं श्रीं ख्रीं ऐं ग्लौं ग्रहाधिपतये बृहस्पतये वीं ठः श्रीं ठः ऐं ठः स्वाहा ॥

शुक्र– ध्यान

सन्तप्तकाञ्चननिभं द्विभुजं दयालुं पीताम्बरं धृतसरोरुहद्वंद्वशूलम् ।
क्रौञ्चासनं च सुरसेवितपादपद्मं शुक्रं स्मरे द्विजवरं हृदयाम्बुजेऽहम् ॥

मन्त्र–

॥ ॐ ऐं जं गीं ग्रहेश्वराय शुक्राय नमः ॥

शनि–ध्यान

नीलाञ्जनाभं मिहिरेष्टपुत्रं ग्रहेश्वरं पाशभुजङ्गपाणिम् ।
सुरासुराणां भयदं द्विबाहुं स्मरे शनिं मानसपङ्कजेऽहम् ॥

मन्त्र–

॥ ॐ ह्रीं श्रीं ग्रहचक्रवर्तिने शनैश्चराय क्लीं ऐं सः स्वाहा ॥

राहु–ध्यान

शीतांशुमित्रान्तकम् ईड्यरूपं घोरं च वैदूर्यनिभं द्विबाहुम् ।
त्रैलोक्यरक्षापरम् इष्टदं च राहुं ग्रहेन्द्रं हृदये भजेऽहम् ॥

मन्त्र—

॥ ॐ क्रीं क्रीं हूँ हूँ टं टङ्कधारिणे राहवे रं ह्रीं श्रीं भैं स्वाहा ॥

केतु—ध्यान

लाङ्गलयुक्तं भयदं जनानां कृष्णाम्बुभृत्संनिभम् एकवीरम् ।
कृष्णाम्बरं शक्तित्रिशूलहस्तं केतुं भजे मानसपङ्कजेऽहम् ॥

मन्त्र—

ॐ ह्रीं क्रूँ क्रूररूपिणे केतवे ऐं सौः स्वाहा ॥

संकष्टनाशनगणेशस्तोत्रम्

श्रीगणेशायनमः—नारद उवाच—

प्रणम्य शिरसा देवं गौरीपुत्रं विनायकम् ।
भक्तावासं स्मरेन्नित्यमायुःकामार्थसिद्धये ॥१॥
प्रथमं वक्रतुण्डं च एकदन्तं द्वितीयकम् ।
तृतीयं कृष्णपिङ्गाक्षं गजवक्त्रं चतुर्थकम् ॥२॥
लम्बोदरं पंचमं च षष्ठं विकटमेव च ।
सप्तमं विघ्नराजेन्द्रं धूम्रवर्णं तथाष्टमम् ॥३॥
नवमं भालचन्द्रं च दशमं तु विनायकम् ।
एकादशं गणपतिं द्वादशं तु गजाननम् ।
द्वादशैतानि नामानि त्रिसन्ध्यं यः पठेन्नरः ।
न च विघ्नभयं तस्य सर्वसिद्धिर्भवेद्ध्रुवम् ॥५॥
विद्यार्थी लभते विद्यां धनार्थी लभते धनम् ।
पुत्रार्थी लभते पुत्रान् मोक्षार्थी लभते गतिम् ॥६॥
जपेद् गणपतिस्तोत्रं षड्भिर्मासैः फलं लभेत् ।
संवत्सरेण सिद्धिं च लभते नात्र संशयः ॥७॥
अष्टभ्यो ब्राह्मणेभ्यश्च लिखित्वा यः समर्पयेत् ।
तस्य विद्या भवेत्सर्वा गणेशस्य प्रसादतः ॥८॥

इति श्री नारदपुराणे संकष्टनाशनम् गणेशस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

ऋणमोचक मङ्गलग्रह स्तोत्र—

मङ्गलो भूमिपुत्रश्च ऋणहर्ता धनप्रदः ।

स्थिरासनो महाकायः सर्वकर्मविरोधकः ॥
लोहितो लोहिताक्षश्च सामगानां कृपाकरः।
धरात्मजः कुजो भौमो भूतिदो भूमिनन्दनः ॥
अङ्गारको यमश्चैव सर्वरोगापहारकः।
वृष्टेः कर्ताऽपहर्ता च सर्वकामफलप्रदः ॥
एतानि कुजनामानि नित्यं य श्रद्धया पठेत्।
ऋणं न जायते तस्य धनं शीघ्रमवाप्नुयात् ॥

नवग्रहों के दान एवं जपसंख्या

ग्रह	रवि	चन्द्र	मङ्गल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	राहु	केतु
धातु	सुवर्ण	सुवर्ण	सुवर्ण	सुवर्ण	सुवर्ण	सुवर्ण	सुवर्ण	सुवर्ण	सुवर्ण
उपधातु	ताम्र	रजत	ताम्र	कांस्य	कांस्य	रजत	लोह	सीसा	
रत्न	माणिक	मोती	प्रवाल	पन्ना	पुष्पराज	हीरा	नीलम	गोमेद	लहसूनिया
धान्य	गोधूम	चावल	मसूर	मूंग	चनादाल	चावल	उडद	तिल	तिल
पशु	रक्तधेनु	श्वेतमृषभ	रक्तवृषभ	हाथी	अश्व	श्वेताश्व	भैंस	अश्व	मार्जार
रस	गड़	घृत	गुड	घृत	शक्कर	घृत	तैल	तैल	तैल
वस्त्र	कुसुंभव	श्वेतवस्त्र	रक्तवस्त्र	नीलवस्त्र	पीतवस्त्र	चित्रवस्त्र	कृष्णवस्त्र	नीलवस्त्र	कृषणवस्त्र
पुष्प	रक्तकमल	श्वेतपुष्प	रक्तकन्हेर	पुष्प	पीतपुष्प	श्वेतपुष्प	कृष्णपुष्प	कृष्णपुष्प	धूम्रपुष्प
जप संख्या	७०००	११०००	१००००	४०००	१९०००	१६०००	२३०००	१८०००	१७०००

गुरु-शुक्र के अस्तकाल में वर्ज्य कार्य

कूप तालाब आदि का निर्माण, यज्ञ करना, यात्रा के लिए जाना, चौल करना, देवप्रतिष्ठा विद्यारम्भ, नवीन घर बनाना, नवीन घर में प्रवेश या निवासार्थ जाना, विवाह आदि वर्ज्य है।

मुहूर्त विचार

व्यवहार में कार्यों को सम्पन्न करने के लिए धर्मशास्त्रकारों ने जिन नियमित वेला (समय) का निश्चित कथन किया है उसे मुहूर्त कहते हैं। अथवा ज्योतिर्विज्ञान की

सहायता से तिथि-वार-योग और करण आदि के आधार पर कार्य के अनुरूप समय का चयन करना ही मुहूर्त कहलाता है।

१. सिद्धातिथि– शुक्रवार को नन्दातिथि (१।६।११), बुधवार को भद्रातिथि (२।७।१२), मंगलवार को जयातिथि (३।८।१३), शनिवार को रिक्तातिथि (४।९।१४) और गुरूवार को पूर्णातिथि (५।१०।१५) होने पर उनकी सिद्धातिथि संज्ञा होती है।

२. मृततिथि– रविवार मंगलवार को नन्दा, शुक्रवार-सोमवार को भद्रा, बुधवार को जया, गुरूवार को रिक्ता और शनिवार को पूर्णातिथि होने पर उन तिथियों की 'मृत संज्ञा होती है। कुछ आचार्य उक्त तिथियों को 'अमृततिथि' मानने के पक्ष में हैं।

३. शून्यतिथि– अधोलिखित रेखाचित्र के अनुसार प्रत्येक मास की पक्षानुसार शून्यतिथियों को समझना चाहिए—

मास	शुक्ल पक्ष	कृष्णपक्ष
चैत्र	अष्टमी, नवमी	अष्टमी नवमी
वैशाख	द्वादशी	द्वादशी
ज्येष्ठ	चतुर्दशी	त्रयोदशी
आषाढ	षष्ठी	सप्तमी
श्रावण	द्वितीया, तृतीया	द्वतीया, तृतीया
भाद्रपद	प्रतिपदा, द्वितीया	प्रतिपदा, द्वितीया
आश्विन	एकादशी, द्वादशी	एकादशी, द्वादशी
कार्तिक	पंचमी	चतुर्दशी
मार्गशीर्ष	सप्तमी, अष्टमी	सप्तमी, अष्टमी
पौष	चतुर्थी, पंचमी	चतुर्थी, पंचमी
माघ	पंचमी,	षष्ठी
फाल्गुन	चतुर्थी	तृतीया

तिथिनक्षत्र सम्बन्धदोष

द्वादशी को आश्लेषा, प्रतिपदा को उत्तराषाढा, द्वितीया को अनुराधा, पंचमी को मघा, तृतीया को तीनों उत्तरा, एकादशी को रोहिणी, त्रयोदशी को चित्रा एवं स्वाती, सप्तमी को हस्त एवं मूल, नवमी को कृत्तिका, अष्टमी को पूर्वाभाद्रपदा, और षष्ठी को

रोहिणी नक्षत्र होने पर ऐसा तिथिनक्षत्रसंयोग समस्त कार्यों में वर्ज्य कहा गया है।

मासानुसार शून्यराशि

चैत्र में कुम्भ, वैशाख में मीन, ज्येष्ठ में वृषभ, आषाढ में मिथुन, श्रावण में मेष, भाद्रपद में कन्या, आश्विन में वृश्चिक, कार्तिक में तुला, मार्गशीर्ष में धनु, पौष में कर्क, माघ में मकर और फाल्गुन मास में सिंह राशि (लग्न) उन-उन मासों में शून्य अर्थात् निष्फल मानी जाती है।

विषमतिथि अनुसार दग्धलग्न

प्रतिपदा को तुला एवं मकर, तृतीया को सिंह एवं मकर, पंचमी को मिथुन एवं कन्या, सप्तमी को धनु एवं कर्क, नवमी को कर्क एवं सिंह, एकादशी को धनु एवं मीन, और त्रयोदशी को वृषभ एवं मीन, इस प्रकार प्रत्येक मास की शुक्ल एवं कृष्णपक्ष की विषम तिथियों में उक्त लग्न दग्ध अथवा शून्य माने जाते हैं। जो समस्त शुभ कार्यों में वर्ज्य हैं।

तिथि अनुसार वर्ज्यलग्न

नन्दातिथि (१।६।११) को वृश्चिक, सिंह, तुला व मकर, भद्रातिथि (२।७।१२) को मीन व धनु, जयातिथि (३।८।१३) को कन्या एवं मिथुन, रिक्तातिथि (४।९।१४) को मेष तथा कर्क और पूर्णातिथि (५।१०।१५) को कुम्भ एवं वृषभ लग्न गमन (यात्रा) कार्यों में वर्ज्य समझना चाहिए।

घबाडमुहूर्त

सूर्यनक्षत्र से दिवस नक्षत्र तक गणना करके जिस संख्या का नक्षत्र आवे उस संख्या को तीन गुना करके प्राप्त संख्या में वर्तमान तिथि की संख्या को जोडना चाहिए और कुल योग को सात (७) से भाग देने पर शेष राशि यदि (३) हो तो घबाड मुहूर्त समझना चाहिए। इस मुहूर्त पर कार्य सिद्धि अवश्य होती है।

यात्रा हेतु शुभाशुभ लग्न

चर लग्न अर्थात् मेष, कर्क, तुला, मकर और द्विस्वभाव अर्थात् मिथुन, कन्या, धनु, और मीन ये आठ लग्न सर्वत्र गमन में प्रशस्त माने जाते हैं। वृषभ, सिंह, वृश्चिक, और कुम्भ ये चार लग्न स्थिर माने जाते हैं अतः इन लग्नों पर गमन नहीं करना ही श्रेयस्कर होता है। गमन हेतु निष्पंचक लग्न का शोधन करना चाहिए। मुख्यतः चोरपंचक अथवा मृत्युपंचक से रहित लग्न में ही गमन करना सुखकारक होता है।

यात्रा हेतु लग्न में शुभाशुभग्रह

जिस लग्न में गमन करना हो उस लग्न से केन्द्र (१।४।७।१०) में और त्रिकोण (५।९) में शुभाग्रह होने पर सुखावह गमन होता है। सप्तम स्थान में शुक्र अशुभ होता है। पापग्रह उपचय स्थान (३।६।१०।११) में इष्ट होते हैं। दशम स्थान का शनि अशुभ होता है। १।६।८।१२ स्थानों पर चन्द्र अशुभ माना जाता है। ६।७।८।१२ स्थानों पर लग्नस्वामी अनिष्ट कारक होता है। शीर्षोदय लग्न पर यात्रा करना शुभकारक होता है।

योग, अधियोग और योगाधियोग

यात्रा के इष्ट लग्न से १।४।५।७।९।१० इन स्थानों में से किसी एक स्थान में बुध, गुरू अथवा शुक्र इन में से कोई भी एक ग्रह होने पर 'योग' कहा जाता है। केन्द्र अथवा त्रिकोण में बुध, गुरू और शुक्र इन ग्रहों में से दो ग्रह एकत्र होने पर 'अधियोग' होता है और तीनों ग्रह एकत्र होने पर योगाधियोग होता है। योग पर यात्रा करने पर सुखरूप वापसी होती है। अधियोग पर यात्रा से जय एवं कल्याण की प्राप्ति होती है तथा योगाधियोग पर यश, क्षेम और धन लाभ होता है।

शुभ-शकुन

नक्षत्र-वार-तिथि-लग्न इत्यादि शुभ योग होने पर भी यदि कार्य करने के पूर्व अशुभ शकुन हुआ तो शुभ योग निरुपयोगी हो जाते है और पंचागशुद्धि न होने पर भी यदि शुभ शकुन होता है तो शकुनों की सूचना मात्र से कार्यसिद्ध हो जाता है। शुभशकुन प्राय: अधोलिखित हैं—

एकाधिक ब्राह्मण, अश्व, हाथी, फल, पकाहुआ अन्न, दूध, दही, गाय, कमल, श्वेतवस्त्र, वेश्या, वाद्ययन्त्र, मयूर, चाषपक्षी, नकुल, बद्धपशु, मांस, शुभवार्ता कर्णगोचर होना, पुष्प, श्वेत वृषभ, मदिरा, अपत्य सह सौभाग्यवती स्त्री, प्रदीप्त अग्नि, दर्पण, काजल, घृत, धनुष् आदि शस्त्र, गोरोचन, भारद्वाजपक्षी, पालखी, वेद-घोष, मंगलपदार्थ, गायन, हाथी का अंकुश, इत्यादि शुभशकुन माने जाते हैं। कार्य अथवा गमन के पूर्व इनका प्रत्यक्ष होना कार्यपूर्णता में साधक माना जाता है।

अशुभ-शकुन

वंध्या स्त्री, पश्वादिकों का चर्म, धान्य की भूसा, हड्डियाँ, सर्प, नमक, धूमरहित अंगार, लकडी, नपुंसक, विष्ठा, तेल, चरबी, नशेडी, औषधि, शत्रु, संन्यासी,

रोगीमनुष्य, नग्न मनुष्य, तेल लगाया व्यक्ति, जातिभ्रष्ट, अपंग, भूखा, रक्त, गिरगिट, स्वगृह का दहन, बिल्लियों का झगडा, छींक, भगवा परिधान, गुड, तंक्र, कीचड, विधवा स्त्री, कुटुम्ब में अशांति, कृष्णवर्णी धान्य, कपास, उलटी, गर्भवती स्त्री, क्षौर किया व्यक्ति, गीले वस्त्र पहना हुआ, दुष्टभाषण करना अथवा सुनना, अंधा, बधिर, रजस्वला का दर्शन कार्य अथवा गमन के पूर्व अशुभ शकुन माने जाते हैं।

जातकर्म और नामकरण

पुत्र जन्म के पश्चात् नालच्छेदन करने के पूर्व जात कर्म संस्कार करना चाहिए। पुत्र का नामकरण ११-१२ या १३ वें दिन करना चाहिए। इस दिन नक्षत्र आदि देखने की आवश्यकता नहीं है। फिर भी अमावस्या ग्रहण, वैधृति, व्यतीपात आदि कुयोग पर नहीं करना चाहिए। यदि १२ या १३वें दिन कार्यक्रम न हो सका तो पुनर्वसु, पुष्य, हस्त, चित्रा स्वाती, अनुराधा, ज्येष्ठा, मृग, मूल, तीनों उत्तरा, धनिष्ठा इन नक्षत्रों पर और शनिवार, मंगलवार को छोड़कर, अन्य दिन स्थिर लग्न पर बालक का नामकरण करना चाहिए।

अन्नप्राशन का मुहूर्त

रेवती, अश्विनी, पुष्य, पुनर्वसु, अनुराधा, श्रवण, धनिष्ठा, शततारका, हस्त, चित्रा, स्वाती, रोहिणी, मृग और तीनों उत्तरा इन नक्षत्रों पर, मीन, मेष और वृश्चिक इन लग्नों को छोड़कर पुत्र को ६, ८, १० और १२वें मास में तथा कन्या को ५, ७, ९ और ११वें मास में अन्नप्राशन कराना चाहिए। क्षयतिथि, रिक्तातिथि अर्थात् ४, ९, १४ नन्दातिथि और शनिवार को छोड़कर अन्य दिन अन्नप्राशन का संस्कार करना चाहिए।

उपनयन

गर्भ से या जन्म से ब्राह्मण पुत्र का उपनयन आठवें वर्ष में, क्षत्रिय का ग्यारहवें वर्ष में, वैश्य का बारहवे वर्ष में उपनयन करना चाहिए। माघ महिने से ज्येष्ठ महिने तक पाँच महिनों में उपनयन करना चाहिए। द्वितीया, तृतीया, पंचमी, दशमी, एकादशी, द्वादशी इन तिथियों में से किसी एक तिथि पर उपनयन करना चाहिए। कृष्णपक्ष की पंचमी तक और सोम, बुध, गुरु, शुक्र और रविवार ये दिन उपनयन के लिए शुभवार हैं। मघा, भरणी, ज्येष्ठा, विशाखा और कृत्तिका इन पांच नक्षत्रों को छोड़कर, शेष २२ नक्षत्रों पर उपनयन करना चाहिए। कृष्णपक्ष की षष्ठी तिथि से आगे

की तिथियों पर, प्रदोष के दिन, अनध्याय के दिन, शनिवार के दिन रात्रि में अपराह्न में, प्रात:काल मेघगर्जना होने पर और गलग्रह तिथि पर उपनयन संस्कार नहीं करना चाहिए।

उपनयन के लिये गुरुबल

जातक की जन्म राशि से उस समय, गुरु जिस राशि में हो, उस राशि तक गिनती करनी चाहिए, जन्म राशि से दूसरा, पांचवां, सातवां नवम और ग्यारहवां (२, ५, ७, ९ और ११वां) गुरु होने पर गुरु बल उत्तम होता है, अत: उपनयन संस्कार करना चाहिए। १/३/१०वां गुरु होने पर गुरुबल मध्यम होता है, अत: गुरु की पूजा करनी चाहिए। ४/८/१२वां गुरु होने पर गुरु निंद्य होता है, किन्तु यदि उपनयन का समय बीत गया हो तो, दो बार गुरु की पूजा करनी चाहिए। तब उपनयन करना चाहिए। अपवाद–चैत्र महिने में सूर्य मीन राशि में होने पर अनिष्ट गुरु का दोष नहीं मानना चाहिए। अथवा–उच्च का कर्क राशि में होने पर, स्वक्षेत्र में धनु या मीन राशि में होने पर, मित्र गृह का, धनु या मीन राशि के नवांश में होने पर अर्थात् वर्गोत्तम जिस राशि में गुरु हो, उसी राशि के नवांश में अर्थात् मेष राशि का होने पर मेष राशि के नवांश में, वृष राशि में होने पर वृष राशि के नवांश में गुरु होने पर, ४/८/१२वां गुरु होने पर दोष नहीं होता।

पिता पुत्र दोनों को चन्द्रबल होना चाहिए। १/३/१०वां गुरु होने पर गुरु की सुवर्ण प्रतिमा की पूजा करनी चाहिए। ४/८/१२ गुरु होने पर पूजा और शान्ति करनी चाहिए। उच्च का और स्वगृही गुरु अनुकूल होता है। **चन्द्र विचार** किस राशि का चन्द्र किस दिशा में होता है। मेष, सिंह और धनु राशि का चन्द्र पूर्व दिशा में होता है, वृषभ, मकर, कन्या राशि को चन्द्र दक्षिण में होता है, 'मिथुन, तुला और कुम्भ राशि का चन्द्र पश्चिम में होता है, कर्क, वृश्चिक और मीन राशि का चन्द्र उत्तर दिशा में होता है। यात्रा के लिए जाते समय चन्द्र संमुख और दाये सीधे हाथ की ओर होना चाहिए। पीठ पीछे होने पर तथा बायां होने पर प्राण संकट या धन का क्षय करता है।

दिशाशूल

पूर्व में–सोमवार तथा शनिवार को, रविवार को तथा शुक्रवार को पश्चिम में, बुधवार तथा मंगलवार को उत्तरदिशा में तथा गुरुवार को दक्षिण में दिशाशूल होता है।

यात्रा के लिए शुभ नक्षत्र

अश्विनी, मृग, पुष्य, हस्त, अनुराधा, श्रवण, धनिष्ठा, रेवती, शुभ होते हैं। रोहिणी, तीनों उत्तरा और मूल नक्षत्र मध्यम होते हैं। जन्म नक्षत्र वर्ज्य है।

जन्म के समय निम्नोक्त तिथियाँ, नक्षत्र और योगादि हो तो जनन शान्ति करनी चाहिए। **तिथि–** कृष्णपक्ष की चतुर्दशी, अमावस्या, क्षयतिथि। **नक्षत्र–** अश्विनी नक्षत्र के प्रथम ४८ मिनिट, यदि हो तो शान्तिकरनी चाहिए। **योग–** वैधृति, व्यतीपात. भद्रा, ग्रहणपर्वकाल, जुडवाँ या सदन्त सन्तति हो तो, शान्ति करनी चाहिए।

वास्तुशान्ति के मुहूर्त

वैशाख, ज्येष्ठ, श्रावण, कार्तिक, मार्गशीर्ष, पौष, माघ, फाल्गुन महिने में, अश्विनी, रोहिणी, मृग, पुनर्वसु, पुष्य, तीनों उत्तरा, हस्त, चित्रा, स्वाती, अनुराधा, मूल, श्रवण, धनिष्ठा, शततारका और रेवती नक्षत्र शुभ होता है। अत: इन नक्षत्रों पर वास्तुशान्ति करनी चाहिए। १, ४, ९, १४, ३० इन तिथियों पर नहीं, और रवि, मंगलवार को छोड़कर वास्तु शान्ति करनी चाहिए।

क्रय विक्रय के लिये शुभ दिन

अश्विनी, चित्रा, स्वाती, श्रवण, शततारका रेवती, इन नक्षत्रों पर वस्तु खरीदनी चाहिये और भरणी, कृत्तिका, आश्लेषा, पूर्वा, विशाखा, पूर्वाषाढ़ा, पूर्वाभाद्रपदा इन नक्षत्रों पर सभी वस्तुओं को बेचना चाहिये।

साडेतीन मुहूर्त

१. गुडीपडवा वर्ष का प्रथम दिन चैत्र शुक्ल प्रतिपदा (२) अक्षय्य तृतीया और (३) विजयदशमी तथा (४) कार्तिक शुक्ल प्रतिपदा यह अर्ध मुहूर्त इन मुहूर्तो पर उपनयन, विवाह, वास्तुशान्ति आदि मंगल कार्य किये जा सकते है।

सिद्धहोरामुहूर्त

यस्य ग्रहस्य वारे यत् कर्म किञ्चित् प्रकीर्तितम्।
तत्तस्य कालहोरायां सर्वमेव विचिन्तयेत्।।

वार दो प्रकार के है, एक स्थूलवार जो २४ घण्टे का तथा दूसरा सूक्ष्मवार जो एक घण्टे का (होरा) होता है। इसलिए समस्त शुभकार्य शुभग्रह के होरा में या अपनी

राशि के स्वामी या मित्र ग्रह के होरा में प्रारम्भ करे अथवा अभीष्ट कार्य के कारक ग्रह के होरा में कार्य करें। प्रत्येक वार के सूर्योदय के समय उसी वारेश का होरा होता है। एक होरा का समय १ घण्टा होता है। जैसे– आज सोमवार है, सूर्योदय ६ बजकर १५ मिनिट पर हुआ है अतः प्रातः ६/१५ से ७/१५ तक चन्द्र का होरा तथा बाद में ७/१५ से ८/१५ तक शनि का होरा तथा ८/१५ से ९/१५ तक गुरु का होरा, इस प्रकार समझना चाहिए। यह होरा काल चौघडिये से सूक्ष्म माना गया है।

अन्य महत्वपूर्ण ग्रन्थ

* **गोलीय रेखागणितम्।** नीलाम्बर झा विरचित। हिन्दी व्याख्या सहित। डॉ. कृष्णकान्त पाण्डेय। (का. 317)
* **चापीयत्रिकोणगणितम्।** नीलाम्बर झा कृत। अच्युतानन्द झा कृत 'विविध वासना' विषद टीका। (का. 139)
* **जातकपारिजातः।** वैद्यनाथ कृत। कपिलेश्वर चौधरी कृत 'सुधाशालिनी' सं. टी. तथा मातृप्रसाद पाण्डेय कृत 'विमला' हिन्दी टीका। सम्पूर्ण। (का. 10)
* **जातकालंकारः।** गणेश दैवज्ञ कृत। हरभानु शुक्ल कृत संस्कृत टीका। दीनानाथ झा कृत 'भावबोधनी' हिन्दी टीका। (का. 141)
* **ज्योतिष शास्त्रीय चिन्तन के कुछ मानक बिन्दु।** डॉ. कामेश्वर उपाध्याय। (का. 285)
* **ताजिकनीलकण्ठी।** 'कुन्तला' संस्कृत एवं 'ज्योति' हिन्दी टीका सहित। डॉ. रामचन्द्र पाठक कृत। (चौ.सं.भ. 18)
* **नरपतिजयचर्यास्वरोदयः।** नरपति कवि कृत। गणेशदत्त पाठक कृत 'सुबोधिनी' संस्कृत हिन्दी टीका। (का. 205)
* **पाराशरी-होरा (लघुमध्य कलेवरा)।** 'उडुदायप्रदीपोद्योत' संस्कृत टीका, 'कला' हिन्दी व्याख्या, संवलित डॉ. कामेश्वर उपाध्याय। (का. 280)
* **फलित संग्रहः।** संस्कृत, हिन्दी टीका सहित। संग्रहकर्ता–रामयत्न ओझा, टीकाकार–डॉ. रामचन्द्र पाठक एवं डॉ. कामेश्वर उपाध्याय। (का. 274)
* **मुहूर्त्तचिन्तामणि।** श्रीमद् रामदैवज्ञ कृत। 'पीयूषधारा' संस्कृत एवं 'ज्योति' हिन्दी टीका युक्त। डॉ. रामचन्द्र पाठक। (चौ.सं.भ. 28)
* **शीघ्रबोध।** श्रीकाशीनाथ दैवज्ञ प्रणीत। सान्वय 'कुन्तला' संस्कृत, 'ज्योति' हिन्दी व्याख्या सहित। पं. रामचन्द्र पाठक। (का. 269)
* **भारतीय कुण्डली गणित।** लेखक- सिद्धान्त एवं फलित ज्योतिषाचार्य : डा. कृष्णकान्त पाण्डेय। (का. 327)
* **सिद्धान्तशिरोमणिः।** भास्कराचार्य कृत। स्वकृत 'वासनाभाष्य' सं. वापूदेव शास्त्री। (का. 72)
* **सामुद्रिक विद्या (हस्तरेखाओं एवं अङ्गलक्षणों का सम्पर्णू विवेचन)।** सम्पादित एवं व्याख्याकर्तृ - डॉ. आभा यज्ञसेनी। (का. 325)

चौखम्भा संस्कृत संस्थान
पो. बा. नं. 1139, के. 37/116, गोपाल मन्दिर लेन, गोलघर
वाराणसी - 221001 (भारत)
टेलीफोन : 2333445, टेलीफैक्स : 0542-2335930
E-mail : cssvns@sify.com

ISBN : 978-81-89798-87-1

मूल्य : रु. 175.00